CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आ:3/86

श्रीकृष्णरस-संगीत-संग्रह

आम्नाय-ग्रन्थालय,
भारतनिधि, भदैनी
वाराणसी-5

ालय
राणसी-५
:3/86

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

rou
ra.
re combina
nolar and teac
he has dedicated
ing and revealing
nipuri dancing in
, perpetuate and
ri dancing in its

l innovating dance
hy has given him
horeographers of

stic and aesthetic
ance dramas for

d research, he has
ing a significant
lable Vaishnavite
lian dancing, and
dance and music.
enabled him to
and codify vari-
g and create fun-
iples and disci-
ning.
mp

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आ:3/86
आम्नाय-अवधा...,
...,
...

श्रीकृष्णरस-संगीत-संग्रह

(मणिपुर के महाराजा श्री गम्भीर सिंह के शासनकाल
(१८२५-१८३४) में संकलित)

[फोर्ड फाउण्डेशन से प्राप्त अनुदान से प्रकाशित]

सम्पादक
गुरु बिपिन सिंह

अनुवादक
मदनलाल व्यास

प्रकाशक
मणिपुरी नर्तनालय
कलकत्ता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीकृष्णरस-संगीत-संग्रह

संपादक
गुरु बिपिन सिंह

अनुवादक
मदनलाल व्यास

प्रकाशक
मणिपुरी नर्तनालय
१५-ए, बिपिन पाल रोड,
कलकत्ता- ७०० ०२६.

स्वत्वाधिकार मणिपुरी
नर्तनालय-अधीन

प्रथम संस्करण - १९९०

मुद्रकः
फॉटसी
२१२, महाडकर चेंबर्स,
१२७/३ ए, कर्वे रोड,
पुणे - ४११०२९

मणिपुरी नर्तनालय द्वारा प्रकाशित ग्रंथः

१. वैष्णव संगीत शास्त्र-प्रथम भाग (हिंदी)- गुरु बिपिन सिंह द्वारा संपादित।
२. वैष्णव संगीत शास्त्र-द्वितीय भाग (हिंदी)- गुरु बिपिन सिंह द्वारा संपादित।
३. गोविंदलीलामृत (मणिपुरी)
४. (क) नारद पंचमसार संहिता
(ख) दामोदर सेन का संगीत दामोदर (हिंदी, बंगाली, मणिपुरी)- गुरु बिपिन सिंह द्वारा संपादित
५. मणिपुरी नर्तन (बंगाली) - दर्शना झवेरी एवं कलावती देवी।
६. मणिपुरी नर्तन (हिंदी) - दर्शना झवेरी एवं कलावती देवी।
७. गुरु बिपिन सिंह का जीवनचरित (अंग्रेजी) - नयना झवेरी।
८. गुरु बिपिन सिंह प्रबोधन (अंग्रेजी) - सुशील झवेरी द्वारा संपादित।
९. मणिपुरी ताल प्रकाश (अंग्रेजी) - दर्शना झवेरी एवं कलावती देवी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आम्नाय-ग्रन्थालय,
भरतनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

SHRIKRISHNARAS–SANGEET–SANGRAHA

Compiled during the Reign
of Maharaja Shri Gambeersingh of Manipur (1825-1834 A. D).

[Published with the Grant-in-Aid from Ford Foundation]

EDITOR
GURU BIPIN SINGH

TRANSLATOR
MADANLAL VYAS

PUBLISHER
MANIPURI NARTANALAYA
CALCUTTA

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Shrikrishnaras–Sangeet–Sangraha

Editor
Guru Bipin Singh

Translator
Madanlal Vyas

Publisher
Manipuri Nartanalaya
15-A, Bipin Pal Road,
Calcutta 700 026.

© Manipuri Nartanalaya

First Edition – 1990

Printer
Fontasey
212, Mahadkar Chambers
127/3A, Karve Road,
Pune - 411029

Books Published by Manipuri Nartanalaya:

1. Vaishnav Sangeet Shastra – Part I (Hindi) edited by Guru Bipin Singh.
2. Vaishnav Sangeet Shastra - Part II (Hindi) edited by Guru Bipin Singh.
3. Govindleelamruta (Manipuri)
4. a) Panchamsar Samhita by Narada,
   b) Sangeet Damodar by Damodar Sen (Hindi, Bengali & Manipuri) edited by Guru Bipin Singh.
5. Manipuri Nartan (Bengali) by Darshana Jhaveri & Kalavati Devi.
6. Manipuri Nartan (Hindi) by Darshana Jhaveri & Kalavati Devi.
7. Biography of Guru Bipin Singh (English) by Nayana Jhaveri.
8. In Appreciation of Guru Bipin Singh (English) edited by Susheel Jhaveri.
9. Manipuri Tala Prakash (English) by Darshana Jhaveri & Kalavati Devi.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

डॉ. उर्मिला शर्मा
को सादर भेंट —
मदनलाल

MADANLAL VYAS,
19, PATRAKAR BANDRA (EAST),
BOMBAY — 400 051.
TEL. 6428287.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सम्पादकीय

श्रीकृष्णरस-संगीत-संग्रह मणिपुरी संकीर्तन की शास्त्रीय परंपरा का संस्कृत में एक उत्कृष्ट ग्रंथ है। यह बंगाल के घनश्यामदास (१८ वीं शताब्दी) के ग्रंथ 'संगीतसार संग्रह' के ढंग का है और इसके संकलन में लगभग तीस प्राचीन संगीत-ग्रंथों की सहायता ली गयी है। वस्तुतः यह श्रीकृष्ण के विशिष्ट रास के संगीत के सार का संकलन है, जो मणिपुर के राजा गम्भीरसिंह के शासनकाल (ईसवीं १८२५-१८३४) में उनके आदेश से दरबार में पूरा किया गया।

मणिपुर से कई ग्रंथ और पाण्डुलिपियाँ हमें प्राप्त हुईं, जिनमें यह ग्रंथ मुझे अत्यंत महत्त्वपूर्ण और बहुमूल्य लगीं। प्रायः योग्य पात्र न मिलने पर मणिपुर के भक्तजन देते नहीं, उसकी पूजा करते हैं, और उसे बहा भी देते हैं। यह ग्रंथ बहुत मुश्किल से मिला। इसमें मणिपुर की निजस्व परंपरा के दर्शन होते हैं। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि तत्कालीन गुरुओं ने उपलब्ध वैष्णव ग्रंथों का आधार लेकर मणिपुरी की निजस्व शैली के अनुरूप ग्रंथ की रचना की। वास्तव में यह ग्रंथ कई स्थलों पर अशुद्ध था, अतः इसमें उल्लिखित मूल ग्रंथों तथा अन्य सम्बद्ध ग्रंथों से मिलान किया, निरीक्षण-परीक्षण किया और शुद्धिकरण किया। यह ग्रंथ अपने आप में सम्पूर्ण है, जिसमें संगीत के सभी पक्षों का निरूपण मिलता है।

श्रीकृष्णरस-संगीत-संग्रह भारतीय संगीत का आधिकारिक ग्रंथ है और विद्वता एवं श्रीकृष्ण के प्रति निष्ठापूर्ण भक्ति का अद्‌भुत उदाहरण भी। वैष्णव सौंदर्यबोध की दृष्टि से यह ग्रंथ एक उज्ज्वल ज्योतिष्क है; इसमें वैष्णव अन्तर की पूर्ण अभिव्यंजना है। इस भक्तिमूलक ग्रंथ के संकलन में हरिनारायण के 'संगीतसार', अहोबल के 'संगीत पारिजात', 'संगीत मुक्तावली', पं. शुभंकर के 'संगीत दामोदर', अहोबल के 'संगीत शिरोमणि', 'विष्णुपुराण', 'संगीत कौमुदी', 'गीत प्रकाश', 'नारद संहिता', 'संगीत दर्पण', नारद की 'पंचमसार संहिता', 'राग रत्नाकर', मम्मटाचार्य की 'संगीत रत्नमाला', जयदेव का 'गीत-गोविंद', लक्ष्मण भट्ट की गीतगोविंद-टीका, 'संगीतमाला', 'राग विवेक', 'राग चन्द्रिका', 'छन्दोरत्- ाकर', कवि कर्णपूर के 'अलंकार कौस्तुभ', रूप गोस्वामी के 'कुंज विहार्याष्टक', कृष्णदास कविराज के 'गोविंदलीलामृत', रूप गोस्वामी के 'विदग्ध माधव', सनातन गोस्वामी की 'गीतावली', 'नारद पंचरात्र', प्रबोधानंद सरस्वती के 'संगीत माधव', कवि कर्णपूर गोस्वामी के 'आनंद वृंदावन चम्पू' 'रासोल्लास तंत्र' और रूप गोस्वामी के 'उज्ज्वल नीलमणि' की सहायता ली गयी है। इनके अलावा लेखक ने भरतोत्तरकाल के संगीतशास्त्री कोहल, शिवकिंकर, हरिभट्ट, विनोद और हरिनायक के ग्रंथों से भी सहायता ली है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीकृष्णरस-संगीत-संग्रह की पाण्डुलिपि में सात प्रकरण हैं।

प्रथम प्रकरण में श्रीकृष्ण के गुणों का गान और समर्पित भाव से असाधारण प्रार्थना है। द्वितीय प्रकरण में संगीत की व्याख्या है और शब्दब्रह्म को नमन कर तांत्रिक परंपरा का अनुसरण किया गया है एवं नाद का महत्त्व बताया गया है। मार्ग एवं देशी भेद से संगीत को द्विविध बताते हुए श्रुति, स्वर, तीन ग्राम, मूर्च्छना, तान, वर्ण और जातियों पर प्रकाश डाला गया है। तृतीय प्रकरण रागाध्याय है, जिसमें बताया गया है कि श्रीकृष्ण की उपस्थिति में सोलह हजार गोपियों ने एक-एक राग गाया अतः रागों की संख्या १६००० है। यह भी बताया गया है कि राग का उद्भव हुंकार से है, जिसे वेद में ओम् कहा गया है और संगीतज्ञ इसे हा (गणेश), री (कृष्ण), ते (ब्रह्मा) और ना (शिव) के रूप में गाते हैं ('हार्यतेनादिवर्णस्तु...' संगीतसार)। यह भी बताया गया है कि राग शिव और शक्ति के योग एवं प्रेमरस का प्रतीक है। राग-रागिनी के गायन की ऋतुओं और समय का उल्लेख करते हुए अकाल गायन के दोष भी बताये गये हैं। यह भी कहा गया है कि रागों को मात्र ढाँचा न समझ कर जीवंत माना जाय। चतुर्थ प्रकरण ताल से संबंधित है, जिसमें ताल के दस प्राण पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है कि परंपरा के अनुसार ताल ३६० हैं जिनमें से १६० ताल भरतपुत्र विश्वभद्र पृथिवी पर ले आये। इसमें नाट्य पर प्रकाश डाला गया है और ३२ नृत्यहस्त के उल्लेख के साथ-साथ नट व गायकों के गुणदोषों व वाग्गेयकार के लक्षण बताये गये हैं। इसमें वाद्यों का वर्गीकरण एवं वादकों के गुणदोष भी बताये गये हैं। पंचम प्रकरण प्रबन्धाध्याय है, जिसमें अनिबद्ध और निबद्ध, प्रबन्धों के अंग-स्वर, बिरुद, पद, तेनक, पाट, ताल; तथा जातियों की व्याख्या है। षष्ठ प्रकरण में पदावली से प्रबन्ध गान के उद्धरण हैं तथा नायिकाभेद, शृंगारभेद के अलावा कुंजरास, वसंतरास आदि का वर्णन है। सप्तम प्रकरण में प्रार्थना के परंपरागत वैष्णव-स्वरूप के अन्तर्गत भगवान श्रीकृष्ण और गोपियों के रासविहार के प्रबंध दिये गये है। इसमें मणिपुर के महान भक्त राजर्षि भाग्यचंद्र और उनके महान पुत्र राजा गम्भीर सिंह को नमन किया गया हैं। श्रीकृष्ण को प्रार्थनाष्टकम् से लेखक ने ग्रंथ का समापन किया है।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि राग-रागिनी की प्रस्तुति में मणिपुरी गुरु स्वयं भगवान गोविन्द की अनुकम्पा को प्रधान मानते हैं और गुरुओं द्वारा मान्यता प्राप्त एकमात्र रस है भक्तिरस। ऐसी परंपरा है कि मणिपुरी कीर्तन में ठाकुर नरोत्तम की शैली का अनुसरण किया जाता है, फिर भी राजर्षि भाग्यचंद्र द्वारा प्रवर्तित नटकीर्तन संगीत विशिष्ट मणिपुरी कीर्तन बना और बाद के राजाओं ने इसे विकसित किया। मुझे इस ग्रंथ की पाण्डुलिपि गुरु एल. इबोमचा शर्मा बामनपाला के इशैहन्बा के पास से मिली। इस ग्रंथ के लेखक का परिचय नहीं मिलता, किंतु यह निश्चित है कि यह संस्कृत विद्वान अपने स्वामी के व्यक्तित्व के साथ एकाकार हो गया। अज्ञात रहने की वैष्णव विनम्रता का यह अद्भुत उदाहरण है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस ग्रंथ के संपादन के समय व्याकरणगत अशुद्धियां सुधारने में संस्कृत - विद्वान पं. गजानन रानडे शास्त्री के सहयोग, संगीतज्ञ व हिन्दी-बंगला-संस्कृत विद्वान श्री मदनलाल व्यास द्वारा अनुवाद और मेसर्स फॉंटसी, पुणे द्वारा सुंदर मुद्रण के लिए मैं उनका आभारी हूँ। इसका प्रकाशन फोर्ड फाउण्डेशन, दिल्ली से प्राप्त अनुदान से संभव हो सका, अतः हम उनके कृतज्ञ हैं।

गोकुलाष्टमी,
१४ अगस्त, १९९०

गुरु बिपिन सिंह

□ □

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Editorial

Among my collection of many manuscripts on the dance and music of Manipur, I found one manuscript on music and dance, viz. Shrikrishnaras–sangeet–sangraha from Guru L Ibomcha Sharma, Bamanpala–isheihanba of Manipur. It belongs to the 19th Century and was written by an unknown poet at the order of Maharaja Gambhir Singh (1825–1834 A. D.).

Shrikrishnaras–Sangeet–Sangraha is a compilation of the relevant portions from great works of Vaishnava and Indian texts on music and dance. The Scholars and Gurus of Manipur selected relevant portions which were suitable to their aesthetic expressions of Vaishnavite feelings through Manipuri dance and music.

The author has compiled this manuscript by referring to the following texts:

1. Sangeet Sara of Harinarayana
2. Sangeet Parijata of Ahobal
3. Sangeet Damodara of Pandit Shubhankara
4. Sangeet Shiromani by Ahobal
5. Panchama Sar Samhita by Narada
6. Sangeet Ratnamala of Mammatacharya
7. Geeta Govinda by Jayadeva
8. Commentary on Geeta Govinda by Lakshman Bhatta
9. Alankar Kaustubha of Kavi Karnapur
10. Kunjabiharyashtaka of Rupa Goswami
11. Govinda Lilamrita of Krishnadasa Kaviraj
12. Vidagdha Madhava by Rupa Goswami
13. Geetavali of Sanatan Goswami
14. Sangeet Madhava of Prabodhananda Saraswati
15. Ananda Vrindavan Champu of Kavi Karnapur Goswami
16. Rasollasatantra of Rupa Goswami
17. Ujjwala Nilamani of Rupa Goswami

Apart from the above list, the author has referred to the following texts but the names of the authors of these texts are not given:

1. Sangeet Muktavali
2. Vishnupurana
3. Sangeet Koumudi
4. Gita Prakasha
5. Narada Samhita

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

6. Sangeet Darpana
7. Raga Ratnakara
8. Sangeet-Mala
9. Raga Viveka of the South
10. Raga Chandrika
11. Chhandoratnakara
12. Narada Pancharatra

The author has also referred to the texts written by the following authors but the names of the texts are not given:

1. The Work on Music by Kohala - a post-Bharata Musicologist
2. The Works on Music by Shivakinkara, Haribhatta & Vinod
3. The book on Music by Harinayaka.

The manuscript – Shrikrishnaras – Sangeet – Sangraha consists of 7 chapters.

The first chapter begins with the invocation of Lord Krishna and his consort, Radha, expressing the highest devotion. He has dedicated his work to these principal Vaishnava deities and in accordance with the ecstatic Vaishnava tradition he has also offered his invocation to Krishna Chaitanya.

In the second chapter, he offers his invocation to Shabda Brahma and has described Nada as original sound. He has elaborated the meaning and significance of Nada.

He also describes the various aspects of music viz. Nritya, Geeta, Vadya, Swara, Grama, Murchana, Ragas, and Talas. He has mentioned that there are two kinds of music viz. Margi and Deshi.

The third chapter elaborates the nature and kind of Ragas emphasising the importance of evocation of sentiment. It states the division of basic Ragas into 6 male Ragas and 36 female Raginis. The three Jatis of Ragas are elaborately described as sampurna (heptatonic) of 7 notes. The Dhyanmurtis (concepts) of each Raga and Ragini are mentioned.

The fourth chapter is on Talas and their variations. The ten elements of Tala (pranas) viz. Kala, Marga, Kriya, Anga, Graha, Jati, Kala, Laya, Yati and Prastara - are elaborately described.

Talas are divided into Marga and Deshi. They are further subdivided into Shuddha (pure talas), Shalag (combination of two talas), and Samkirna (combination of more than two talas).

The author further describes the division of dance (nartana) into Natya, Nritya and Nritta. The total hastas (hand gestures) mentioned are 32.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Musical instruments are divided into four types: Tata (string instruments), Anaddha (Percussion instruments), Ghana (Metallic instruments) and Sushir (wind instruments).

The fifth chapter begins with the division of song into two parts - Anibaddha (rendering of Alap without definite time measures) and Nibaddha (a composition having a definite time measure i.e. tala). It also incorporates any one of the five Angas (elements) such as: Pada (Poem), Pata (Syllables) Swara (musical note), Tenaka (auspicious word), Biruda (words in praise of hero or heroine). Nibaddha also comprises of dhatus (parts of the song) which are of four types - the first part is Udgrahaka meaning the opening lines corresponding to sthayi. The second part is Melapaka which comprises of further delineation of the song corresponding to the antara. The third part is Dhruva - the refrain of a particular line of the song. The fourth part is Abhoga - the concluding lines of the song.

There are three types of Nibaddha: Prabandha, Vastu, and Roopak, depending on the number of dhatus and angas included in each.

According to the number of elements incorporated in the composition, Jatis are formed. There are five types of Jatis:

Medini Jati has 6 elements
Nandini Jati has 5 elements
Deepani Jati has 4 elements
Pavani Jati has 3 elements
Taravali Jati has 2 elements

The sixth chapter deals with illustrations of Prabandha - gana taken from Vaishnava padavalis. It also emphasises the importance of Shringar ras (sentiment of love) and its delineation into various aspects of Nayikabhedas (states of heroine in love). It also describes Kunj Ras, Vasant Ras and festivals of Jhula and Vasant Utsav.

In the seventh chapter, the author concludes his discussions in the traditional Vaishnava form of prayer, with a selection of Prabandha gana based on Rasa - Vihara of Lord Krishna and the Gopis.

It stresses the importance of chanting of the various names of Lord Krishna (Nam Kirtan) to seek his blessings.

The author offers his salutation to Raja Bhagyachandra and his son King Gambhir Singh and states that this compilation was undertaken at the instance and inspiration of King Gambhir Singh.

This manuscript provides a very interesting and meaningful source material for a student who desires to undertake an indepth study of various

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

aspects of the traditional and classical dance and music of Manipur.

For editing this manuscript I acknowledge with thanks the assistance given to me by the Sanskrit Scholar, late Pandit Gajanan Ranade Shastri for correcting the grammatical and spelling mistakes, freelance journalist, music critic and scholar of Sanskrit, Hindi and Bengali, Shri Madanlal Vyas for the translation into Hindi, M/S Fontasey, Pune for the printing and The Ford Foundation, New Delhi, for the Publication Grant.

Gokulashtami
14th August, 1990.

Guru Bipin Singh

□□

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विषयसूची

	विषय	पृष्ठ
१.	संपादकीय	I
२.	प्रथम प्रकरण	१
	मंगलाचरण	
३.	द्वितीय प्रकरण	४
	संगीतलक्षण, नाद, वायु, संगीतस्वरूप, गीतगुण, गीतलक्षण, वाद्यवादक-लक्षण, स्वर, श्रुति, ग्राम, मूर्च्छना, तान, वर्ण, अलंकार-प्रयोजन, ग्रहस्वर, अंशस्वर, न्यासस्वर, जाति, ग्रामसम्बन्ध।	
४.	तृतीय प्रकरण	३६
	राग, पुं-स्त्रीभेद, पूर्णराग, षाड़व, औड़व, संकीर्ण, राग-रागिनी-ध्यान।	
५.	चतुर्थ प्रकरण	११६
	ताल, दस प्राण, गौड़ताल (अष्टताल, रुद्रताल, ब्रह्मताल, चतुर्दशताल), नाट्य, नृत्य, नृत्त, मार्ग, देशी, ताण्डव-लास्य, काष्ठनृत्य, नृत्तहस्त, गायक-लक्षण, वाग्गेयकार-लक्षण, वाद्य।	
६.	पंचम प्रकरण	१६२
	गीतभेद, (अनिबद्ध-निबद्ध), प्रबन्ध, वस्तु, रूपक, धातु, अंग, जाति, प्रबन्ध प्रकार–छायालग–ध्रुवकादि भेद, तालांग परिभाषा, सूडांग - ताल, ताल - प्रयोग, क्षुद्रगीत-लक्षण, गीतगुण, ग्रह, यति, मान, गमक, अभ्यास-प्रकार, गीतदोष।	
७.	षष्ठ प्रकरण	२११
	कुंजविहार्याष्टक, नायिकाभेद, शृंगारभेद, कुंजरास, वसंतदिवारास, निशावसंतरास, झूलनलीला, वसन्तोत्सव।	
८.	सप्तम प्रकरण	२३२
	मंगलाचरण, प्रबन्धगान - उदाहरण, रास, गुणकीर्तन, नाम, हरिनामस्तुति, चित्रकाव्य।	

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अथ प्रथम प्रकरणम्

श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः

गोकुलानन्द गोविन्द गोष्ठेन्द्रकुलचन्द्रमः।
प्राणेश सुन्दरोत्तंस नागराणां शिरामणे ।।१।।
वृन्दावनविधो गोष्ठयुवराज मनोहर।
श्रीराधिकाप्राणबन्धो कृष्णचन्द प्रसीद मे ।।२।।
विद्यानन्दोदयो यस्य मकरन्दस्य बिन्दुवत्।
तद्गोविन्द पदद्वन्द्वमरविन्दमुपास्महे ।।३।।
चिदानन्दरसोल्लासनिदानं श्यामसुन्दरम्।
वन्दे वृन्दावनाधीशं गोविन्दमहमाश्रये ।।४।।
मदेकबन्धो मत्सिंगन्मद्गुरो मन्महाधन।
मन्निस्तारक मद्भाग्य मदानन्द नमोऽस्तु ते।।५।।
भवताधिष्ठिताः सर्वे सच्चिदानन्दरूपिणा।
त्वमेव कथ्यसे सद्भिगस्तस्मै तुभ्यं नमोनमः ।।६।।

हे गोकुल के आनंदरूप गोविंद, गोकुल के राजकुल के चंद्र, मेरे प्राणों के स्वामी, सुंदरों में सुंदर, सहृदयश्रेष्ठ, वृंदारण्य के चंद्र, गोकुल के युवराज, मनमोहन, श्रीराधाप्राणप्रिय, कृष्णचंद्र मुझ पर प्रसन्न हो जाओ ।।१-२।।

विद्यानंद का प्रकाश जिसके मधुर रस का एक बिंदुमात्र है, ऐसे गोविंद के चरणकमलद्वन्द्व की मैं उपासना करता हूँ ।।३।।

मैं चैतन्य स्वरूप, आनंदरस-प्रवाह के मूल कारण, वृंदावनाधीश्वर घनश्यामसुंदर भगवान गोविंद की शरण में जाता हूँ ।।४।।

मेरे एकमेव बांधव, सर्वदा मुझमें रहनेवाले, मेरे गुरुस्वरूप, महाधनस्वरूप, मेरा उद्धार करनेवाले, मेरे सौभाग्यस्वरूप और आनंदरूप, हे भगवन् तुम्हें प्रणाम है ।।५।।

हे गुरो, तुम सच्चिदानंदरूप सर्वत्र विद्यमान हो, इसीलिए विद्वान लोक तुम्हारा ही वर्णन करते हैं। ऐसे तुमको प्रणाम है ।।६।।

सर्वशास्त्राब्धिपीयूष सर्ववेदैक सत्फल।
सर्व सिद्धांतरत्नाढ्य सर्वलोकैक दृक्पद।।७।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

असाधुसाधुतादायिन्नपिनीचोच्चतारक[1] ।
हा न मुंच कदाचिन्मां प्रेरणा हृत्कण्ठयोः स्फुर ।।८।।
यस्य कृपालवेनैव भक्तिसिद्धांतविद् भवेत् ।
तमहं श्रीगुरुं वन्दे करुणेक्षणदर्शिनम् ।।९।।
अद्वैताचार्यसंश्लाघिन् सार्वभौमाभिनंदक।
रामानंदकृतप्रीते सर्वे वै तव बांधवाः ।।१०।।
आजानुबाहुस्मेरास्य नीलाचलविभूषण।
जगत् प्रवर्तितस्वादुभगवन्नामकीर्तन ।।११।।
श्रीमच्चैतन्यदेव त्वां वंदे गौरांगसुंदर।
शचीनंदन मां त्राहि यति चूडामणि प्रभो।।१२।।
श्रीकृष्णचैतन्यघनं प्रपद्ये सपद्यपध्वस्ततमः प्रपंचम्।
पंचेषुकोट्यर्बुदकान्तिधारापरंपराप्यायितसर्वविश्वम्।।१३।।

सर्वशास्त्ररूपी समुद्र के अमृत, सर्व वेदों के एकमात्र उत्कृष्ट फल, सर्व सिद्धांत रत्नों से धनवान्, सभी लोगों की दृष्टि के एकमात्र विषय, (ऐसे हे श्री गुरो) ।।७।।

अच्छे-बुरे फल देने वाले होते हुए भी उच्च-नीच गति देने वाले हे गुरो, मेरा कभी त्याग नहीं करना; मेरे कण्ठ और हृदय में प्रेम से प्रकट हो जाओ ।।८।।

जिसकी लेशमात्र कृपा से (व्यक्ति) भक्ति-सिद्धांतों का ज्ञाता हो जाता है, उस कृपादृष्टि से देखनेवाले श्रीगुरु को मैं प्रणाम करता हूँ।।९।।

अद्वैताचार्य की स्तुति करनेवाले, सार्वभौम का अभिनंदन करनेवाले, रामानंद पर प्रेम करनेवाले हे गुरु सब तुम्हारे बांधव हैं ।।१०।।

जानु तक बाहु और हास्ययुक्त मुख से सुशोभित, नीलाचल (जगन्नाथ पुरी) के भूषण आपने जगत् में मधुर भगवन्नाम संकीर्तन का प्रचार किया ।।११।।

ऐसे हे श्री चैतन्यदेव! गौरवर्ण से सुशोभित; माता शची को आनंद देनेवाले, सन्यासियों में श्रेष्ठ हे प्रभो मेरा रक्षण करो।।१२।।

चैतन्यस्वरूप, अज्ञानादिप्रपंचकारण का नाश करनेवाले, कोटि मदनों की कांति से संपूर्ण विश्व को जीवन देने वाले हे श्रीकृष्ण मैं आपकी शरण में आता हूँ।।१३।।

नत्वा श्रीकृष्णचैतन्यं सर्वमंगलमंगलम्।
गायकानां प्रमोदाय ब्रुवे संगीतसंग्रहम्।।१४।।

१. पाठान्तर - नीचोच्चताकर।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शरीरं सुरूपं कला वा कलत्रं धनं मेरुतुल्यं वचश्चारुचित्रम्।
मनो नैव लग्नं यशोदाकिशोरे ततः किम् ततः किम् ततः किम् ततः किम् ।।१५।।
न कविर्मुरजित् कविरित्यादि च सतां गिरा।
श्रीकृष्ण केलिलावण्यवर्णनोत्कर्ष हेतवे।
काप्यत्रचिंता नास्तीह ह्यपूतः पूततामियात् ।।१६।।
मां मदीयमहं तस्मै दत्वा लिखामि केवलम् ।
मामस्मिन् प्रेरितेशस्य महदाज्ञा परं धनम् ।।१७।।

इति कृष्णरससंगीतसंग्रहे श्रीकृष्णादीनां संकीर्तनपूर्वकं
तत्तद्वन्दनशंसनं नाम प्रथमप्रकरणम् ।

चैतन्य स्वरूप, सर्व मंगलों के भी मंगल ऐसे श्रीकृष्ण को प्रणाम करके मैं संगीत जाननेवालों के आनंद के लिए संगीत संग्रह का कथन करता हूँ ।।१४।।

सुंदर स्त्री, कलाओं का ज्ञान, सुंदर स्त्री, मेरुपर्वत तुल्य घन, सुंदर आश्चर्योत्पादक वचन, इत्यादि सब बातों की अनुकूलता होते हुए भी यशोदानंदन श्रीकृष्ण में मन एकाग्र नहीं हुआ, तो उस सब ऐहिक वैभव का क्या उपयोग? अर्थात् वह सब निष्फल है ।।१५।।

मैं कवि नहीं हूँ, मुरमर्दन श्रीकृष्ण ही कवि हैं, सज्जनों की ऐसी उक्तियों का स्मरण कर भगवान् श्रीकृष्ण की क्रीड़ाओं और लावण्य का उत्कृष्ट वर्णन करने में मुझे चिंता नहीं, अंत में उसके स्मरण से व्यक्ति की अपवित्रता दूर होगी और वह पवित्र हो ही जायगा ।।१६।।

मैं स्वयं को और मेरे संबंधी सर्व वस्तुजात को श्रीकृष्ण के चरणकमण में समर्पित कर मैं लिखने को प्रवृत्त हुआ हूँ। भगवान् की आज्ञा ने ही प्रेरणा देकर मुझे इस काम में प्रवृत्त किया है; बड़ों की आज्ञा ही सर्वश्रेष्ठ धन है।।१७।।

— इति प्रथम प्रकरणम् —

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अथ द्वितीय प्रकरणम्

अथ संक्षेपेणादौ संगीतादिलक्षणं ज्ञापयितुं, प्रकारं (च)
वक्तुं पुनर्मंगलमाचरति।
यस्य व्याससमासात्मा शब्दार्थमयनिर्मितिः ।
विद्वद्व्यामोहजननी शब्दब्रह्म नतोऽस्मि तत् ।।१८।।
नृत्यं गीतं च (मानं च) वाद्यं च स्वरान् ग्रामांश्च मूर्च्छनाः।
रागान् हस्तकतालांश्च यान् ब्रह्मा व्यसृजत् पुरा ।।१९।।

(संगीतघटकाः)
सप्त स्वरास्त्रयो ग्रामा मूर्च्छनास्त्वेकविंशतिः।
रागा द्विचत्वारिंशच्च चत्वारिंशच्च हस्तका ।।२०।।
भाग्येतो यदि जानाति श्रीश्रीदामोदराज्ञया।
जानाति सप्तशतिकं मानमेतेषु कोविदः ।।२१।।

(संगीत प्रकाराः)
गीतं वाद्यं नर्तनं च त्रयं संगीतमुच्यते।
मार्गदेशीविभेदेन संगीतं द्विविधं मतम् ।।२२।।
संगीतसारेच

अथ संगीतं द्विविधमाह—
मार्गदेशी विभागेन (विभेदेन) संगीतं द्विविधं मतम् ।.
स्वर्गे मार्गाश्रितं देशाश्रितं भूतलरंजितम् ।।२३।।

अब संगीतादि के लक्षण संक्षेप में बतलाता हूँ और उसके प्रकार भी कहता हूँ। पुनः मंगल कामना करता हूँ।

जिसके व्यासरूप अलग-अलग शब्दों और समासत्मक जुड़े हुए शब्दों से शब्दरूप और अर्थरूप ब्रह्मांड की उत्पत्ति हुई है, और जो विद्वानों को मोहित करने वाला है, उस उत्पत्ति के आदिकारण शब्दब्रह्म को मैं प्रणाम करता हूँ।।१८।।

नृत्य, गीत, वाद्य, स्वर, ग्राम, मूर्च्छना, राग, हस्तक और ताल का ब्रह्माजी ने पहले निर्माण किया ।।१९।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सात स्वर, तीन ग्राम, इक्कीस (२१) मूर्च्छना, बयालीस (४२) राग और चालीस (४०) हस्तक (करमुद्राएं) मनुष्य यदि सौभाग्य से जान लेगा, तो वह इनका (इस विद्या का) ज्ञाता कहा जा सकता है। मान कुल मिलाकर सात सौ (७००) हैं। (श्रीश्री दामोदर की आज्ञा से जो जानता है, – "दामोदर कवि या भगवान् की आज्ञा या इच्छा" इसमें संदेह है।) ।।२०-२१।।

गीत, वाद्य और नर्तन तीनों मिलकर संगीत होता है। मार्ग और देशी भेद से संगीत दो प्रकार का होता है ।।२२।।

संगीतसार में संगीत दो प्रकार का कहा गया है– मार्ग और देशी। मार्गाश्रित संगीत स्वर्ग में है। देशी संगीत भूतल पर लोगों का रंजन करता है।२३।।

पारिजाते–

मार्गदेशीय भेदेन द्विधा संगीतमुच्यते।
वेधा मार्गाख्यसंगीतं भरतायाब्रवीत् (पुरा) स्वयम् ।।२४।।
ब्रह्मणोऽधीत्य भरतः संगीतं मार्गसंज्ञितम् ।
अप्सरोभिश्च गन्धर्वैः शम्भोरग्रे प्रयुंक्तवान्। इति ।।२५।।
तद्देशीयमिति प्राहुःसंगीतं देशभेदतः।

किंच–

तत्र देशोस्थया रीत्या यत् स्याल्लोकानुरंजकम्।
देशे देशे तु संगीतं तद्देशीयमितीर्यते ।।२६।।
महादेवस्य पुरतस्तन्मार्गाख्यं विमुक्तिदम् ।
देशे देशे तु संगीतं तद्देशीत्यभिधीयते ।।२७।।
गीतवादित्रनृत्यानां रक्तिः साधारणो गुणः।
अतो रक्तिविहीनं यन्न तत् संगीतमुच्यते ।।२८।।

(नादमाहात्म्यम्)

गीतं वाद्यं च नादात्मकम्। गीतं वाद्याधीनम्। नृत्यं च। नादाद् वर्णः, वर्णात् पदम्, पदाद् वाक्यम्, नादो द्विविधः, अनाहतः, आहतश्च। अनाहतस्तु गुरोरुपदिष्टमार्गेण मुनीनां मुक्तिदः। आहतस्तु लोकरंजकः। श्रुत्यादिद्वारा भवरंजकश्च।

'संगीत पारिजात' में कहा गया है कि मार्ग और देशी भेद से संगीत दो प्रकार का है। मार्ग नामक संगीत स्वयं ब्रह्माजी ने भरतमुनि को बताया ।।२४।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ब्रह्मा से अध्ययन कर भरत ने अप्सराओं और गंधर्वों द्वारा उसका प्रयोग शिवजी के सामने किया ।।२५।।

भिन्न - भिन्न देशों के भेद से जो संगीत प्रचलित हुआ, वह देशी संगीत कहलाया।

और भी कहा गया है-

देश-देश की रीति के अनुसार जो संगीत लोकरंजन का साधन होता है, वह देशी नाम से प्रसिद्ध है ।।२६।।

मार्ग नामक संगीत महादेव के समक्ष प्रस्तुत किया गया। वह मुक्ति का भी साधन है। देश-देश में जो संगीत प्रचलित है, वह देशी कहलाता है ।।२७।।

गीत, वाद्य और नृत्य का मुख्य गुण रंजकता है। इसलिए जिसमें रंजकता नहीं, अथवा रक्तिविहीन है, वह संगीत ही नहीं कहा जाता ।।२८।।

गीत और वाद्य दोनों नादात्मक (नादरूप) है। गीत वाद्य के अधीन है; और नृत्य भी। नाद से वर्ण की उत्पत्ति होती है; वर्ण से पद बनते हैं; और पदों से वाक्य। नाद के दो प्रकार हैं- अनाहत और आहत। गुरु के उपदेश के मार्ग से उद्भूत अनाहत नाद मुनियों के लिए मुक्ति का साधन बनता है। आहत नाद लोगों का रंजन करनेवाला होता है। और श्रुतियों द्वारा वह ईश्वर एवं संसार को प्रसन्न करने का साधन होता है।

नादविद्यां परां लब्ध्वा सरस्वत्याः प्रसादतः।
कवलाश्वतरौ नागौ शम्भोः कुण्डलतां गतौ ।।२९।।
पशुःशिशुर्मृगोवापि नादेन परितुष्यति।
अतो नादस्य माहात्म्यं व्याख्यातुं केन शक्यते ।।३०।।
नादाब्धेस्तु परं पारं न जानाति सरस्वती।
अद्यापि मज्जन भयात् तुम्बीं वहति वक्षसि ।।३१।।
एवमेव प्रकारान्तरेणापि संगीतसारे — तत्र प्रथमोद्दिष्टत्वेन
गीतस्य वक्ष्यमाणतयानादं विना तदनुपपत्तेः।
प्रथमं नादमाह। तदुक्तम्—

(संगीत दामोदरतः)
न नादेन विना गीतं न नादेन विना स्वरः।
न नादेन विना रागस्तस्मान्नादात्मकं जगत् ।।३२।।
न नादेन विना ज्ञानं न नादेन विना शिवः।
नादरूपं परं ज्योतिर्नादरूपः स्वयं हरिः ।।३३।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सरस्वती की कृपा से श्रेष्ठ नादविद्या (गानविद्या) प्राप्त कर कवल (कंबल) और अश्वतर नाग शिवजी के कुण्डल बन गये ॥२९॥

नाद से पशु-पक्षी, हरिण, बालक आदि सब संतुष्ट होते हैं। इसलिए नाद की महिमा, माहात्म्य का वर्णन कौन कर सकता है ॥३०॥

नादाब्धि (नाद-सागर) का परपार सरस्वती भी नहीं जानती; वह अभी तक नाद समुद्र में डूबने के भय से वक्षःस्थल पर तुम्बीफल (वीणा की तुम्बी) धारण किये हुए है॥३१॥

संगीतसार में इसी प्रकार दूसरे ढंग से कहा गया है-

गीत ही प्रथम अभीष्ट है, किंतु नाद के बिना वह सिद्ध नहीं होता।

अतः पहले नाद के बारे में कहते हैं। कहा है-

नाद के बिना गीत नहीं, नाद के बिना स्वर नहीं, नाद के बिना राग नहीं हो सकता। अतः यह जगत नाद के अधीन है, नादात्मक है, नादरूप है ॥३२॥

नाद के बिना ज्ञान नहीं, नाद के बिना शिव, कल्याण नहीं, परम् ज्योतिरूप ब्रह्म भी नादरूप है, स्वयं भगवान् विष्णु भी नादरूप हैं ॥३३॥

तदुत्पत्तिकारणमाह –

आत्मा विवक्षमाणोऽयं मनः प्रेरयते यतः।
देहस्थवह्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम् ॥३४॥
नकारः प्राणवायुः स्याद्दकारो हव्यवाहनः।
ताभ्यामुत्पद्यते यस्मात्तस्मान्नादोऽयमुच्यते ॥३५॥

(नादत्रैविध्यम्)

व्यवहारेत्वसौ नादः प्रोच्यते त्रिविधो बुधैः।
मन्द्रो हृदि स्थितः कण्ठे मध्यस्तारश्च मूर्धनि
द्विगुणः किल मानेन पूर्वस्मादुत्तरोत्तरः ॥३६॥

कोहलीयं तु –

आहतोऽनाहतश्चेति स नादो द्विविधो मतः
यत्रोभयोश्च संयोग आहतः स प्रकीर्तितः ॥३७॥
आकाशसम्भवो नादस्तथानाहत उच्यते।
आहतं नादमाकृष्य तथानाहतसंज्ञकात्।
तं नादं सप्तधाकार्षीत् तथा षड्जादिभिः स्वरैः ॥३८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नाद की उत्पत्ति का कारण कहते हैं-

आत्मा में बोलने की इच्छा होने पर मन को प्रेरणा मिलती है, मन से देहस्थ जठराग्नि पर आघात होता है, जिससे वायु संचालित होती है ।।३४।।

न-कार प्राणवायु है, द-कार अग्नि है; इन दोनों से उत्पन्न होने के कारण इसे नाद कहा जाता है ।।३५।।

व्यवहार में नाद तीन प्रकार का होता है। हृदय में प्रकट होता है या हृदय से उत्थित होता है उसे मन्द्र कहते हैं। कण्ठ से उत्थित, प्रकट होनेवाला मध्य है और मस्तक (मूर्द्ध) से प्रकट होने पर वह नाद तार कहलाता है। पूर्व-पूर्व से उत्तर-उत्तर ध्वनि पूर्व की अपेक्षा द्विगुण होती है।।३६।।

कोहल ने कहा है-

आहत और अनाहत भेद से नाद द्विविध है। जहाँ दो का संयोग होता है, वह आहत कहा जाता है (दो के आघात से होनेवाला) ।।३७।।

आकाश में आघात के बिना जो नाद उत्पन्न होता है, वह अनाहत कहलाता है। अनाहत नाद से, और आहत नाद से आकर्षण कर, खींचकर उस नाद को सात प्रकार का किया गया; वे ही षड्जादि सप्तस्वर हैं ।।३८।।

इति वस्तुतस्तु- (मुक्तावल्यां - संगीत दामोदरेपि)
आकाशाग्नि मरुज्जातो नाभेरूर्ध्वं समुच्चरन्।
मुखेऽभिव्यक्तिमायाति यःस नादः प्रकीर्तितः ।।३९।।
स च प्राणिभवोऽप्राणिभवश्चोभयसंभवः।
आद्यः कायोद्भवो वीणासंभवस्तु द्वितीयकः ।।४०।।
तृतीयश्चापि वंशादिसंभवो स त्रिघा मतः। इति।

(संगीतज्ञानफलम्)
वीणावादनतत्त्वज्ञः श्रुति जाति विशारदः।
तालज्ञश्चा प्रयासेन मोक्षमार्गं स गच्छति ।।४१।।

(नादोत्पत्ति)
आत्मना प्रेरितं चित्तं वह्निमाहन्ति देहजम्।
ब्रह्मग्रंथिस्थितं प्राणं स प्रेरयति पावकः ।।४२।।
पावक प्रेरितः सोऽथ क्रमादूर्ध्वपथे चरन् ।
अतिसूक्ष्मध्वनिं नाभौ हृदि सूक्ष्मं गले पुनः ।।४३।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पुष्टं शीर्षे त्वपुष्टं च कृत्रिमं वदने तथा।
आविर्भावयतीत्येवं पंचधा कीर्त्यते बुधैः।
नकारं प्राणनामानं दकारमनलं विदुः ।।४४।।
(जातः प्राणाग्निसंयोगात्तेन नादोऽभिधीयते) ।। मूले नास्ति–सं. दा.

आकाश (शून्य) से वायु उत्थित, उत्पन्न होकर नाभि के ऊर्ध्वदेश में संचालित होने लगती है और मुख से प्रकट होती है, तब उसे नाद कहा जाता है ।।३९।।

यह प्राणी से और अप्राणी (वीणादि) से, दोनों से उत्पन्न हो सकता है। आदि में, पहला नाद शरीर से उत्पन्न होता है, दूसरा वीणा से उत्पन्न होता है और तीसरा वंशादि से भी उत्पन्न होता है; इस प्रकार वह तीन प्रकार का होता है। वीणावादन के तत्त्व का जो ज्ञाता हो, श्रुति-जाति में जो निष्णात हो और ताल जाननेवाला हो, वह बिना प्रयास ही मोक्ष-मार्ग पर अग्रसर होता है।।४०-४१।।

आत्मा की प्रेरणा से मन देहस्थ अग्नि पर आघात करता है, वह अग्नि ब्रह्मग्रन्थि स्थित प्राणवायु को प्रेरित करती है ।।४२।।

अग्नि की प्रेरणा से वह क्रम से ऊर्ध्व मार्ग संचलन करती हुई नाभि से अति सूक्ष्म ध्वनि प्रकट करती है। हृदय में सूक्ष्म, गले में कुछ और पुष्ट ध्वनि, मस्तक में वही अपुष्ट जैसी (कृत्रिम) ध्वनि होती है और फिर मुँह से प्रकट होती है। इस प्रकार पाँच अवस्थाओं में परिवर्तित होने से वह पाँच प्रकार की होती है। न-कार प्राण का वाचक है, द-कार अग्नि का वाचक है। प्राण और अग्नि के संयोग से उत्पन्न होता है, इसलिए उसे नाद कहते हैं ।।४३-४४।।

(संगीत दर्पण)
अथ वायुः–
प्राणापानौ तथा व्यानः समानोदानसंज्ञकौः।
नागः कूर्मश्च कृकरो देवदत्तो धनंजयः।।४५।।
तेषां मुख्यतमः प्राणो नाभिदेशदधः स्थितः।
चरत्यास्ये नासिकयोर्नाभौ हृदयपंकजे ।।४६।।
शब्दोच्चारणनिःश्वासश्वासकासादिकारणम्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(गुरु परंपरा)

शिवःशिवा च हर्षेण रहः संगीतमभ्यसत् ।।४७।।

न केनचित्तु तज्ज्ञातं ततो वेदेष्वधिष्ठितम्।

त्रैलोक्यैश्वर्ययुक्तेन विनोदाय बिडौजसा।।४८।।

संगीत प्रार्थितो वेदाद्विधिः प्रादुरभावयत्।

भरतं नारदं रंभां हूहूं तुम्बुरुमेव च।

पंच शिष्यान् ततोऽध्याप्य संगीतं व्यादिशद्विधिः ।।४९।।

(नारद पंचमसार)

ते पंचशिष्याः पृथक् पृथक् ग्रंथं चक्रुः। रंभाकृतानुसारेण शक्रः स्वर्गे नाट्यानुष्ठानमकरोत् । हूहूः पाताले, नारदो भरतश्च भूतले, ज्ञान बलेन भरतादयो मनसा भद्रं नाम नाट्यं चक्रुः।

अव्याहतगतिः स स्वर्गे पाताले, भूमौ, गीतस्यानुष्ठानेन सर्वानतोषयत्। तस्य सुभद्रादिपुत्रपौत्रादिक्रमेण सर्वत्र संगीतप्रचारोऽभूत्।

वायु–

प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान, नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त, धनंजय, ऐसे पाँच-प्राण और पाँच उपप्राण हैं।।४५।।

इनमें मुख्य प्राण है। वह नाभिदेश से नीचे के स्थान में रहता है। वह नाभि, हृदय, मुख, नासिका आदि में संचरण करता है।।४६।।

वही शब्दोच्चारण, निःश्वास, श्वास, खाँसी आदि का कारण है। शिव-पार्वती ने आनंद से एकांत में संगीत का अभ्यास किया।।४७।।

तब तक किसी को इसका ज्ञान नहीं था। शिवजी से ही यह ज्ञान वेदों में अधिष्ठित हुआ, आया। त्रैलोक्य के ऐश्वर्य से युक्त इंद्र ने ब्रह्मा से प्रार्थना की और ब्रह्मा ने वेद से संगीत की सृष्टि की। भरत, नारद, रम्भा, हूहू, तुम्बरु – इन पाँच शिष्यों को शिक्षा देकर ब्रह्माजी ने संगीत का प्रचार किया। ।।४८-४९।।

इन पाँच शिष्यों ने पृथक्-पृथक् ग्रथों की रचना की। रंभा के ग्रंथ के अनुसार इंद्र ने स्वर्ग में नाट्य का प्रयोग किया, हूहू ने पाताल में, नारद और भरत ने भूतल (पृथ्वी) पर। भरतादि ने अपने ज्ञान के बल पर मन से भद्र नामक नाट्य की रचना की। भरत की गति स्वर्गादि तीनों लोकों में होने के कारण उन्होंने वहाँ अनुष्ठान कर सबको संतुष्ट किया। सुभद्र आदि पुत्र-पौत्र परंपरा ने क्रम से उसका सर्वत्र प्रचार किया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अथ संगीतोत्पत्तिमाह। संगीतसारे च।
पुरा चतुर्णां वेदानां सारमाकृष्य पद्मभूः।
इमं तु पंचमं वेदं संगीताख्यमकल्पयत् ।।५०।।
कस्मात् किं जातमित्याह
ऋग्भ्यो वाच्यमभूद् गीतं सामभ्यः समपद्यत।
यजुर्भ्योऽभिनया जाता रसाश्चाथर्वणाः स्मृताः ।।५१।।
संप्रदायशुद्धिमाह
ब्रह्मेशनन्दिभरत दुर्गानारदकोहलाः।
दशास्य वायुरंभाद्याः संगीतस्य प्रचारकाः ।।५२।।
प्राशस्त्यमाह
श्रुतिस्मृत्यादिसाहित्य नानाशास्त्रविदोऽपि च।
संगीतं ये न जानन्ति ते द्विपदा मृगाः स्मृताः ।।५३।।

संगीत दामोदरे
संगीतकलरम्येण (संगीतकेनरम्येण) सुखं यस्य न चेतसि।
मनुष्यो वृषभो लोके विधिनैव स वंचितः ।।५४।।

संगीतसार में संगीत की उत्पत्ति का वर्णन इस प्रकार है-

ब्रह्माजी ने चारों वेदों से सारभूत बातें लेकर संगीत के इस पाँचवें वेद की सृष्टि की ।।५०।।

किस-किस वेद से क्या-क्या लिया गया, यह कहते हैं-

ऋग्वेद से वाच्य, सामवेद से गीत, यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से रस की सृष्टि की गयी अथवा उन्हें ग्रहण किया गया ।।५५।।

संप्रदाय की शुद्ध परंपरा कहते हैं-

ब्रह्मदेव, शंकर, नंदि, भरत, दुर्गाशक्ति, नारद, कोहल, रावण, वायु, रंभा आदि संगीत के प्रचार करनेवाले हुए हैं ।।५२।।

संगीत की प्रशस्ति कहते हैं-

वेद, शास्त्र, पुराण, स्मृति आदि विविध शास्त्रों का पंडित होते हुए भी जो संगीत नहीं जानते, वे दो पैरोंवाले पशु हैं ।।५३।।

संगीत दामोदर में कहा गया है-

संगीत के मधुर, रम्य स्वर से जिसके मन में सुख का संचार नहीं होता या आनंद की अनुभूति नहीं होती, वह इस जगत में देव-वंचित है और मनुष्य होते हुए भी बैल ही है ।।५४।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रयोजनमाह—
त्रिवर्गफलदाः सर्वे दानयज्ञस्तवादयः।
एकं संगीतविज्ञानं चतुर्वर्गफलप्रदम् ।।५५।।

दामोदरे—
परमानंदविवर्धनमभिमतफलदं वशीकरणम्।
सकलजनचित्तहरणं विमुक्तिबीजं परं गीतम् ।।५६।।

(संगीत पारिजात में संगीत के स्वरूप का वर्णन इस प्रकार है—)
किं स्वरूपमित्याह संगीत पारिजाते—
गीतवादित्रनृत्यानां त्रयं संगीतमुच्यते।
गानस्यात्र प्रधानत्वात्तसंगीतमितीरितम् ।।५७।।

शिरोमणौ—
गीतवाद्ये उभे एव संगीतमिति केचन
तत्तिर्यङ्नरदेवादिमनोहारि प्रकीर्तितम् ।।इति।। ।।५७।।

दामोदरे—
गीतेन हरिणा बंधं (रंजं) प्राप्नुवन्त्यपि पक्षिणः।
बलादायान्ति फणिनः शिशवो न रुदन्ति च ।।५९।।

पारिजातेऽपि—
दोलायां शायितो बालो रुदन्नास्ते यदा क्वचित्।
तदा गीतामृतं पीत्वा हर्षोत्कर्षं प्रपद्यते ।।६०।।

संगीत का प्रयोजन, फल इस प्रकार कहा गया है– दान, यज्ञ, स्तुति, व्रत, पूजा आदि से तीन फल मिलते हैं, यथा धर्म, अर्थ और काम; लेकिन संगीत ही ऐसा है जो चतुर्वर्ग यानी धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, चारों पुरुषार्थ प्रदान करता है।।५५।।

'दामोदर' में कहा गया है– संगीत परमानंद को बढानेवाला, इच्छित फल देनेवाला, अन्यों को वश में करनेवाला, सभी लोगों के चित्त को मोहनेवाला और मोक्ष का साधन है।।५६।।

संगीत पारिजात में इसका स्वरूप क्या कहा गया है, कहते हैं– गीत, वाद्य और नृत्य, इन तीनों के समूह को संगीत कहते हैं, लेकिन तीनों में गीत मुख्य है, अतएव उसका नाम संगीत हुआ।।५७।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शिरोमणि में है– कुछ लोग गीत और वाद्य दो को ही संगीत कहते हैं। उसे मानवेतर प्राणी, मानव, देव आदि सबका मन हरण करनेवाला कहा गया है ।।५८।।

दामोदर में कहा गया है– गीत से हरिण, पक्षी बंधन में आ जाते हैं (प्रमुदित होते हैं), साँप जबरदस्ती बिल में घुस जाते हैं और बच्चे रोते नहीं ।।५९।।

पारिजात में है– यदि झूले में सुलाया हुआ बालक रोये, तो गीतरूपी अमृत का पान कर वह परम हर्षित होता है।।६०।।

क्रुद्धो विषं वमन् सर्पः फणामान्दोलयन् मुहुः।
गानं जांगलिकाच्छ्रुत्वा हर्षोत्कर्षं प्रपद्यते ।।६१।।
मृगः सोऽपि तृणाहारो विचरन्नटवीं तदा (सदा)
लुब्धकादपि संगीतं श्रुत्वा प्राणान् प्रपद्यते (प्रयच्छति) ।।६२।।

विष्णुपुराणेऽपि–
काव्यालापाश्च ये केचिद्गीतकान्यखिलान्यपि।
शब्दमूर्तिधरस्यैते विष्णोरंशा महात्मनः ।।६३।।

तत्रापि–(संगीत पारिजाते)
देवस्य मानवं गानं वाद्यं नृत्यमितिप्रियम्।
कुर्याद्विष्णोः प्रसादार्थमिति शास्त्रे प्रकीर्तितम् ।।६४।।
नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न वै।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद।।६५।।
शृण्वन् (गायन्) सुभद्राणि रथांगपाणेर्जन्मानि कर्माणि च यानि लोके।
गीतानि नाम ।ने तदर्थकानि गायन् विलज्जो विचरेदसंगः ।।६६।।
विष्णुनामानि पुण्यानि सुस्वरै रचितानि चेत्।
भवन्ति सामतुल्यानि कीर्तितानि मनीषिभिः ।।६७।।

बड़े क्रोध से फ ग को बार-बार हिलाता हुआ और विष उगलनेवाला साँप भी साँप पकड़ने वाले के मुख से गाना सुनकर अतिशय आनंद में मग्न हो जाता है ।।६१।।

घास खाकर जीवित रहनेवाला हरिण भी जंगल में घूमता हुआ शिकारी के मुख से गाना सुनकर अपने प्राण अर्पण र देता है ।।६२।।

विष्णुपुराण में कहा गया है–

सब काव्य, सब गीत, आलाप आदि शब्दमूर्ति धारण करनेवाले विष्णु के ही अंश हैं।।६३।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शास्त्र में कहा गया है कि भगवान को गीत, वाद्य और नृत्य अतिप्रिय है, अतः भगवान विष्णु की प्रसन्नता के लिए उनके सामने इनका अनुष्ठान करना चाहिए।।६४।।

नारद से भगवान् कहते हैं- मैं वैकुण्ठ में अथवा योगियों के हृदय में निवास नहीं करता, मैं वहाँ रहता हूँ जहाँ मेरे भक्त मेरे यश का गान करते हैं ।।६५।।

चक्रधारी भगवान् के मंगलस्वरूप जन्म, कर्म प्रसिद्ध हैं, उसके गीत, उस अर्थ के नाम का गान करते हुए निसंग होकर विचरण करें ।।६६।।

सुस्वर, यानी मधुर स्वरों में रचित विष्णुनाम के गीत मंगलस्वरूप होने से साम के तुल्य होते हैं, विद्वान लोग उनका गान करें तो वह सामवेद ही है ।।६७।।

अथ गीतम्-
तल्लक्षणं त्वाचार्याणां मतभेदाद् बहुधा।
तत्रापि बहुसम्मतमेवोच्यते।

संगीत सारे-
गीतं रंजकं धातुमातु सहितम् । इति।
गीतस्यावयवो धातुः रागादिर्मातुरुच्यते।

संगीत कौमुद्याम्-
रागैर्विरचितं गीतमिति।

गीतप्रकाशेतु-
रंजकस्वरसंदर्भो गीतमिति।

वस्तुतस्तु नारदसंहितायाम्-
धातुमातुसमायुक्तं गीतमित्यभिधीयते।
तत्र नादात्मकं गेयं धातुरित्यभिधीयते ।।६८।।
गुणादिधारणाद्धातुर्गीतावयव एव सः।
गुणालंकार वाक्येषु रंजकौजस्विता यदि।
मातुः स गदितस्तज्ज्ञैर्मानवस्य प्रमोदनात् ।।६९।।
नादात्मकमिति-नाद एव आत्मास्वरूपं यस्य तत्।
अत्र नादपदेन नादजन्यानां श्रुतिस्वराणां ग्रहणम्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अब गीत के लक्षण कहते हैं। आचार्यों में मतभेद के कारण उनके लक्षण कई प्रकार के हैं। उनमें से हम वे लक्षण बताते हैं जो बहुतों को मान्य हैं।

संगीतसार में कहा गया है कि जिसमें रंजक धातु और मातु है, वह गीत है। गीत के अवयव को धातु और राग वगैरह को मातु कहते हैं।

संगीत कौमुदी में है कि रागों की रचना जिसमें होती है वह गीत है।

गीतप्रकाश में है कि रंजक स्वरसंदर्भ, स्वर-रचना ही गीत है।

वस्तुतः नारदसंहिता में है- धातु, मातु दोनों से जो समायुक्त है, वह गीत है। नाद से परिपूर्ण जो गेय रचना है, उसे धातु कहते हैं। गुण आदि धारण करने से वह धातु कहा जाता है, वह गीत का अवयव ही है। गुण, अलंकार और वाक्यों में रंजकत्व और ओजस्विता हो तो उसे विद्वान मातु कहते हैं। उससे मनुष्य आनंदित, प्रमुदित होते हैं। ।।६८-६९।।

नादात्मक का अर्थ है नाद ही है आत्मा-स्वरूप जिसका। यहाँ नाद पद से नाद से उत्पन्न होनेवाले श्रुति-स्वर ग्रहण किये गये हैं।

यदुक्तम्–
नादाच्च श्रुतयो जातास्ताभ्यः षड्जादयः स्वराः।
तेभ्यः स्युर्मूर्च्छनास्ताभ्यस्तानाख्य ग्रामसंभवः ।।७०।।
क्वचिच्छास्त्रे कश्चिद्विशेष प्रकारो दृश्यते–
धातु मात्रासमायोगो गीतमित्यभिधीयते।
तत्र नादात्मको धातुर्मात्रात्वक्षरसंचयः ।।७१।।

(नारद संहितायां)
ऊर्ध्वाधोहृदयस्थानान्मारुतः प्राणसंगतः।
ब्रह्मरन्ध्रात् पतन् वक्त्रान्नाद आविर्भवत्यसौ ।।७२।।

अथ गायक लक्षणमाह–
व्यक्तं शुद्धं यथाशास्त्रं दोषाष्टकविवर्जितम्।
सकण्ठ ध्वनिना नित्यं यो गायति स गायनः ।।७३।।

अष्टदूषणम्–
तिर्यगुत्फल्लगलता चक्षुराननमीलनम्।
ऊर्ध्वाधोदृक् शिरः कम्पः प्रह्वतादगानदूषणम् ।।७४।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जैसा कि कहा गया है- नाद से श्रुतियाँ उत्पन्न हुईं, श्रुतियों से षड्जादिस्वरों की सृष्टि हुई, स्वरों से मूर्च्छनाओं और मूर्च्छनाओं से तानों की सृष्टि हुई। इस प्रकार ग्राम बने।।७०।।

शास्त्रों में कहीं कुछ विशेष प्रकार का वर्णन मिलता है-

धातु और मात्रा के योग (मिलन) को गीत कहते हैं। उसमें नादात्मक, नादरूप (जो गीत है) को धातु कहते हैं और अक्षर-समूह को मात्रा।।७१।।

हृदय के निम्न एवं ऊर्ध्व स्थान से वायु चलित होकर प्राणवायु से मिलता है और ब्रह्मरंध्र से टकराकर गिरता हुआ मुख से नाद प्रकट करता है ।।७२।।

अब गायक के लक्षण कहते हैं-

सुस्पष्ट, व्यक्त, शुद्ध, शास्त्र - नियमानुसार आठ दोषों से विरहित कण्ठध्वनि के साथ जो नित्य गायन करता है, वह गायक है ।।७३।।

आठ दोष इस प्रकार हैं - गला तिरछा करना या फुलाना, आँखे मूंद लेना, मुख बंद रखना, दृष्टि और मस्तक ऊँचा-नीचा करना, शरीर का काँपना- ये गायन (गानेवाले) के दोष हैं ।।७४।।

वाद्यवादक लक्षणमाह—

अदीर्घमुद्धांगुलि तीक्ष्णबुद्धिः परिस्फुरद्बाहुक पद्मपाणिः।
अव्यंगसद्वेष सुशीलचेष्टः सद्वाग्गुणज्ञैः कथितो मृदंगी।।७५।।

गान-श्रोतृ-पात्रवैशिष्ट्यमाह—

समी क्षमावान् सरलो रसज्ञ ईक्षापटुर्मंजुल पाठविज्ञः।
संगीतशास्त्रे कुशलो विदग्धः पात्रोत्तमो यःकिल नृत्यशास्त्रे ।।७६।।

स्वराः—

स्वरा मत्तमयूरादिबद्धलयाः षड्जादयः सप्त।
तदुक्तं रंजकाः श्रोतृचित्तानां स्वराः सप्तविधा मताः।

तदुक्तं संगीतसारे—

(स्वर व्याख्या)

श्रुत्यनंतर भावी यः स्निग्धोऽनुरणनात्मकः।
स्वतो रंजयति श्रोतुश्चित्तं स स्वर उच्यते ।।७७।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपिच–
स्निग्धश्च रंजकश्चासौ स्वर इत्यभिधीयते।
स्वयं यो राजते नादः स स्वरः परिकीर्तितः ।।७६।।
प्रथम श्रवणाच्छब्दः श्रूयते ऱ्हस्वमात्रकः।
सा श्रुतिः संपरिज्ञेया स्वरावयवलक्षणा ।।७९।।

एवं संगीतसारे च–
द्वाविशंतिस्तिर्यगूर्ध्वा नाड्यो हृदयमाश्रिताः।
ता यावत्यस्तु श्रुतयस्तावत्यः परिकीर्तिताः ।।८०।।

वाद्य-वादक के लक्षण कहते हैं– अंगुलियाँ छोटी न हों बल्कि लम्बी हों, बुद्धि तीक्ष्ण हो, बाहुओं में स्फुरण हो, हाथ कमल की तरह हों, अवयवों में कोई व्यंग न हो। (अंग-भंग न हो), वेशभूषा अच्छी हो, आचरण शुद्ध हो, हालचाल में सौंदर्य हो, वाणी अच्छी हो; गुणज्ञों के अनुसार मृदंग-वादक ऐसा होना चाहिए। ।।७५।।

गान-श्रोतृ-पात्र का वैशिष्ट्य कहते हैं– मन को काबू में रखनेवाला हो, क्षमाशील हो, सरल प्रकृति का हो, रस को जाननेवाला हो, विचार-विवेचन में पटु हो, माधुर्ययुक्त हो, पाठों को जाननेवाला हो, संगीतशास्त्र का कुशल ज्ञाता हो, रसिक विद्वान् हो और नृत्यशास्त्र का उत्तम विंद्वान हो ।।७६।।

स्वरों के लक्षण– आनंदित मयूर की ध्वनि के समान षड्जादि लयबद्ध सात स्वर हैं। जैसा कि कहा गया है– श्रोताओं के चित्त का रंजन करनेवाले स्वर सात हैं।

संगीतसार में कहा गया है– श्रुति के बाद उत्पन्न होनेवाला स्निग्ध और अनुरणनात्मक और जो स्वयं श्रोताओं के चित्त का रंजन करता है, उसे स्वर कहा जाता है ।।७७।।

और भी कहा गया है– जो स्निग्ध (मधुर) और रंजक है, वही स्वर है। जो स्वयं शोभायमान नाद है, उसे स्वर कहते हैं, या वह स्वर रूप में ख्यात है ।।७८।।

प्रथम श्रवण में शब्द ह्रस्व सुनायी देता है, उसे श्रुति कहते हैं, वह स्वर का अवयव स्वरूप है ।।७९।।

संगीतसार में कहा गया है– हृदय में बाईस (२२) नाड़ियाँ तिरछी और ऊँची गयी हैं। जितनी वे नाड़ियाँ हैं उतनी ही श्रुतियाँ हैं ।।८०।।

क्रमादुच्चोच्चतायुक्ता वीणादावेव लक्षिताः।
कफादिदुष्टे कण्ठे यत्तासां व्यक्तिर्न जायते ।।८१।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ताश्च–
(संगीत दामोदरे)
चतस्रः पंचमे षड्जे मध्यमे श्रुतयो मताः।
ऋषभे धैवते तिस्रो द्वे गांधारे निषादके ॥८२॥
किं नामिकास्ता इत्याह–
नान्दी विशाला सुमुखी विचित्रा षड्जजाः स्मृताः।
चित्रा घना चालनिका ऋषभे तिस्र ईरिताः ॥८३॥
गान्धारे सरसा माला मध्यमे मागधी शिवा।
मातंगिका च मैत्रेयी चतस्रः परिकीर्तिताः ॥८४॥
बाला कला कलरवा शांगिकाऽपि च पंचमे।
मात्रा रसामृता चेति तिस्रो धैवतनामनि ॥८५॥
निषादनामनि द्वे च विजया मधुकर्यपि।
इति स्वराणां श्रुतयो द्वाविंशतिरुदाहृताः ॥८६॥
स्वराणामित्यत्र पुत्राणां पिता इतिवत् जन्यजनकसम्बन्धेषष्ठी।
स्वराणां जनिका इत्यर्थः। वस्तुतस्तु स्वरूपं ज्ञातुमशक्यम्।

श्रुतियाँ क्रमशः ऊँची-ऊँची होती हैं, जिन्हें वीणादि वाद्यों पर ही प्रकट किया जा सकता है। कफ आदि के कारण कण्ठ में दोष हो, तो उनकी अभिव्यक्ति नहीं होती ॥८१॥

पंचम, षड्ज और मध्यम में चार-चार श्रुतियाँ हैं। ऋषम और धैवत में तीन-तीन हैं। गान्धार और निषाद में दो-दो श्रुतियाँ हैं ॥८२॥

उनके नाम क्या है, कहते हैं– षड्ज़ की नान्दी, विशाला, सुमुखी और विचित्रा है। ऋषम की चित्रा, घना, चालनिका ये तीन हैं। गान्धार में सरसा और माला ये दो हैं। मध्यम में मागधी, शिवा, मातंगिका और मैत्रेयी ये चार हैं। पंचम में बाला, कला, कलरवा और शांगिका ये चार हैं। धैवत में मात्रा, रसा और अमृता ये तीन हैं। निषाद में विजया और मधुकरी ये दो हैं। इस प्रकार स्वरों की श्रुतियाँ बाईस (२२) हैं ॥८६॥

स्वराणां इस षष्ठी का अर्थ जन्यजनक भाव है; जैसे 'पुत्राणां पिता' इसमें है। इसका अर्थ है स्वरों की सृष्टि करनेवाली – जनिका। वस्तुतः उनका स्वरूप जानना अशक्य है।

तदुक्तम्–
(स्वरूपज्ञानाशक्यत्वम्)
श्रुतिस्थाने स्वरान् वक्तुं नालं ब्रह्मापि तत्त्वतः।
जलेषु चरतां मार्गो मीनानां नोपलभ्यते ॥८७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गगने पक्षिणां यद्वत् तद्वत् स्वरगता श्रुतिः।
श्रुतिर्नादबला प्रोक्ता तदाढ्या च कला मता ।।८८।।
तथा तैलगतं सर्पिर्यथा काष्ठगतोऽनलः।
ज्ञायतेऽत्रोपदेशेन तथा स्वरगता श्रुतिः।
वीणादेस्तु श्रुतिज्ञानं स्वरज्ञानं तु वंशजम् । इति।।८९।।

अपरंच–
समश्रुतीनामेतेषु स्वराणां यास्तु भेदिकाः।
प्रयोगविधुरत्वेन ता नोक्ताः श्रुतिजातयः ।।९०।।

श्रुतिसंख्या चोक्ता–
चतुश्चतुश्चतुश्चैव षड्जमध्यमपंचमाः।
द्वे द्वे निषाद- गान्धारौ त्रिस्त्रिर्ऋषभधैवतौ । इति ।।९१।।
द्वाविंशतिः।

स्वराः–
ते त्रिधा स्युर्मन्द्र मध्यतारभावं समाश्रिताः।
त्रीणि स्थानानि तेषां हि हृदि मन्द्रोऽभिधीयते।
कण्ठे मध्यो मूर्ध्नि तारो द्विगुणमूत्तरोत्तरम् ।।९२।।

श्रुतियों के स्थान और उनके अनुसार स्वरों का निरूपण वास्तव में ब्रह्मा भी नहीं कर सकते। पानी में विचरण करनेवाली मछलियों के मार्ग और आकाश में विचरण करनेवाले पक्षियों के मार्ग की नियत रूप से उपलब्धि संभव नहीं है, वैसी ही स्थिति स्वरगत श्रुतियों की है। श्रुति का बल नाद है और श्रुति पर ही कला निर्भर है।।८७-८८।।

जिस प्रकार तेल के अंदर घी (यहाँ "तिलगतं तैलं" ऐसा पाठ होना चाहिए- "यथा तिलगतं तैलं यथा काष्ठगतोऽ नलः" इति युक्तम्) तिल में जिस प्रकार तेल व्याप्त रहता है, लकड़ी में जिस प्रकार अग्नि समाहित रहती है, बिना प्रयत्न या उपदेश के उसका ज्ञान नहीं होता, उसी प्रकार श्रुति स्वर में समाविष्ट है, बिना बताये उसका ज्ञान नहीं होता। वीणादि तंतुवाद्यों से श्रुतियों का ज्ञान होता है और वंशवाद्यों (सुषिरवाद्यों) से स्वरज्ञान होता है ।।८९।।

और भी कहा है- स्वरों का भेद (विभाग) करनेवाली जो समान रूप वाली श्रुतियाँ हैं, प्रयोग में न होने के कारण उन श्रुतिजातियों के बारे में यहाँ नहीं बताया गया है ।।९०।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रुति-संख्या इस प्रकार कही गयी हैं- षड्ज, मध्यम और पंचम की चार-चार, निषाद और गांधार की दो-दो तथा ऋषभ और धैवत की तीन-तीन श्रुतियाँ हैं ।।९१।।

इस प्रकार श्रुतियाँ बाईस (२२) हैं।

स्वर- मन्द्र, मध्य एवं तार इन स्थानों के आश्रित तीन प्रकार के स्वर हैं। इनके तीन स्थान हैं- हृदय में मन्द्र, कण्ठ में मध्य और मूर्ध्नि (मस्तक) में तार; इनका मान उत्तरोत्तर द्विगुण है ।।९२।।

एतेषां व्युत्पत्तिमाह यथा–

नासां कण्ठमुरस्तालु जिह्वां दन्तांश्च संस्पृशन्।
षड्भ्यः संजायते यस्मात्तस्माच्छड्ज इतिस्मृतः ।।९३।।

दामोदरस्त्वन्यथाह–

वायुःसंमूर्च्छितो नाभेर्नाड्याश्च हृदयस्य च।
पार्श्वयोर्मस्तकस्यापि षण्णां षड्जः प्रजायते ।। इति ।।९४।।
नाभिमूलाद्यदा वायुरुत्थितः कुरुते ध्वनिम्।
वृषभस्येव निर्याति हेलया ऋषभः स्मृतः ।।९५।।
नाभे समुद्गतो वायुर्गलश्रोत्रे च चालयन्।
सशब्दं येन निर्याति गान्धारस्तेन कथ्यते ।।९६।।
मध्यमो मध्यम स्थानाच्छरीरस्योपजायते।
नाभिमूलाच्च गंभीरः किंचित्तारः स्वभावतः ।।९७।।
प्राणोऽपानः समानश्चोदान व्यानौ (च वायवः) तथैव च।
एतेषां समवायेन जायते पंचम स्वरः ।।९८।।

इन स्वरों की व्युत्पत्ति कहते हैं- नाक, कण्ठ, वक्षःस्थल, तालु, जिह्वा, दाँत- इन छः अंगों को स्पर्श करता हुआ वायु षड्ज की सृष्टि करता है, इसलिए वह षड्ज कहलाता है ।।९३।।

संगीत दामोदर में अन्य प्रकार से कहा गया है-

वायु चलित होकर नाभि, नाड़ी, हृदय, दोनों पार्श्व और मस्तक - इन छः स्थानों से आहत होता है, तब षड्ज बनता है, इसीलिए वह षड्ज कहलाता है ।।९४।।

नाभिभूल से उत्थित होकर वायु ध्वनि करता हुआ बैल की आवाज की तरह स्वर सृष्टि कर प्रकट होता है, अतः उसे ऋषभ कहा जाता है ।।९५।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नाभि से उद्गत वायु गलप्रदेश और श्रोत्रेन्द्रिय को हिलाता हुआ, शब्द करता हुआ बाहर निकलता है, इसलिए वह गांधार कहलाता है ।।९६।।

मध्यम स्वर शरीर के मध्यम स्थान से उत्पन्न होता है, नाभिमूल से स्वभावतः कुछ गंभीर और कुछ तार (ऊंचा) होता है ।।९७।।

प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, – इन पाँच प्राणों के संयोग, समवाय से पंचम स्वर की सृष्टि होती है ।।९८।।

गत्वा नाभेरधोदेशं बस्तिं प्राप्योर्ध्वगः पुनः।
धावन्निव च यो याति कण्ठदेशं स धैवतः ।।९९।।
षड्जादयः षडेतेऽत्र स्वराः सर्वे मनोहराः।
निषीदन्ति यतो लोके निषादस्तेन कथ्यते ।।१००।।

तत्साम्यध्वनिकथने तद्रूपमाह–
मयूरः षड्जमाख्याति ऋषभं वक्ति चातकः।
छागो गांधारमाचष्टे क्रौंचो वदति मध्यमम् ।।१०१।।
कोकिलः पंचमं ब्रूते भेको वदति धैवतम्।
निषादं भाषते हस्तीत्येतद् ब्रह्मादिसम्मतम् ।।१०२।।

दामोदरस्त्वाह–
मयूर वृषभच्छाग क्रौंच कोकिल वाजिनः।
मातंगश्च क्रमेणाहुः स्वरानेतान् सुदुर्गमान् ।।१०३।।

किंच–
(स्वर विभागः)
ते वादिसंवादिविवाद्यनुवाद्यभिधाः पुनः।
स्वराश्चतुर्विधाः प्रोक्तास्तत्र वादी स कथ्यते ।।१०४।।

जो स्वर नाभि से नीचे जाकर बस्ति में पहुँच कर फिर ऊपर आता है और मानो दौड़ता हुआ कण्ठप्रदेश में आता है, वह धैवत है ।।९९।।

षड्ज से लेकर सभी छः स्वर मनोहर रीति से जिसमें बैठते हैं (सर्वसन्धिस्थान), वह निषाद कहलाता है ।।१००।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उन स्वरों का स्परूप कहने के लिए उनकी समान ध्वनि बताते हैं- ब्रह्मा आदि सबको यह मान्य है कि मयूर की ध्वनि से षड्ज, चातक की ध्वनि से ऋषभ, भेड़-बकरी की ध्वनि से गांधार, क्रौंच की ध्वनि से मध्यम, कोकिल की ध्वनि से पंचम, मेढक की ध्वनि से धैवत और हाथी की ध्वनि से निषाद प्रतिफलित होता है अथवा वे इन स्वरों में पुकारते हैं ।।१०१-१०२।।

संगीत दामोदर में कहा गया है- मयूर, बैल, भेड़, क्रौंच, कोकिल, घोड़ा, हाथी- ये प्राणी क्रमशः इन सात स्वरों (षड्ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत, निषाद) में पुकारते हैं। इसे समझना कठिन है ।।१०३।।

और प्रकारान्तर से उनके विभाग कहे गये हैं-

वादी, संवादी, विवादी, अनुवादी- ऐसे उनके चार प्रकार हैं। इनमें से प्रथम वादी का निरूपण करते हैं ।।१०४।।

प्रचुरो यः प्रयोगेषु वक्ति रागादि निश्चयम्।
समश्रुतिश्च संवादी पंचमस्य न मः क्वचित् ।।१०५।।
गनी वि दिनौ स्याताम् रिधयोर्वापि तौ तयोः।
अनुवादी भवेच्छेष इति दन्तिलसम्मतम् ।।१०६।।

अस्यार्थः—

यः प्रयोगेषु प्रचुरो बहुलः सन् रागादिनिश्चयं कथयति, बहुधा प्रोक्तोऽमुकरागोऽयमिति निर्णयं करोति, स वादी स्वरः। पंचमस्य समश्रुतिस्तुल्यश्रुतिर्यः स्वरः स संवादी। क्वचिन्न मः, कोऽर्थ? मो मध्यम स्वरः क्वचित्संवादी न भवति। ग-नी गांधारनिषादौ। रिधयोः- ऋषभधैवतयोः विवादिनौ शत्रू भवतः। वेति पक्षांतरे, तौ ऋषभधैवतौ तयोः गांधारनिषादयोः विवादिनौः भवतः। शेषाः एतेभ्योऽवशिष्टा ये स्वराः ते अनुवादि स्वरा भवन्ति।

जिसका प्रचुर प्रयोग है और जो राग का निश्चय करता है, वह वादी स्वर कहलाता है। पंचम के समश्रुति का स्वर संवादी होता है। (यहाँ षड्ज-पंचम भाव का संकेत है), मध्यम स्वर कहीं भी संवादी नहीं होता (षड्ज-मध्यम भाव मान्य नहीं) ।।१०५।।

ग-नी यानी गांधार - निषाद स्वर (ऋषम-धैवत के) विवादी होते हैं। ऋषभ-धैवत भी गांधार-निषाद के विवादी होते हैं और शेष स्वर अनुवादी कहे जाते हैं। ऐसा दन्तिल का मत है।।१०६।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसका अर्थ – जो प्रयोग में ज्यादा आता है अथवा जिसका बहुल प्रयोग है और राग का निर्णय करता है, बहुत बार प्रयोग के कारण वह बताता है कि यह अमुक राग है, वही वादी स्वर है। पंचम की समश्रुति वाला (षड्ज-पंचम भाव- १३ श्रुत्यंतर) स्वर संवादी है। 'क्वचिन्न मः"- इसका अर्थ क्या है? मध्यम स्वर कहीं भी संवादी नहीं होता। गांधार - निषाद, ऋषभ - धैवत परस्पर विवादी, शत्रु होते हैं। पक्षांतर से ऋषभ धैवत, गांधार - निषाद परस्पर विवादी होते हैं। अवशिष्ट स्वर अनुवादी होते हैं ।

किंच–
वादी नृपस्तथा पात्रः संवाद्यथ विवाद्यरिः।
अनुवादी त्वनुचरो राज्ञः पात्रस्य चेरितः ।।१०७।।
वादिसंवादिनोरनुवादी अनुचर इत्यर्थः।
श्रुतिभ्यः स्युःस्वराः षड्जर्षभगान्धारमध्यमाः
पंचमो धैवतश्चाथ निषाद इति सप्त ते ।।१०८।।
तेषां संज्ञाः स रि ग म प ध नीत्यपरा मताः।

संगीतदर्पणे–
श्रुतिरित्युच्यते भेदास्तस्या द्वाविंशतिर्मताः।
तदभिव्यक्तये नाडी स्थितिर्देहे निरूप्यते ।।१०९।।
इडा वामे स्थिता नाडी दक्षिणे पिंगला (मता) तथा।
हृदि नाडी सुषुम्ना सा ब्रह्मरन्ध्रावधि स्थिता ।।११०।।
अथ श्रुतयः
तीव्रा कुमुद्वती मन्दा छन्दोवत्यस्तु षड्जगाः।
दयावती रंजनी च रतिका ऋषभे स्थिताः ।।१११।।

और भी है- वादी स्वर राजा है। संवादी स्वर पात्र है। विवादी स्वर शत्रु है। अनुवादी स्वर अनुचर – सेवक है, वह राजा का और पात्र का सेवक है ।।१०७।।

यहाँ वादी-संवादी की अपेक्षा से अनुवादी अर्थ लेना होगा।

श्रुतियों से ही षड्ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत, निषाद-सात स्वर उत्पन्न होते हैं ।।१०८।।

इनकी संज्ञाएं हैं – सा रि ग म प ध नि।

संगीत-दर्पण में कहा गया है- (प्रथमाघात से बिना अनुरणन के जो ऱ्हस्व नाद उत्पन्न होता है,) उसे श्रुति कहते हैं, उसके बाईस (२२) भेद हैं। देहस्थित नाड़ियों से उनकी (श्रुतियों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की) अभिव्यक्ति होती है। उनका निरूपण करते हैं ।।१०९।।

वाम भाग में इड़ा नाड़ी है, दक्षिण भाग में पिंगला नाड़ी है। हृदय स्थान में सुषुम्ना नाड़ी है, वह ब्रह्मरंध्र तक गयी है ।।११०।।

अब श्रुतियों का निरूपण - तीव्रा, कुमुद्वती, मन्दा और छन्दोवती- ये चार श्रुतियाँ षड्ज की हैं। दयावती, रंजनी और रतिका- ये तीन श्रुतियां ऋषभ की हैं ।।१११।।

रौद्री क्रोधा च गांधारे वज्रिका च प्रसारिणी।
प्रीतिश्च मार्जनीत्येताः श्रुतयो मध्यमाश्रिताः ।।११२।।
क्षिती रक्ता च सन्दीपिन्यालापिन्यपि (न्यथ) पंचमे।
नन्दिनी (मदन्ती इतिदर्पणे) रोहिणी रम्येत्येता धैवतसंश्रयाः।
उग्रा च क्षोभिणीति द्वे निषादे वसतः श्रुती ।।११३।।

तत्रैव संगीत दर्पणे-
सप्त क्रमाद्यदा हीनाः स्वरैः सरिपसप्तमैः।
तदाष्टाविंशतिस्तानाः षाडवाः परिकीर्तिताः ।।११४।।
तदा तु मध्यमग्रामे मूर्च्छनाः सरिगोज्झिताः।
सप्त क्रमाद्यदा तानाः स्युस्तदा त्वेकविंशतिः ।।११५।।
एवमेकोन पंचाशन्मिलिताः षाडवा मताः।
स्वरस्य कम्पगमकाः श्रोतुश्चित्तसुखावहाः ।।११६।।
अथ ग्रामः
ग्रामलक्षणं चोक्तं संगीतदर्पणे-
यथा कुटुम्बिनः सर्वेऽप्येकीभूताभवन्ति (वै) हि।
तथा स्वराणां सन्दोहो ग्राम इत्यभिधीयते ।।११७।।

रौद्री और क्रोधा- दो श्रुतियाँ गांधार की हैं। वज्रिका, प्रसारिणी, प्रीति और मार्जनी- चार श्रुतियाँ मध्यम की हैं। क्षिति, रक्ता, संदीपनी और आलपिनी - चार श्रुतियाँ पंचम की हैं। नंदिनी (मदन्ती), रोहिणी और रम्या - ये तीन श्रुतियाँ धैवत की हैं। उग्रा और क्षोभिणी - दो श्रुतियाँ निषाद की हैं ।।११२-११३।।

संगीत दर्पण में कहा गया है- (षड्जग्राम) की जो सप्त मूर्च्छनाएं हैं, उनमें सा, रि, प एवं नि स्वरों को क्रमशः वर्जित करने से २८ षाडव तानें बनती हैं ।।११४।।

मध्यम ग्राम की सात मूर्च्छनाओं में सा, रे एवं ग स्वरों को एक के बाद एक वर्जित करने पर २१ (षाडव) तानें बनती हैं ।।११५।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस प्रकार दोनों ग्रामों में मिलाकर षाडव तानें ४९ होती हैं। स्वरों के कम्प और गमक से श्रोताओं के चित्त को आनंद मिलता है ॥११६॥

अब ग्राम- संगीत दर्पण के अनुसार ग्राम के लक्षण बताते हैं - जिस प्रकार कुटुंब के सब लोग एकत्र होकर रहते हैं, उसी प्रकार स्वरों के समुदाय को ग्राम कहते हैं ॥११७॥

षड्जग्रामो भवेदाद्यो मध्यम ग्राम एव च।
गांधारग्राम इत्येतद् ग्रामत्रयमुदाहृतम् ॥११८॥
नन्द्यावर्त्तोऽथ जीमूतः सुभद्रो ग्रामकास्त्रयः।
षड्जमध्यमगांधारस्त्रयाणां जन्महेतवः ॥११९॥

संगीतसारेच—
ग्रामः स्वराणामतिसूक्ष्मभाव संयोजनं स्थानकुलं त्रिधा सः
षड्जस्तथा मध्यम एव भूम्यां गांधारनामा किल देवलोके ॥१२०॥

दामोदरे—
षड्जग्रामो भवेदत्र मध्यमग्राम एव च।
सुरलोके च गांधारग्रामः प्रचरति ध्रुवम् ॥१२१॥

संगीतदर्पणे च—
ग्रामः स्वरसमूहः स्यान्मूर्च्छनादेः समाश्रयः।
गांधारग्रामसमाचष्ट तदातं नारदो मुनिः।
प्रवर्तते स्वर्गलोके ग्रामोऽसौ न महीतले ॥१२२॥

पारिजाते—
अथ ग्रामस्त्रयः प्रोक्ताः स्वरसन्दोहरूपिणः।
षड्ज मध्यम गांधार संज्ञाभिस्ते समन्विताः।
मूर्च्छनाधारभूतास्ते षड्जग्रामस्त्रिषूत्तमः। इति ॥१२३॥

पहले षड्जग्राम, फिर मध्यम ग्राम और गांधारग्राम इस प्रकार तीन ग्राम कहे गये हैं। ये तीन ग्राम नन्द्यावर्त, जीमूत और समुद्र नामों से प्रसिद्ध हैं। षड्ज, मध्यम और गांधार ये तीन स्वर इन तीन ग्रामों की उत्पत्ति के हेतु हैं ॥११८-११९॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संगीतसार में कहा गया है- स्वरों को अति सूक्ष्म भाव से मिलाने या संयोजन करने का नाम ग्राम है। स्थान कुल से वे तीन प्रकार के हैं। षड्ज ग्राम और मध्यमग्राम की अवस्थिति भूमि पर है, जबकि गांधार ग्राम की अवस्थिति देवलोक में है ।।१२०।।

संगीत दामोदर में भी है- षड्जग्राम और मध्यम ग्राम की अवस्थिति इह लोक में हैं, जबकि गांधारग्राम की अवस्थिति देवलोक में है ।।१२१।।

संगीत दर्पण में है- स्वरसमूह को ग्राम कहते हैं, वे मूर्च्छनाओं का आधार हैं। मुनि नारद ने कहा हैं कि गांधार ग्राम का प्रवर्त्तन स्वर्गलोक में है, भूमि पर नहीं ।।१२२।।

संगीत पारिजात में है- ग्राम तीन कहे गये हैं। स्वर-समूह रूप को ग्राम कहा जाता है। इनकी संज्ञाएं हैं- षड्जग्राम, मध्यमग्राम और गांधारग्राम। ये ग्राम मूर्च्छनाओं के आधार हैं। तीन ग्रामों में षड्जग्राम उत्तम, श्रेष्ठ है ।।१२३।।

अथ ग्रामत्रयमूर्च्छना आह-
स रि ग म प धा निश्च मपौधनि सा रि ग च।
ग म पा ध नि सा रिश्च ग्राम त्रितय मूर्च्छनाः ।।१२४।।

अपरंच-
सप्तैव मूर्च्छनाश्चात्र प्रतिग्रामे प्रकीर्तिताः।
आदि द्वि त्रि चतुष्पंच षट्सप्तस्वपिता मताः ।।१२५।।
तत् प्रस्तारक्रमः
षड्जान्निषादान्तं नेस्तु धान्तं धात् पान्तमिष्यते।
पान्मान्तं मध्यमाद् गान्तं गांधाराद्‌षभान्तकम्।।
ऋषभात् सान्तमित्याहुः षड्जग्रामस्य मूर्च्छनाः ।।१२६।।

एतदुदाहरणम्-
स रि ग म प ध नि च। नि स रि ग म प ध च।
ध नि स रि ग म प च। प ध नि स रि ग म च।
म प ध नि स रि ग च। ग म प ध नि स रि च।
रि ग म प ध नि स च। इति षड्ज ग्राममूर्च्छनाः ।।
अथोच्यते सुवोधाय मध्यमग्राम मूर्च्छनाः
माद्गान्तं गाच्चर्षभान्तमृषभात् सान्तमिष्यते।
सान्नान्तं नेर्धैवतान्तं धात् पान्तं पाच्च मान्तकम् ।।१२७।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एतदुदाहरणम्–
म प ध नि स रि ग च। ग म प ध नि स रि च।
रि ग म प ध नि स च। स रि ग म प ध नि च।
नि स रि ग म प ध च। ध नि स रि ग म प च।
प ध नि स रि ग म च। इति मदयम ग्राम मूर्च्छनाः।

अब तीनों ग्रामों की मूर्च्छनाएं कहते हैं। स से आरंभ कर सब स्वर लेने से षड्ज ग्राम मूर्च्छना होती है, यथा– स रि ग म प ध नि; म से आरंभ कर सब स्वर लेने से मध्यम ग्राम मूर्च्छना होती है यथा– म प ध नि स रि ग; और ग से आरंभ कर सब स्वर लेने से गांधार ग्राम मूर्च्छना होती है, यथा– ग म प ध नि स रि ।।१२४।।

और भी कहा गया है– प्रत्येक ग्राम में सात मूर्च्छनाएं होती हैं। प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पंचम, षष्ट एवं सप्तम– इस प्रकार ग्राम वाचक स्वर से आरंभ कर अंत में वही स्वर फिर आये, इस तरह सात मूर्च्छनाएं होती हैं ।।१२५।।

उनका प्रस्तार क्रम– स से नि तक, नि से ध तक, ध से प तक, प से म तक, म से ग तक, ग से रि तक और रि से स तक– ये षड्ज ग्राम की मूर्च्छनाएं हैं।।१२६।।

उदाहरण–
स रि ग म प ध नि। नि स रि ग म प ध
ध नि स रि ग म प। प ध नि स रि ग म
म प ध नि स रि ग। ग म प ध नि स रि
रि ग म प ध नि स।

सुबोधगम्यता के लिए मध्यम ग्राम की मूर्च्छनाएं कहते हैं– म से ग तक, ग से रि तक, रि से स तक, स से नि तक, नि से ध तक, ध से प तक और प से म तक – इस प्रकार सात मूर्च्छनाएं हैं ।।१२७।।

उदाहरण–
म प ध नि स रि ग। ग म प ध नि स रि
रि ग म प ध नि स। स रि ग म प ध नि
नि स रि ग म प ध। ध नि स रि ग म प
प ध नि स रि ग म।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आदौ गकारो यत्रास्ति गांधारग्राम मूर्च्छना: ।।१२८।।
एतदुदाहरणम्–
ग म प ध नि स रि च। रि ग म प ध नि स च।
स रि ग म प ध नि च। नि स रि ग म प ध च।
ध नि स रि ग म प च। प ध नि स रि ग म च।
म प ध नि स रि ग च। इति गांधार ग्राम मूर्च्छना:।

अथ मूर्च्छना:
(संगीत दर्पणे)
क्रमात् स्वराणां सप्तानामारोहश्चावरोहणम्।
मूर्च्छनेत्युच्यते ग्रामत्रये ता: सप्त सप्त च ।।१२९।।
स्वराणां मूर्च्छितो यत्र रागतां प्रतिपद्यते।
मूर्च्छनामिति तामाह भरतो ग्रामसंभवाम् ।।१३०।।

अपरंच–
यत्र स्वरो मूर्च्छित एव रागताम्।
प्राप्तश्च तामाह मुनिश्च मूर्च्छनाम्।।
ग्रामोद्भवास्ता: स्वरसप्तसंयुता:।
स्थानत्रये स्यु: पुनरेकविंशति: ।।१३१।।

जिसमें आरंभ में ग है, वह गांधार ग्राम मूर्च्छना है ।।१२८।।
उदाहरण-
ग म प ध नि स रि। रि ग म प ध नि स
स रि ग म प ध नि। नि स रि ग म प ध
ध नि स रि ग म प। प ध नि स रि ग म
म प ध नि स रि ग।।

अब मूर्च्छना के बारे में कहते है- क्रम से सात स्वरों के आरोहण और अवरोहण को मूर्च्छना कहते हैं। (मूर्च्छना शब्द 'मूर्च्छ' धातु से बना है, जिसका अर्थ है चमकना या उभरना या समुच्छ्राय।) तीनों ग्रामों में (प्रत्येक में सात) इक्कीस मूर्च्छनाएं होती हैं। जहाँ स्वर मूर्च्छित होते हैं, वहाँ राग बनते हैं। ग्रामों से जिसकी उत्पत्ति है, उसी को भरत मुनि ने मूर्च्छना कहा है।।१२९-१३०।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और भी है– जहाँ स्वर मूर्च्छित होकर राग बनता है, मुनि ने उसी को मूर्च्छना कहा है। सात स्वरों से युक्त वे मूर्च्छनाएं तीन ग्रामों में होती हैं और तीन स्थानों में मिलकर वे इक्कीस होती हैं।।१३१।।

स रि ग म प ध नीति षड्जग्रामस्य मूर्च्छनाः।
म प ध नि स रि गेति मध्यमग्राम मूर्च्छनाः।
ग म प ध नि स रीति गांधारग्राममूर्च्छनाः ।।१३२।।

अथासां नामानि–
ललिता मध्यमा चित्रा रोहिणीच मतंगजा।
सौवीरा वर्णमध्या च षड्जमध्या च पंचमी ।।१३३।।
मत्सरी मृदुमध्या च शुद्धान्ता च कलावती।
तीव्रा रौद्री तथा ब्राह्मी वैष्णवी खेचरी वरा ।।१३४।।
नादवती विशाला च त्रिषु ग्रामेषु विश्रुताः।
एकविंशतिरित्युक्ता मूर्च्छनाश्चन्द्रमौलिना ।।१३५।।
मूर्च्छनां कलयति स्वरशब्दे वंशिकाधरविशेष वितानैः।
मूर्च्छनां नयदनंगशरौघैरंगनारतिपतेरिव सेना ।।१३६।।

एतत् प्रयोजनमाह–
शिवाग्रे मूर्च्छनां कृत्वा ब्रह्महाऽपि विमुच्यते।
अथ तानाः
मूर्च्छना एव तानाः स्युः शुद्धा आरोहणाश्रिताः ।।१३७।।

'स रि ग म प ध नि' – षड्जग्राम मूर्च्छनाएं हैं।

'म प ध नि स रि ग'– मध्यम ग्राम मूर्च्छनाएं है। 'ग म प ध नि स रि' – गांधार ग्राम मूर्च्छनाएं हैं ।।१३२।।

अब उनके नाम कहते हैं– ललिता, मध्ममा, चित्रा, रोहिणी, मतंगजा, सौवीरा, वर्णमध्या, षड्जमध्या, पंचमी, मत्सरी, मृदुमध्या, शुद्धांता, कलावती, तीव्रा, रौद्री, ब्राह्मी, वैष्णवी, खेचरी, वरा, नादवती, विशाला– इन नामों की ये इक्कीस (२१) मूर्च्छनाएं तीनों ग्रामों की प्रसिद्ध हैं। ये मूर्च्छनाएं शिवजी ने कही हैं ।।१३३, १३४, १३५।।

स्वर, शब्द, वंश वाद्य, और अधर की विशेष क्रिया से जब मूर्च्छना का स्वरूप प्रकट होता है, तब मूर्च्छनाएं इस तरह बाणों की वर्षा करती हैं मानो वे रति के पति मदन की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सेना हो और सुननेवालों को मूर्च्छित करती हैं यानी उनकी आनंदसमाधि लग जाती हैं ।।१३६।।

इसका प्रयोजन, फल कहते हैं- शिवजी के आगे मूर्च्छनाओं का गान करने से ब्रह्म हत्या के पाप से भी मुक्ति मिलती है।

अब तानों के बारे में कहते हैं- मूर्च्छनाओं को तान कहते हैं, आरोहण में होने से वे शुद्ध होती हैं ।।१३७।।

दामोदरस्तु-

विस्तार्यन्ते प्रयोगार्यैर्मूर्च्छनाशेषसंश्रयाः।
तानास्तेऽप्यूनपंचाशत् सप्तस्वर समुद्भवाः ।।१३८।।
तेभ्य एव भवन्त्यन्ये कूटतानाः पृथक् पृथक् ।
भेदा बहुतरास्तेषां ये कस्तान् कात्स्न्र्येन वक्ष्यति ।।१३९।।
ग्रामाणां मूर्च्छनानां च तानानां बहवो भिदाः।
प्रकृतानुपयोगित्वादज्ञेयत्वाच्च नेरिताः ।।१४०।।

तदुक्तं तानाधिकारे-
(तानसंख्या)
तानाः पंचसहस्राणि त्रयस्त्रिंशद् भवन्त्यमी । इति।।१४१।।

अथ वर्णमाह-

स्वरो गानक्रियारंभप्रयुक्तो वर्ण उच्यते।
स्थाय्यारोहावरोही च संचरीति चतुर्विधः ।।१४२।।

प्रत्येकं लक्षणमाह-

स्थायं स्थायं प्रयोगः स्यादेकस्यैव स्वरस्य चेत्।
स्थायी वर्णः स विज्ञेयः परावन्वर्थ संज्ञिकौ ।।१४३।।
परौ आरोहिस्वरोऽवरोहिस्वरश्च। तौ अन्वर्थ संज्ञिकावनुगतार्थनामानौ। अर्थस्तु- आरोहतीत्यारोही, अवरोहतीत्यवरोहीत्यर्थः।
एतत्संमिश्रणाद् वर्णः संचारीति निगद्यते।

संगीत दामोदर में कहा गया है - सब मूर्च्छनाओं के आधार पर, जिनसे प्रयोगों का विस्तार किया जाता है, तानें ४९ हैं। वे सात स्वरों से उद्भूत हैं ।।१३८।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उनसे ही पृथक्-पृथक् कूटतानें बनंती हैं, उनके जितने प्रकार हैं, उनका समग्र वर्णन कौन कर सकता है।।१३९।।

गामों, मूर्च्छनाओं और तानों के कई प्रकार हैं, प्रकृत रूप में उनका उपयोग न होने और वे जानने में कठिन (अज्ञेय) होने के कारण यहाँ नहीं कहे गये हैं ।।१४०।।

ऐसा ही 'तानाधिकार' में कहा गया है- तानें पाँच हजार तैंतीस (५०३३) हैं ।।१४१।।

अब वर्ण के बारे में बताते हैं - गानक्रिया के आरंभ में जिस स्वर का प्रयोग किया जाता है, उसे वर्ण कहते हैं । उसके चार भेद हैं यथा-स्थायी, आरोही, अवरोही और संचारी ।।१४२।।

प्रत्येक के लक्षण कहते हैं - रुक-रुक कर एक ही स्वर का प्रयोग हो तो उसे स्थायी वर्ण कहते हैं। अन्य दो अन्वर्थ संज्ञक हैं, उनके नाम अर्थानुकूल हैं।।१४३।।

जो आरोहण करते हैं वे आरोही स्वर हैं, जो उतरते हैं वे अवरोही हैं। इनके मिश्रण से संचारी वर्ण बनता है।

एतेषां स्थाय्यारोहावरोहि स्वराणां–
(वर्णालंकारः)
वर्णाभवन्त्यलंकारा रचनाया विशेषतः।

तत्र च–
षड्विंशतिः स्थायिनश्चारोहिणो द्वादशैव तु।
संचारिणो द्वादशैव द्वादशैवावरोहिणः ।।१४४।।
इति प्रसिद्धालंकारा द्वाषष्टिः परिकीर्तिताः।
ग्रन्थ विस्तरभीतेन मया नेह प्रकीर्तिताः ।।१४५।।

अलंकार प्रयोजनमाह–
स्वरज्ञाने दृढाभ्यासो रंजिलाभश्च जायते।
वर्णगान विचित्रत्वमलंकारप्रयोजनम् ।।१४६।।

अथ ग्रह स्वरमाह–
स ग्रहस्वर इत्युक्तो यो गीतादौ समर्पितः ।।१४७।।

अंशस्वरमाह–
बहुलत्वं प्रयोगेषु यस्य सोऽंशस्वरःस्मृतः।
यो रंजि (रक्ति) व्यंजको गेये यस्य सर्वेऽनुगामिनः।।१४८।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यः स्वयंग्रहतां यातो न्यासादीनां प्रयोगतः।
यस्य सर्वत्र बाहुल्यं स वाद्यंशो नृपोपमः ।।१४९।।
वादी रागादि निश्चयकर्तेति गीत प्रकाशकारः।
यः स्वयं ग्रहतां यात इत्यनेन अंशस्वरस्यैव
ग्रहस्वरकारणत्वमित्यर्थः।

इस प्रकार स्थायी, आरोही एवं अवरोही स्वरों की विशेष रचना के कारण वर्ण अलंकार बनते हैं।

वहाँ कहा गया है- स्थायी छब्बीस (२६), आरोही बारह (१२), संचारी बारह (१२), अवरोही बारह (१२); इस प्रकार बासट (६२) अलंकार प्रसिद्ध हैं। ग्रन्थ-विस्तार के भय से मैंने यहाँ नहीं कहे हैं।।१४४-१४५।।

अलंकारों का प्रयोजन कहते हैं – स्वरज्ञान हेतु दृढ अभ्यास, रंजकता प्राप्ति, वर्ण-गान में वैचित्र्य की उपलब्धि अलंकारों का प्रयोजन है।।१४६।।

अब ग्रहस्वर के बारे में कहते हैं- जो गान के आरंभ में आता है, अथवा जिस स्वर से राग का आलाप या गान आरंभ किया जाता है, वह ग्रहस्वर है ।।१४७।।

अंशस्वर कहते हैं- जिस स्वर का बहुल प्रयोग होता है, वह अंश स्वर कहलाता है। जो गाने में रंजकता, रक्तिगुण का प्रकाशक है, अन्य सब स्वर जिसके अनुगामी होते हैं, न्यासादि के प्रयोग से जो स्वयं ग्रह का कारण होता है, जिसका सर्वत्र ज्यादा प्रयोग होता है वह वादी अंश स्वर राजा के तुल्य है। (संगीत जगत् में अंश स्वर को 'वादी' भी कहा जाता है।) ।।१४८-१४९।।

गीत प्रकाशकार ने कहा है कि वादी रागादि के निश्चय का कारण है। "यः स्वयं ग्रहतां यातः"- इससे मालूम होता है कि अंश स्वर ही ग्रह स्वर का कारण है।

अतएव माघे-
अनल्पत्वात् प्रधानत्वादंशस्यैवेतरे स्वराः।
विजिगीषोर्नृपतयः प्रयान्ति परिचारताम्। इति ।।१५०।।

अपरंच-
रागाणां जीवभूता ये प्रोक्तास्तेंऽशस्वरा बुधैः। इति ।।१५१।।
न्यासस्वरमाह-
न्यासस्वरस्तु स प्रोक्तो यो गीतादिसमाप्तिकृत् ।।१५२।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जातिमाह–
यस्यारागजनिस्तु जातिरिह सा रागस्य मातापि सा
शुद्धाख्या विकृता द्वयोश्च मिलनात् संकीर्णका च त्रिधा ।।१५३।।

किंच–
शुद्धाः स्युर्जातयः सप्त ताः षड्जादिस्वराभिधाः।
ता एव विकृताः शेषा जाता विकृतिसंकरात् ।।१५४।।
(संकरादिभिर्द्विधेत्यन्ये)

तदुक्तं हरिनायकेन–
शुद्धाभिर्विकृताभिश्च मिलिता जातयः पुनः।
अष्टादश समुद्दिष्टास्ता रागाणां च मातरः ।।१५५।।
अयमेव पक्षः प्रधान इति प्रतिभाति। यतः प्राचीनाचार्यैरंगीकृतः।

इसीलिए माघकाव्य में है– प्रधान होने और प्रयोग के आधिक्य से विजिगीषु स्वरूप (विजय पाने की इच्छा करनेवाला सम्राट) अंशस्वर के ही इतर स्वर सेवा करनेवाले अनुचर जैसे बन जाते हैं।।१५०।।

और भी कहा गया है– रागों के प्राण, जीव स्वरूप जो स्वर हैं, उन्हें विद्वानों ने अंश स्वर कहा है ।।१५१।।

न्यास स्वर के बारे में कहते हैं– जिस स्वर पर गीत की समाप्ति होती है, उसे न्यास स्वर कहते हैं ।।१५२।।

जाति का निरूपण करते हैं– जिससे राग की उत्पत्ति होती है, उसे जाति कहते हैं, वह राग की माता भी है। जाति के तीन प्रकार हैं– शुद्ध, विकृत और इन दोनों के मिश्रण से संकीर्ण ।।१५३।।

और भी कहा गया है– शुद्ध जातियाँ सात हैं, षड्जादि स्वरों के नामानुसार ही उनके नाम जाने जाते हैं। वैसी ही जातियाँ विकृत भी हैं। और शेष जातियाँ विकृति के संकर से बनी हैं (अन्य आचार्यों ने कहा है कि संकर आदि कारण जातियाँ दो प्रकार की हैं।) ।।१५४।।

हरिनायक ने कहा है– शुद्ध और विकृत मिलकर अठ्ठाईस (२८) जातियाँ होती हैं। वे ही रागों की माताएं हैं ।।१५५।।

ऐसा लगता है कि यही पक्ष प्रधान है, क्योंकि प्राचीन आचार्यों ने इसे ही स्वीकार किया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तदुक्तं निबन्धान्तरे–
षाड्जार्षभी च गांधारी माध्यमी पंचमी तथा।
धैवती चाथ नैषादी सप्तैताः शुद्धाजातयः।।१५६।।
स्यात् षड्जकैशिकी षड्जमध्यमा च ततः परम्।
गांधार पंचम्यान्ध्री च षड्जोदीच्यवती तथा ।।१५७।।
कार्मारवी नन्दयन्ती गांधारोदीच्यवापि च।
मध्यमोदीच्यवा रक्तगांधारीः कैशिकीत्यपि ।।१५८।।
एवमेकादश प्रोक्ता विकृता भरतादिभिः।
शुद्धाः सिद्धा विकृतानामथ हेतून् प्रचक्ष्महे।
षड्जगांधारिकायोगाज्जायते षड्जकैशिकी ।।१५९।।
इत्येतद् बाहुल्यभयान्नोक्तम्।

अथासां ग्रामसंबंधमाह–
षाड्जार्षभी धैवती च नैषादी षड्जकैशिकी'त्यादि।।
षड्जग्रामोद्भवाः सप्तजातयः। गांधारी,
रक्तगांधारी, गांधारोदीच्येत्येकादश
जातयो मध्यम ग्रामोद्भवाः। इत्यष्टादश ।।१६०।।

अन्य निबंध में कहा गया है– षाड्जी, आर्षभी, गांधारी, माध्यमी, पंचमी, धैवती और नैषादी– ये सात शुद्ध जातियाँ हैं ।।१५६।।

षड्जकैशिकी, षड्जमध्यमा, गांधारपंचमी, आन्ध्री, षड्जोदीच्यवती, कार्मारवी, नन्दयन्ती, गांधारोदीच्यवा, मध्यमोदीच्यवा, रक्तगांधारी और कैशिकी– इस प्रकार भरतादि आचार्यों ने ग्यारह (११) विकृत जातियाँ कही हैं। शुद्ध जातियाँ सिद्ध हैं। विकृत जातियों के हेतु अभी कहते हैं। षाड्जी और गान्धारी को मिलाने से षड्जकैशिकी बनती है; आदि। ग्रन्थ-विस्तार के भय से (अधिक) नहीं कहा जा रहा है। ।।१५७, १५८, १५९।।

अब उनमें ग्राम- संबंध का वर्णन करते हैं– षाड्जी, आर्षभी, धैवती, नैषादी, षड्जकैशिकी आदि षड्जग्राम से उत्पन्न होनेवाली सात जातियाँ हैं। गान्धारी, रक्तगान्धारी, गान्धारोदीच्यवा आदि ग्यारह (११) जातियाँ मध्यम ग्रामसे उत्पन्न होती हैं। कुल मिलाकर अठारह (१८) जातियाँ हुईं ।।१६०।।

श्रुतिमारभ्य जात्यन्तं मया यद्यत् समीरितम्।
तत्तद्वीणास्वेव किंचिद् बुधैर्ज्ञेयं नचान्यतः ।।१६१।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उद्दिष्टनष्टप्रस्तारखण्डमेरूमुखं तु यत्।
संगीतानुपयुक्तत्वान्नोक्तं तत्कौतुकं परम् ।।१६२।।
प्रकरणेऽस्मिन्ननुक्तानां ग्रन्थभूयस्त्वभीतितः।
दिङ्मात्रं त्वत्र वक्ष्यामि क्वचिच्छास्त्रस्य रीतितः ।।१६३।।
परमानंद संदोहः कृष्णनामादि कीर्तनात्।
तदर्थमेव लिखितं पूर्वाचार्य मतं परम् ।।१६४।।

इति श्रीकृष्णरस संगीतसंग्रहे, श्रीगुरु कृष्णचैतन्यनामोच्चारणादेवोद्भूते नामगुणलीला-लावण्यगानविद्याकिंचिज्ज्ञानसौष्ठवार्थकृते, श्रीगोविंदपदार-विन्दमधुपपरमचतुर भागवतेन प्रभुणादिष्टेऽस्य शास्त्रस्य व्यवहाराद्युद्दिष्टलक्षणपरीक्षाप्रयोजननिरूपणं नाम प्रकरणं द्वितीयम्।।

श्रुति से आरंभ कर जाति तक जैसा वर्णन मैंने किया है, उनको विद्वानों को वीणा वाद्यों से ही जानना चाहिए, अन्य वाद्य से नहीं ।।१६१।।

उद्दिष्ट-- नष्ट, प्रस्तार, खण्डमेरु आदि कौतुकास्पद विषयों का मैंने इस प्रकरण में ग्रंथ-विस्तार के भय से वर्णन नहीं किया है। शास्त्र-रीति से उनका केवल दिग्दर्शन मात्र कहीं-कहीं करायेंगे ।।१६२-१६३।।

श्रीकृष्ण के नामसंकीर्तन आदि से बहुत बड़ा आनंद प्राप्त होता है। इसी उद्देश्य से पूर्वाचार्यों के मतानुसार यह ग्रंथ लिखा है ।।१६४।।

इस प्रकार श्रीकृष्णरस संगीत-संग्रह का, श्रीगुरुकृष्णचैतन्य नामोच्चारण से ही प्रकट हुआ ऐसा श्रीगोविंद के चरणकमलों में भ्रमर की तरह लीन होकर आनंदमधु का पान करनेवाले परम् विद्वान् महाभागवतोत्तम 'प्रभु' की आज्ञा से, भगवन्नाम, गुण, लीला, सौंदर्य, गान और ज्ञान को किंचित लाभ की इच्छा से रचे हुए इस शास्त्र का व्यवहरादि उद्देश्य, लक्षण और परीक्षण तथा फल प्रतिपादन करनेवाला द्वितीय प्रकरण समाप्त हुआ।

।।इति शम्।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अथ तृतीय प्रकरणम्

अथ रागः

(संगीतदर्पणे)

योऽयं ध्वनिविशेषस्तु स्वरवर्णविभूषितः।

रंजको जनचित्तानां स रागः कथितो बुधैः ।।१६५।।

श्रीनारदकृत पंच सारसंहितायां रासलीलायाः प्रसंगे

रागाणां निर्णयो यथा–

श्रीवृंदावनचंद्रस्य संगीतैकविलासिनः।

गोप्यः षोडशसाहस्रसंख्या वेणुरवागतः ।।१६६।।

संगीतवाद्यं मुरलीं स्वयं कृष्णोऽति सेवते।

आविर्बभूव गोपीषु सैवेयं हरिलीलया ।।१६७।।

(गीतमाबद्धम् पाठांतर)

गोपीभिर्गीतमारब्धमेकैकं प्रियसन्निधौ।

तेन जातानि रागाणां सहस्राणि तु षोडशः ।।१६८।।

संगीतसारे च–

तावन्त एव रागाः स्युर्यावदत्यो जीवजातयः।

तेषु षोडशसाहस्रं पुरा गोपीकृतावराः ।।१६९।।

(नारदपंचमसारसंहितायाम्)

मेरोरप्युत्तरे पूर्वे पश्चिमे दक्षिणे तथा।

समुद्रकच्छे ये देशास्तत्रामीषां प्रचारणा ।।१७०।।

अब रागों का निरूपण करते हैं– स्वर और वर्ण से मंडित जो (नियमित) ध्वनि विशेष (नियमित स्वर-समुदाय) है और जो लोगों के चित्त का रंजन करती है, उसे विद्वान लोग राग कहते हैं ।।१६५।।

श्रीनारदकृत पंचसारसंहिता में रासलीला के प्रसंग में रागों का निर्णय इस प्रकार है– श्रीवृंदावन के चंद्र, संगीत के विलास में मग्न भगवान् श्रीकृष्ण ने जब वेणुध्वनि की, तब सोलह हजार गोपियाँ वहाँ उपस्थित हुईं। स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण भी संगीतवाद्य मुरली का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सेवन करते हैं, उनकी लीला से ही वह मुरली गोपियों में प्रकट हुई। गोपियों ने अपने प्रिय श्रीकृष्ण के साथ एक-एक गीत गाना शुरू किया, उसी से सोलह हजार (१६०००) राग उत्पन्न हुए।।१६६, १६७, १६८।।

संगीतसार में भी कहा गया है। जितनी जीवजातियाँ हैं, उतने ही राग हैं। उनमें गोपियों द्वारा गाये गये सोलह हजार राग श्रेष्ठ हैं। मेरु पर्वत की पूर्वादि चारों दिशाओं में, समुद्र के वालुकामय प्रदेश के पास बसे हुए देशों में सर्वत्र ये राग प्रचलित हैं ।।१६९-१७०।।

स्वर्गे मर्त्ये च पातालेतत्रामीषां (तत्रैषां च) प्रचारणा।
भारते ये च भूभागाः पारम्पर्योपदेशतः ।।१७१।।
रागाः षडथ रागिण्य षट्स्त्रिंशत् ख्यातिमागताः।
हुंकार प्रसवाः सर्वे यथा वेदेषु ओमिति ।।१७२।।
हारितेनादि वर्णास्तु प्रख्याप्यन्ते शनैः शनैः।
प्रथमे रंगलीलायां गीयन्ते गानकोविदैः ।।१७३।।
(आ) हा वर्णे च गणाध्यक्षो रि वर्णे केशवः स्वयम्।
ते वर्णे संस्थितो ब्रह्मा ना वर्णे च शिवः स्वयम् ।।१७४।।

एवमुक्तं नारदपंचमसार संहितायां च—
यैस्तु चेतांसि रज्यन्ते जगत्त्रितयवर्तिनाम्।
ते रागा इति कथ्यन्ते मुनिभिर्भरतादिभिः ।।१७५।।
संगीतमारभत् कृष्णो मुरलीनादमोहितम्।
गोपीभिर्गीतमारब्धमेकैकं कृष्णसन्निधौ ।।१७६।।
तेन जातानि रागाणां सहस्राणि तु षोडश।
ऐषु रागेषु षट्त्रिंशद्रागा जगति विश्रुताः।
सन्ति मेरोश्चतुर्दिक्षु सर्वे तेऽपीति केचन ।।१७७।।

स्वर्गलोक, मर्त्यलोक, पाताललोक आदि में इन रागों का प्रचार है। भारत में जो भूभाग हैं, परंपरा के व्यवहार में आये हैं, वहाँ छः राग और छत्तीस (३६) रागिणियाँ प्रसिद्ध हैं। हुँकार से सभी का उद्भव है, जैसे वेद में ओम् (ॐ) है ।।१७१, १७२।।

गान-निपुण लोक रंगलीला में पहले धीरे-धीरे हा रि ते ना आदि वर्ण प्रकट करते हैं ।।१७३।।

हा वर्ण में गणेश, रि वर्ण में स्वयं विष्णु, ते वर्ण में ब्रह्मदेव, ना वर्ण में साक्षात् शंकर स्थित रहते हैं ।।१७४।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नारद पंचमसारसंहिता में इस प्रकार कहा गया है- तीनों लोकों में रहनेवाले प्राणियों के चित्त जिनसे आनंदित होते हैं, भरतादि मुनियों ने उन्हीं को राग कहा है ।।१७५।।

श्रीकृष्ण ने जब संगीत आरंभ किया, तब मुरली के नाद से सभी मुग्ध हुए, उस समय गोपियों ने कृष्ण के सान्निध्य में एक-एक गाना गाया।।१७६।।

उससे सोलह हजार रागों की सृष्टि हुई। इनमें से छत्तीस राग जगत् में प्रसिद्ध हैं। वे सब मेरु पर्वत की चारों दिशाओं में स्थित देशों में प्रकीर्तित हैं ।।१७७।।

संगीतदामोदरे-

अंग, बंग, कलिंग, तेलंग, भूलिंग, हारंग, सुरंग, युपलंग च खेलंग सौवीर कीर काश्मीर नाभीर (नाहीर) सिंधु जालंधर मग मगध निषध मलय हीहय गजांधय मालव जालव मरु मुरू चीलोत्कल कुन्तल सिंहल हरिकेल केरल कोशल मल्लिवार मल्ल भल्ल सौविंद मल्लरात किंजात गुजरात गुंजर किंचल कालंजर गौड़ द्राविड़ ओड्र आयुर्वेदी चेदि कांची कुंचिका पंचाल सुराष्ट्र महाराष्ट्र लवर लोहावर खषर रणश कीकश शवरूप कामरूप हरिगर्भ विदर्भ दुर्म्मट वट कीकट दोरंगण टंगण लाट भोट कराट करहाट कर्णाट कुन्ति कावन्ती कालकाब्ज कान्यकुब्ज भोज काम्बोज तेजि तुखार विहार वलीहार राजगेह विदेह वाह्लीक चंचरीक त्रिगर्त्तानर्तादि देशेषु रागाः प्रचरन्तीति।।

अंग, बंग, कलिंग, तेलंग, भूलिंग, हारंग, सुरंग, युपलंग, खेलंग, (लेखांग), सौवीर, कीर, काश्मीर, नाभीर (नाहीर), सिंधु, जालंधर, मग, मगध, निषध, मलय, हीहय, गजांधय (गजाह्वय), मालव, जालव, मरु, मुरू, चोल, उत्कल, कुन्तल, सिंहल, हरिकेल, केरल, कोशल, मल्लिवार (मल्लिवाल), मल्ल, भल्ल, सौविंद, (सौविल्ल), मल्लरात (वाट) किंजात, गुजरात, गुंजर (कुंजर), किंचल, कालंजर, गौड़, द्राविड़, ओड्र, आयुर्वेदी (आन्तर्वेदी), चेदि, कांची, कुंचिका, पांचाल, सुराष्ट्र (सौराष्ट्र), महाराष्ट्र, लवर (शबर), लोहावर, खषर (खश), रणश, कीकश, शवरूप, कामरूप, हरिगर्भ, विदर्भ, दुर्मट, वट, कीकट, दोरंगण, टंगण, लाट, भोट, कराट, करहाट, कर्णाट, कुन्ति, कावन्ती, कालकाब्ज (कानकाब्ज), कान्यकुब्ज, भोज, काम्भोज, तेजि, तुखार, विहार, वलीहार, राजगेह, विदेह, वाल्लीक, चंचरीक, त्रिगर्त, आनर्त आदि देशों में राग प्रचलित हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अथ प्राशस्त्यमाह पंचमसारसंहितायाम्–
(मूले नास्ति)
शिवशक्तिमयो रागः परप्रेमरसार्णवः।
यस्य श्रवणमात्रेण विष्णुराद्रवितोऽभवत् ।।१७८।।
(तानशब्दव्याख्या)
ता शब्देनोच्यते गौरी ना शब्देनोच्यते हरः।

(नारद संहितायाम्)
तानेतिशब्दा हुंकारात् प्रोत्थाप्यन्ते शनैः शनैः ।।१७९।।
तत्तत्कालं स्वरैर्ज्ञात्वा दम्पत्योर्मेलनं बुधः।*
उभयोर्ज्ञानमात्रेण त्रैलोक्यं वशमानयेत् ।।१८०।।

अथ पुंस्त्रीभेदेन रागानाह दामोदर–
रागाः षडेव तु प्रोक्ता रागिण्यस्त्रिंशदेव हि।
भैरेवोऽथ वसन्तश्च रागो मालवकैशिकी ।।१८१।।
श्रीरागो मेघरागश्च नटनारायणस्तथा।
एते पुमांसः षड्रागाः क्रमात्तद्रागिणीर्ब्रुवे ।।१८२।।
भैरवी कौशिकी चैव भाषा वेलावली तथा।
बंगाली चेति रागिण्यो भैरवस्येह वल्लभाः ।।१८३।।
आंदोलिता च देशाख्या लोला प्रथममंजिरी।
मल्लारी चेति रागिण्यो वसन्तस्य सदानुगाः ।।१८४।।
गौरी गोण्डकिरी चैव वराडी च क्षमावती।
कर्णाटी चेति रागिण्यः प्रिया मालवकौशिके ।।१८५।।

पंचमसारसंहिता में रागों की प्रशस्ति की गयी है– राग शिव-शक्तिमय है अथवा शिवरूप और शक्तिरूप के योग से होता है; वह परम प्रेम रस का सागर है, जिसको सुनने मात्र से ही विष्णु का अंतःकरण पिघल जाता है ।।१७८।।

ता शब्द से गौरी का बोध होता है और ना शब्द से शिव का । ताना आदि शब्द हुंकार से धीरे-धीरे प्रकट किये जाते हैं। उस समय शिवशक्तिरूप दम्पति का मिलन स्वरों के माध्यम से जानना चाहिए। दोनों का ज्ञान होने मात्र से त्रैलोक्य वश में हो जाता है ।।१७९-१८०।।

* पाठांतर-ततत्कालं सुविज्ञाय दम्पत्योर्गायनं बुधः।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संगीत दामोदर में रागों के पुरुष-स्त्री भेद कहे गये हैं-

राग छः और रागिणियाँ तीस हैं। छः पुरुषराग हैं - भैरव, वसंत, मालवकैशिक, श्रीराग, मेघराग और नटनारायण। उनकी रागिणियां क्रमशः इस प्रकार हैं- भैरव की प्रिय पाँच रागिणियाँ- भैरवी, कौशिकी, भाषा, वेलावली और बंगाली; वसंत की अनुगामिनी पाँच रागिणियाँ - आंदोलिता, देशाख्या, लोला, प्रथममंजिरी और मल्लारी, मालवकैशिक अथवा मालवकौशिक की प्रिया पाँच रागिणियाँ- गौरी, गोण्डकिरी, वराडी, क्षमावती और कर्णाटी ॥१८१, १८२, १८३, १८४, १८५॥

गान्धारी देवगान्धारी मालवश्रीश्च सावरी।
रामकिर्यपि रागिण्यः श्रीरागस्य प्रिया इमाः ॥१८६॥
ललिता मानसी (मालसी) गौरी नाटी देवकिरी तथा।
मेघरागस्य रागिण्यो भवन्तीमाः सुवल्लभाः ॥१८७॥
तारामणिस्तथाभीरी कामोदी गुंजरी (गुर्जरी) तथा।
ककुभा चेति रागिण्यो नटनारायण प्रियाः॥१८८॥

पंचमसारसंहितायां तु-
रागाः षडथ रागिण्यः षट्त्रिंशंच्चारुविग्रहाः (ख्यातिमागताः)।
तत्र रागाः
आदौ मालवरागेन्द्रस्ततो मल्लारसंज्ञकः ॥१८९॥
श्रीरागस्तस्य पश्चात्तु वसन्तस्तदनन्तरम्।
हिल्लोलश्चाथ कर्णाट एते रागाः षडीरिताः(प्रकीर्तिताः) ॥१९०॥

(नारदसंहितायाम्)
पुरुषा रत्नभूषाढ्या रागाः षण्मालवादयः।
प्रदोषकालदुष्टास्ते रजन्यां गानगोचराः ॥१९१॥
दशदण्डात् परं रात्रौ सर्वेषां गानमीरितम्।
मेघमल्लार रागस्य गानं वर्षासु सर्वदा ॥१९२॥

श्रीराग की प्रिया पाँच रागिणियाँ हैं- गान्धारी, देवगान्धारी, मालवश्री, सावरी और रामकिरी ॥१८६॥

मेघराग की सुवल्लभा पाँच रागिणियाँ हैं- ललिता, मानसी (मालसी), गौरी, नाटी और देवकिरी ॥१८७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नटनारायण की प्रिया पाँच रागिणियाँ हैं- तारामणि, आभीरी, कामोदी, गुंजरी (गुर्जरी) और ककुभा ।।१८८।।

पंचमसार संहिता में कहा गया है कि राग छः और सुंदर शरीरवाली रागिणियाँ छत्तीस हैं। राग छः कहे गये हैं- मालव, मल्लार, श्रीराग, वसन्त, हिल्लोल और कर्णाट ।।१८९-१९०।। मालवादि ये छः राग पुरुष स्वरूप हैं, रत्नालंकारों से सुभूषित हैं, प्रदोषकाल (सायंकाल) में इन्हें गाना दूषित है; ये छः राग रात्रि में गाने योग्य हैं ।।१९१।।

ऐसा कहा गया है कि रात्रि में भी दस घड़ी रात बीत जाने के बाद इन्हें गाना चाहिए। मेघमल्लार राग वर्षा ऋतु में सर्वदा गाना उचित है ।।१९२।।

श्रीपंचमीं समासाध्य यावत् स्याच्छयनं हरेः।
(श्रीपंचम्यां समारभ्य यावज्जन्मोत्सवो हरेः।। इति पाठान्तरम्)।।१९३।।

रागरत्नाकरादौ तथा दृष्टत्वात्-
तावद्वसन्तरागस्य गानमुक्तं मनीषिभिः।
सर्वेषामेव रागाणां रागिणीनां च सर्वशः ।।१९४।।
रंगभूमौ नृपाज्ञायां कालदोषो न विद्यते।
रागं चेदालपेत् पूर्वं तत् पत्नीं तदनन्तरम् ।।१९५।।
नान्यपत्नी प्रगातव्या नृपाज्ञायां न दूषणम्।
अत एवास्यानतिप्रयोजनत्वाद्धरिनायकादिभिर्नलिखितम्।
तत्र विरोधस्तु कल्पान्तराभिप्रायेण परिहरणीयः।।

किंच-
(रागनिर्णयाशक्यत्वम्)
देशे देशे भिन्न नाम्नां रागाणां तत्त्वनिर्णयम्।
कोऽपि कर्तुं न शक्नोति निरणायि न तन्मया ।।१९६।।

तथापि-
संगीतसार हरिनायक रत्नमाला-
गीतप्रकाशपरिदर्शितवर्त्मनैव।।
विज्ञैः सदैव रसिकैश्च विचार्य भूयो।
देशनुगुण्यविधिना हि विविच्यते तत् ।।१९७।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीपंचमी से लेकर भगवान के शयन काल (आषाढ शु. ११) तक या श्रीपंचमी से भगवान के जन्मोत्सव (श्रावण वः ८/भाद्र व. ८)तक इसका (वसन्त का) विशेष गायन काल है ॥१९३॥

राग-रत्नाकर आदि ग्रंथों में वैसा ही मिलता है। सभी राग-रागिणियों का गायन-काल निश्चित होते हुए भी रंगभूमि पर राजाज्ञा से अन्य समय पर गाने में दोष नहीं है। पहले राग का आलाप किया जाता है और बाद में उसकी रागिणी का ॥१९४-१९५॥

राजाज्ञा से अन्य पत्नी-रागिणी का गान करने में दोष नहीं है।

इसीलिए कालनियम का विशेष फल न देखकर हरिनायकादि ने इसकी चर्चा नहीं की है। जहाँ परस्पर वचनविरोध हो, वहाँ कल्पान्तर के भेद से नियम भेद समझना।

और भी,– देश-देश में भिन्न नामों के राग रूढ होने से उनके सिद्धांत का निर्णय कोई नहीं कर सकता, अतः मैंने भी उसका निर्णय नहीं किया ॥१९६॥

तो भी– संगीतसार, हरिनायक, रत्नमाला, गीतप्रकाश आदि ग्रंथो में प्रदर्शित मार्ग के अनुसार ही विद्वान रसिक बार-बार विचार कर सर्वदा देशानुकूल पद्धति को ध्यान में रखकर विवेचन करते हैं ॥१९७॥

स्थानांतरे वक्ष्यमाणोऽपि प्रसंगादत्र प्रतिदेशं भिन्नतया क्वचिद् दृष्टत्वात् तु तद्विवेकाय शिशुबोधाय च तेषां रागाणां गानसमयो लिख्यते–

तत्र दामोदरे–

प्रातर्गेयास्तु देशाख्यो ललितः पठमंजरी।
विभाषा भैरवी चैव कामोदो गोण्डकिर्य्यपि ॥१९८॥
एका वराडी मध्याह्ने सायं कर्णाट मालवौ।
नाट (लाट)श्चैव विशेषेण शेषा गेयास्तु सर्वदा ॥१९९॥
हिल्लोल (हिन्दोल)श्च वसन्तश्च वसन्ते रंजकावुभौ(रक्तिदायकौ)।
नाटो गोड़ी वराडी च गुंजरी (गुर्जरी) देशिरेव च॥२००॥
पू्र्वाह्ने गानमेतेषां निषिद्धमिति तद्विदः।
नैवापराह्ने गातव्यौ भैरवी ललितौ क्वचित्॥२०१॥

नारद पंचमसारसंहितायां–

विभाषा ललिता चैव कामोदी पठमंजरी।
रामकेलि रामकीरि वेलरी चैव गुंजरी॥२०२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देशकारीच सुभगा पंचमी च गड़ा तुड़ी।
भैरवी चापि कौमारी रागिण्यो दश पंच च।।२०३।।
एताः पूर्वाह्नकाले तु गीयन्ते गायनोत्तमैः।

अन्यत्र इस संबंध में कहा जाने वाला है, फिर भी प्रत्येक देश में भिन्न-भिन्न प्रकार होने से उसके पृथक ज्ञान और बालकों के बोध लिए यहाँ रागों के गायन का समय लिखते हैं–

देशाख्या, ललित, पठमंजरी, विभाषा, भैरवी, कामोद, गोण्डकिरी– ये प्रातर्गेय राग हैं।।१९८।।

मध्याह्न में सिर्फ एक वराडी राग गाया जाता है।

कर्णाट, मालव, नाट(लाट)– ये तीन विशेषकर सायंगेय हैं और शेष सब राग सर्वदा गेय हैं ।।१९९।।

हिल्लोल (हिन्दोल) और वसंत ये दो वसंत ऋतु में आनंददायक होते हैं। नाट, गोड़ी, वराडी, गुर्जरी, देशी– इन पाँचों का पूर्वाह्न में गाना निषिद्ध है। भैरवी और ललित का अपराह्न (दिन के १२ बजे के बाद) में गाना निषिद्ध है ।।२००-२०१।।

नारदपंचमसारसंहिता में कहा गया है– विभाषा, ललिता, कामोदी, पठमंजरी, रामकेलि, रामकीरिं, वेलरी (वेलोयारी?), गुर्जरी, देशकारी, सुभगा, पंचमी, गड़ा, तुड़ी, भैरवी, कौमारी – ये पंद्रह रागिणियाँ उत्तम गायक पूर्वाह्नकाल में गाते हैं ।।२०२-२०३।।

वराडी मायूरी कोडा वैरागी चापि धानसी।
वेलावली च मर्हाटी सप्तैता रागयोषितः ।।२०४।।
गेया मध्याह्नकाले च यथा भरतभाषितम्।
गान्धारी दीपिका चैव कल्याणी पूरवी तथा ।।२०५।।
आशावरी कानडा च गौरी केदार पाहिड़ाः।
माधवी मालसी नाटी भूपाली सिंधूरा तथा ।।२०६।।
सायाह्ने रागिणीरेताः प्रगायन्ति मनीषिणः।
मेघमल्लार रागस्य गानं वर्षासु सर्वदा ।।२०७।।

दाक्षिणात्यास्तु कोहलनामग्रहं पठन्ति–
देशाख्या भैरवी शुद्धा सारंगाख्या च भैरवी।
देवक्री रक्तहंसा (रत्नहंसा)च माहुला रक्तरंजिका ।।२०८।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एताः सूर्यांशुतो जाताः सायंकालेषु निन्दिताः।
प्रभाते येन गीयन्ते स नरः सुख मेधते ॥२०९॥
शुद्धा नट्टा च सारंगी शुद्ध नट्ट वरालिका।
द्रावडी च तथा नागरंजिका नागवरालिका ॥२१०॥
छायागौली तथा चान्या बाहुल्यान्दोलिता तथा।
मल्लारिका तथा छायागौणी (गौरी) कर्णाटकाह्वया ॥२११॥

मुनि भरत ने कहा है कि वराडी, मायूरी, कोडा, वैरागी, धानसी, वेलावली, मर्हाटी,- ये सात रागिणियाँ मध्याह्नकाल में गेय हैं। गान्धारी, दीपिका, कल्याणी, पूरवी, आशावरी, कानडा, गौरी, केदार, पाहिड़ा, माधवी, मालसी, नाटी, भूपाली, सिंधूरा- इन रागिणियों को गुणीजन सायंकाल में गाते हैं। मेघमल्लार राग वर्षा-ऋतु में सब समय गाया जाता है ॥२०४, २०५, २०६, २०७॥

दाक्षिणात्य लोग कोहल का नाम लेकर कहते हैं- देशाख्या, शुद्ध भैरवी, सारंग, भैरवी, देवक्री, रक्तहंस (रत्नहंस), माहुला, रक्तरंजिका, - ये रागिणियाँ सूर्यांश से उत्पन्न हुई हैं, अतः सायंकाल में गाना निन्दित है। जो इन्हें प्रभातकाल में गाता है वह सुख से बढता है ॥२०८-२०९॥

शुद्धा, नट्टा, सारंगी, शुद्ध नट्ट वराली, द्रावड़ी, नागरंजिका, नागवरालिका, छायागौली बाहुली, आन्दोलिता, मल्लारिका, छाया, गौणी (गौरी), कर्णाटक - ॥२१०-२११॥

गौलमालवगौलश्चैव (गलुमामानकश्चैव) रामक्रियस्तथैव च।
छायाराम (छायाराग) कृतेरंजीवच्छाया सर्ववरालिका (सर्वबालिका) ॥२१२॥
कर्णाट भूप बंगाला इत्येते चंद्रमोऽशुजाः।
एते रागो विशेषेण प्रातः कालेषु निन्दिताः।
सायमेषां तु गानेन महतीं श्रियमाप्नुयादिति ॥२१३॥

किंच गीतगोविंदटीकायां लक्ष्मणभट्टः-
प्रातर्गण्डकिरी सदासनस्था देशाख्यका गुर्जरी।
मध्याह्नेऽपि च तद्द्वयमथो वा कर्णाट नाटादयः।
सायं मालविक कृते सुधियो गायन्ति सायान्तने।
सारंगं पुरैव गौरमम्बरं प्रत्यूषतो भैरवीम् ॥२१४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संगीत कौमुद्याम्–
तावद्वसन्तो गीयेत प्रभाते भैरवादिकम्।
मध्याह्ने तु वराड्यादेः सायं कर्णाट नाटयोः।
श्रीरागमालवादेस्तु गाने दोषो न विद्यते । इति ।।२१५।।
इंद्रपुजां समासाद्य यावद् गिरिसुतार्चनम्।
तावदेव समुद्दिष्टं गानं वै मालवश्रियः ।।२१६।।
एवं तु बहुधाचार्यैर्गान कालः समीरितः।
यस्मिन् देशे यथा शिष्टं गीत विज्ञस्तथा चरेत् ।।२१७।।

गौल, मालवगौल, रामक्रिय, छाया, रंजीवच्छाया, सर्ववरालिका, कर्णाट, भूप, बंगाल- ये सब चन्द्र के किरण स्वरूप हैं, इसलिए विशेषतः प्रातःकाल में निंदित हैं। इन्हें सायंकाल में गाने से बड़ी शोभा और संपत्ति प्राप्त होती है ।।२१२-२१३।।

गीत गोविंद की टीका में लक्ष्मण भट्ट ने कहा है- प्रातःकाल में गोण्डकिरी, देशाख्या और गुर्जरी; मध्याह्न में भी दो – कर्णाट और नाट; सायंकाल में मालविका सुधीजन गाते हैं, सारंग पहले गाने बाद गुणीजन प्रत्यूष में भैरवी गा सकते हैं ।।२१४।।

संगीत कौमुदी में है – इसी प्रकार प्रभातकाल में वसंत, भैरव आदि, मध्याह्न में वराड़ी आदि, सायंकाल में कर्णाट; नाट; श्रीराग और मालव गाने में दोष नहीं है ।।२१५।।

इंद्रपूजा से लेकर गिरिसुता-देवीपूजा तक मालव और श्रीराग गाना योग्य है ।।२१६।।

इस प्रकार आचार्यों ने गायन-काल बहुत प्रकार से कहे हैं। जिस देश में जैसा नियम हो, गीतविज्ञ वैसा ही करें ।।२१७।।

अकालगाने दोषमाह–
समयोल्लंघनं गाने सर्वनाशकरं ध्रुवम्।
अथापराघाभावमाह
श्रेणीबद्धे नृपाज्ञायां रंगभूमौ न दूषणम् ।।२१८।।

परिदोषशमनं (परिहारमाह), कोहलीये–
लोभान्मोहाच्च ये केचिद्गायन्ति च वियोगतः।
सुरसा गुर्जरी तेषां दोषं हन्तीति कथ्यते ।।२१९।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्यत्राति–
अबेलारागमाकर्ण्य तस्य दोषप्रशान्तये।
ईशानं च हरिं स्तुत्वा मध्यमादिमनन्तरम् ।।
गायेद्वा शृणुयाद् वापि सोऽस्माद्दोषाद्विमुच्यते ।।२२०।।
अकालगाने प्रायश्चित्तमनयोरन्यतरत्कुर्यादित्यर्थः।

रत्नमालायाम्–
वसंतो रामकेरी च गुंजरी सुरसापि च।
सर्वस्मिन् गीयते कालेनैव दोषोऽभिजायते ।।२२१।।

पंचमसार संहितायां तु–
मालवश्चैव मल्लारः श्रीरागश्च वसंतकः।
हिल्लोल (हिन्दोल)श्चाथ कर्णाटः षट् पुंरागाः प्रकीर्तिताः ।।२२२।।
धानसी मालसी रामकेरी च सिंधुड़ा तथा।
आशावरी भैरवी च मालवस्य प्रिया इमाः ।।२२३।।

असमय गाने के दोष कहते हैं– निर्धारित समय का उल्लंघन कर गाने से सर्वनाश निश्चित है।

अब अपराध न होने की बात कहते हैं– श्रेणीबद्ध गान हो, राजा की आज्ञा हो तो रंगभूमि पर गाने में दोष नहीं है ।।२१८।।

परिदोष-शमन, परिहार कोहल ने इस प्रकार कहा है– जो कोई लोभ या मोह से समय-विरुद्ध गान करता है तो उसका दोष सुरसा, गुर्जरी के गान से दूर हो जाता है ।।२१९।।

अन्यत्र भी कहा गया है– अकाल में राग सुना जाय तो उस दोष के परिहार के लिए शिवजी और विष्णु का स्मरण कर मध्यमादि गाया या सुना जाय तो वे उस दोष से मुक्त हो जाते हैं ।।२२०।।

अकाल गान करने पर इन दोनों में से एक प्रायश्चित्त करें।

रत्नमाला में कहा गया है– वसंत, रामकेरी, गुंजरी (गुर्जरी), सुरसा– ये सर्वकाल गेय हैं, इसमें दोष नहीं ।।२२१।।

पंचमसारसंहिता में कहा गया है– मालव, मल्लार, श्रीराग, वसंत, हिल्लोल (हिन्दोल) कर्णाट– ये छः पुरुष राग हैं ।।२२२।।

धानसी, मालसी, रामकेरी, सिंधुड़ा, आशावरी, भैरवी– ये मालव राग की पत्नियाँ हैं।।२२३।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वेलावली च पूरवी कानड़ा माधवी तथा (मायूरीत्य सम्बद्धम्)।
कोड़ा केदारिका चैव मल्लारस्य प्रिया इमाः ।।२२४।।
वेलोयारी च गौरी च गान्धारी सुभगा तथा।
कौमारी चैव वैरागी श्रीरागस्य प्रिया इमाः ।।२२५।।
तोड़ी च पंचमी चैव ललिता पठमंजरी।
गुर्जरी च विभाषा च वसंतस्य प्रिया इमाः ।।२२६।।
मायूरी (माधवी) दीपिका चैव देशकारी च पाहिड़ा।
वराडी मारहट्टी च एता हिन्दोल (हिल्लोल) योषितः ।।२२७।।
नाटिका चाथ भूपाली रामकेरी गडा तथा
कामोदी चाथ कल्याणी कर्णाटस्य प्रिया इमाः ।।२२८।।

मम्मटाचार्यकृत संगीतमालायाम्–
कर्णाट नाट मल्लारा देशाख्यो मालवस्तथा।
वसंतश्चेति पुंरागाः रागज्ञैः षट् प्रकीर्तिताः ।।२२९।।
चंदनी मालवी श्रीश्च सिंधुवेलावली तथा।
प्रपातनी विभाषाख्या कर्णाटस्यैव नायिकाः ।।२३०।।
काम्बोजी नाटभाषाख्या नाटिका गुणमंजरी।
शेखरी मुखरी चेति नाटदाराः प्रकीर्तिताः ।।२३१।।

वेलावली, पूरवी, कानड़ा, माधवी, कोड़ा, केदारिका– ये छः मल्लार की प्रियाएं हैं ।।२२४।।

वेलोयारी, गौरी, गांधारी, सुभगा, कौमारी, वैरागी– ये छः श्रीराग की प्रियाएं हैं ।।२२५।।

तोड़ी, पंचमी, ललिता, पठमंजरी, गुर्जरी, विभाषा– ये छः वसंत की प्रियाएं हैं ।।२२६।।

मायूरी, दीपिका, देशकारी, पाहिड़ा, वराडी, मारहट्टी– ये छः हिल्लोल (हिन्दोल) की स्त्रियाँ हैं ।।२२७।।

नाटिका, भूपाली, रामकेरी, गड़ा, कामोदी, कल्याणी– ये छः कर्णाट की प्रियाएं हैं ।।२२८।।

मम्मटाचार्य कृत संगीतमाला में है– कर्णाट, नाट, मल्लार, देशाख्य, मालव, वसंत– ये छः पुरुषराग हैं, ऐसा कहा है ।।२२९।।

चंदनी, मालवी, श्री, सिंधु, वेलावली, प्रपातनी, विभाषा–ये छः कर्णाट की नायिकाएं हैं ।।२३०।।

काम्बोजी, नाटभाषा, नाटिका, गुणमंजरी, शेखरी, मुखरी – ये छः नाट की दाराएं हैं ।।२३१।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मल्लारी ललिता चेति तथा प्राचीनमंजरी।
मधुकारी दुग्धकारी देशी मल्लारवल्लभाः ॥२३२॥
गुंजरी रामकेरी च गुण्डकेरी सुरेहिका।
धानसी च वराडी च देशाख्यस्यैव नायिकाः ॥२३३॥
सिरी केदारसंज्ञा च मेघमार्जनिका तथा।
कन्धुश्चिन्ता च लवनी (नवनी) मालवस्याबला मताः ॥२३४॥
भैरवी रंगहारी च मेघताला सुपंचमी।
अमरा तोड़िका गौड़ी वसंतस्यैव नायिकाः ॥२३५॥
केचित्तु पुंरागा अष्टवित्याहुः– तदुक्तं संगीतकौमुद्याम्–
भैरवो भूपतिश्चैव श्रीरागः पठमंजरी।
वासन्तिकाश्च भूपालः सारंगो मालवस्तथा।
एते संगीत शास्त्रज्ञैः पुमांसश्चाष्ट कीर्तिताः ॥२३६॥

दाक्षिणात्य निबन्धरागविवेके–
भैरवश्चाथ भूपालः श्रीरागः पठमंजरी।
वासंती मालवश्चैव बंगालो नाटकस्तथा।
एतेऽष्टरागाः कथिताः पुंरागा इति सूरिभिः । इति ॥२३७॥

मल्लारी, ललिता, प्राचीनमंजरी, मधुकरी, दुग्धकारी, देशी– ये छः मल्लार राग की वल्लभाएं हैं ॥२३२॥

गुंजरी, रामकेरी, गुण्डकेरी (गोण्डकेरी), सुरेहिका, धानसी, वराडी– ये छः देशाख्य की नायिकाएं है ॥२३३॥

सिरी (श्री), केदार, मेघमार्जनिका, कन्धु, चिन्ता, लवनी, (नवनी)– ये छः मालवराग की स्त्रियां हैं ॥२३४॥

भैरवी, रंगहारी, मेघताला, सुपंचमी, अमरा, तोड़िका, गौड़ी– ये छः वसंत की नायिकाएं हैं ॥२३५॥

कुछ आचार्यों ने पुंराग आठ (८) कहे हैं, जैसा कि संगीत कौमुदी में कहा गया है– भैरव, भूपति, श्रीराग, पठमंजरी, वासंती, भूपाल, सारंग, मालव– ये आठ पुरुष राग हैं, ऐसा संगीतशास्त्रज्ञों का कहना है ॥२३६॥

दाक्षिणात्य निबन्ध रागविवेक में है– भैरव, भूपाल, श्रीराग, पठमंजरी, वासंती, मालव, बंगाल, नाटक– ये आठ पुरुषराग हैं, ऐसा विद्वानों ने कहा है ॥२३७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(पुंरागाणांत्रैविध्यम्)
संपूर्णः षाडवश्चैव औडवश्चेति ते त्रिधा।
संपूर्णास्ते तु ये तत्र जायन्ते सप्तभिः स्वरैः ।।२३८।।

के ते इत्याह–
(संगीत नारायणमुल्लिरव्य संगीतसारे उत्तम)
श्रीरागो नटकर्णाट रेवगुप्त वसंतकाः।
शुद्धभैरव बंगाल सोमरागाम्रपंचमाः।।२३९।।
कामोदो मेघरागश्च तथा द्राविड़ गौडकः।
वराटी गुंजरी (गुर्जरी) तोड़ी मालवश्रीश्च सैन्धवी ।।२४०।।
देवक्री चैव रामक्री तथा प्रथममंजरी।
नाटा वेलावली गौरीत्याद्याः संपूर्णका मताः ।।२४१।।
आदिपदेन अन्येऽपि नाटाद्या गृह्यन्ते।

तदुक्तं संगीतसारे–
नाटघण्टारवौ नटनारायणक भूपतिः।
शंकराभरणश्चेति पूर्णरागा इमे मताः।।२४२।।

एतद्गानफलमाह कोहलः
आयुर्धर्मयशः कीर्ति बुद्धि सौख्य धनानि च।
राज्याभिवृद्धिसन्तानः पूर्णरागेषु जायते। इति ।।२४३।।

इन रागों की तीन जातियाँ हैं– संपूर्ण, षाड़व और औड़व। सातों स्वरों का प्रयोग जिनमें है, वें संपूर्ण राग कहलाते हैं।।२३८।।

अब उनके नाम कहते हैं– श्रीराग, नट, कर्णाट, रेवगुप्त, वसंत, शुद्धभैरव, बंगाल, सोमराग, आम्रपंचम, कामोद, मेघराग, द्राविड़गौड़, वराटी, गुंजरी (गुर्जरी), तोड़ी, मालवश्री, सैन्धवी, देवक्री, रामक्री, प्रथममंजरी, नाटा (नट्टा), वेलावली, गौरी इत्यादि संपूर्ण राग हैं ।।२३९, २४०, २४१।।

आदि कहने से अन्य भी नाट आदि लिये जाते हैं।

जैसा कि संगीत सार में कहा गया है– नाट, घण्टारव, नटनारायण, भूपति, शंकराभरण– ये संपूर्ण राग हैं ।।२४२।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उनके गायन का फल कोहल ने कहा है- संपूर्ण रागों के फल इस प्रकार हैं- आयुष्य, धर्म, यश, कीर्ति, बुद्धि, सौख्य, धन, राज्य की अभिवृद्धि, संतान होना ॥२४३॥

एषामुक्तक्रमेण फललक्षणमाह-

श्रीरागः

जातिन्यासग्रहग्रामांशषड्जाल्पपंचमः।

शृंगारवीरयोर्गेयः श्रीरागो गीतकोविदैः ॥२४४॥

अस्यार्थः

षड्जेति षड्जस्वरः। स्वरो नाम श्रुत्यारब्धमनुरणनम्। श्रुतिर्नाम- स्वरारम्भकावयवशब्द (विलास) विशेषः। शृंगारेति- शृंगार हास्य करुणरौद्रवीरभयानकाः। बीभत्साद्भुतशान्ताश्च नव नाट्ये रसाः स्मृताः॥

अथ दामोदर कनकांकुर नारदसंहिता चंद्रिका

रत्नमालादिषु निर्णीताः मूर्तयो (श्रुतयो) यथास्थानमुक्तीर्त्यन्ते।

नारदसंहितायाम्-

लीलाविहारेण वनान्तरेण (वनान्तरेणु, वनान्तराले) चिन्वन् प्रसूनानि वधूसहायः। विलासिवेषोऽसित दिव्यमूर्तिः (विलासवेषोदितव्यक्तमूर्तिः) श्रीराग एषः प्रथितः पृथिव्याम्। ॥२४५॥

इन रागों के क्रमशः लक्षण और फल कहते हैं-

श्रीराग-यह राग षड्ज ग्राम की षाड्जी जाति से उत्पन्न है। अंश, ग्रह और न्यास स्वर षड्ज है। पंचम स्वर अल्प है। (पंचम आलाप स्वर है, ऐसा पाठ है)। गीतज्ञों के अनुसार श्रीराग शृंगार और वीररस में गेय है ॥२४४॥

षड्ज का अर्थ है षड्ज स्वर। स्वर का अर्थ है श्रुति से आरंभ किया हुआ अनुरणन्। श्रुति का अर्थ है स्वर को आरंभ करनेवाला शब्द विशेष। शृंगारेति का अर्थ है शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स, अद्भुत, शांत- ये नौ (९) रस नाट्य में कहे हैं।

अब दामोदर, कनकांकुर, नारदसंहिता, चंद्रिका, रत्नमाला आदि ग्रथों में निर्णीत राजमूर्ति का यथास्थानानुसार वर्णन करते हैं-

नारद संहिता में- विलासपूर्ण वेशभूषा धारण कर, कृष्णवर्ण दिव्य शरीर धारण किये हुए, वधू को साथ लेकर लीला की अनेक क्रीड़ाएं करते हुए अरण्य में फूल चुनते हुए विचरण कर रहा है, ऐसा श्रीराग जगत् में प्रसिद्ध है ॥२४५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अथ नटः—

श्रीरागवत्तथा नट्टः किंतु नैपोऽल्पपंचमः (मध्यमः)।
ध रि (स रि) तारो नि मन्द्रश्च गमकैरुत्कटैर्युतः ।।२४६।।

श्रीरागवदिति— श्रीरागो यथा जात्यादिषु षड्जस्तथेत्यर्थः।
विशेषस्तु— धैवतऋषभयोस्तारः निषादे मन्द्रः, एवमेव वक्ष्यमाण रागेषु बौद्धव्यम्।

अंकास्त्रधत्वा ऋजुतां नयनबाणां शुकद्युतिः।
(अंकासुबध्वारियुतां नयन वालां शुकद्युतिः।)
आसनस्थो युवा चारुवेषो नट्टश्च बाहुजः ।।२४७।।

अथ कर्णाटः—

कर्णाटस्तद्वदाख्यातो निन्यासो ग्रहणांशकः

मूर्तिस्तु—

कृपाणपाणिर्गजदन्तखण्डमेकं वहन् दक्षिण कर्णपूरम्।
संस्तूयमानः सुरचारणौद्यैः (चारणाढ्यैः) कर्णाटरागः शिखिकण्ठनीलः।।२४८।।

अब नट राग का वर्णन करते हैं— नट्ट राग श्रीराग की तरह है, किन्तु अल्पपंचम नहीं है। ध और रि तार है और नि मन्द्र। यह उत्कट गमकों से युक्त है ।। २४६ ।।

श्रीरागवत् का अर्थ है श्रीराग जैसे जात्यादि में षड्ज है वैसा यहां भी है। विशेष बात यह है कि धैवत और ऋषम तार हैं; निषाद मन्द्र है। आगे भी ऐसे स्थल पर इसी तरह अर्थ समझना।

अंक में अस्त्र धारण कर सुंदर नयन शुकद्युति के समान आसन पर बैठा हुआ, तरुण, सुंदर वेषवाला, क्षत्रिय जाति का यह नट्ट राग है ।।२४७।।

कर्णाट— हाथ में खड्ग है, दक्षिण कर्ण में हस्तिदन्त का एक टुकड़ा भूषण के रूप में, धारण किया हुआ है, बड़े-बड़े देव और चारण जिसकी स्तुति कर रहे हैं और जिसका वर्ण मयूर के कण्ठ की तरह नील है, ऐसा कर्णाट राग है ।।२४८।।

नारदसंहितायां त्वन्यथा दृश्यते—

कृपाणपाणिस्तुरगाधिरूढः मयूर कण्ठोपमकण्ठकान्तिः।
स्फुरत् सितोष्ठाधरकः प्रयाति कर्णाटरागो हरिणान् विहन्तुम्।।२४९।।
(मयूर कण्ठोपमदेहकान्तिः स्फुरत् सितोष्णीधरः, इति पाठांतरम्)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अथ रेवगुप्तः
रेवगुप्तो रिग्रहांशो मध्यमान्तर्षभोद्भवः ।।२५०।।
(रेवगुप्तस्तथा षड्जमध्यमर्षभिकोद्भवः।*
रिग्रहांशो मध्यमान्तो रसे वीरे नियुज्यते।। इति पाठांतरम्)

मूर्तिस्तु निबन्धान्तरे-
अंके निषण्णां सुरतातिखिन्नामाश्वासयन् स्वांचलवीजनेन।
सीमन्तिनीं श्वासचलत्कुचान्तां सुवर्णकान्तिः किल रेवगुप्तः ।।२५१।।
अथ वसंतः
षड्जमध्यमिकाज्ञातः षड्जन्यासग्रहांशकः।
गेयो वसन्तरागोऽयं वसन्तसमये बुधैः ।।२५२।।

नारद संहिता में इससे कुछ अलग है- घोड़े पर आरूढ, हाथ में खड्ग, मयूर-कण्ठ की तरह जिसके कण्ठ का वर्ण है, जिसके धवल ओष्ठ स्फुरण कर रहे हैं, ऐसा यह कर्णाट राग मृगों को मारने जा रहा है ।।२४९।। (पाठांतर-- मयूर-कण्ठ की तरह जिसकी देहकांति है, मस्तक पर श्वेत पगड़ी शोभायमान है।)

अब रेवगुप्त- रेवगुप्त का ग्रह और अंश स्वर ऋषभ है, न्यास स्वर मध्यम है और आर्षभी जाति से उत्पन्न है ।।२५०।। (पाठांतर - षड्ज ग्राम का आर्षमी - मध्यमा जाति से रेवगुप्त का उद्भव है। ग्रह एवं अंश स्वर ऋषभ है और वीर रस में इसका प्रयोग है।)

निबन्धान्तर में मूर्ति का वर्णन है- सुवर्ण की तरह कान्तिवाला है, सुरत क्रीड़ा से अति क्लान्त है, जोर से श्वास लेने के कारण जिसके स्तनाग्र हिल रहे हैं, गोद में बैठी ऐसी अपनी सुंदर स्त्री को अपने वस्त्र के आँचल से हवा झल रहा है, ऐसा रेवगुप्त है ।।२५१।।

अब वसंत- षड्ज मध्यमा जाति से उत्पन्न राग वसंत है, जिसका न्यास, ग्रह, अंश स्वर षड्ज है। गुणज्ञों के अनुसार वसंत राग वसंत ऋतु में गेय है ।।२५२।।

मुर्तिस्तु-
(संगीत दामोदरे)
शिखण्डिबर्होच्चयबद्धचूडः।
पुष्णन् पिकं (पिकप्रियः) चूतलतांकुरेण।।
भ्रमन् मुदाराम (वाम) मनोज्ञमूर्ति-।
र्मत्तो मतंग स(मतंगमत्तः) वसंतरागः ।।२५३।।

* षड्जग्रामे रेवगुप्तो मध्यमार्षभिकोद्भव। -सं. र.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नारदसंहितायां तु–
चूतांकुरेणैव कृतावतंसो।
विघूर्णमानारुणनेत्रपद्मः।।
पीताम्वरः कांचन चारुदेहो।
वसंतरागो युवतिप्रियश्च ।।२५४।।

अथ शुद्धभैरवः
धैवतांशग्रहन्यासयुक्तः स्याच्छुद्धभैरवः।
सकम्पमन्द्रगान्धारगेयो माध्याह्नतः परम् ।।२५५।।

मूर्तिस्तु निबन्धान्तरे–
स चंद्रहासं फलकं दधानो।
निबद्धकक्षो (वक्षो) दृढबद्धचूड़ः।
(निलीनकण्ठ शशिबद्धचूड़ः)
चारीर्वितन्वन् (त्रिनेत्रधारी) बहुधा पदातिः।
प्रचंडरूपः किल भैरवोऽयम् ।।२५६।।
अन्यस्तु औड़वे वक्ष्यते।

मूर्ति इस प्रकार है– मयूर पिच्छों का कलाप जिसने चूड़ा में धारण किया है, आम्र पल्लवांकुरों से कोकिल के आनंद को जो बढानेवाला है, आनंद से जो घूमता है, सुंदर शरीरधारी है, उन्मत्त हाथी की तरह है, ऐसा वसंत राग है ।।२५३।।

नारद संहिता में है– आम के पल्लवों (मंजरियों) से बनाया हुआ शेखर (तुर्रा) जिसने मस्तक पर धारण किया है, आरक्त वर्ण के नेत्रकमल जिसके इधर-उधर विघूर्णित हैं, पीताम्बर परिधान किये हुए है, कांचन की तरह सुंदर शरीर वाला है, तरुण स्त्री जिसे अतिप्रिय है, ऐसा वसंत राग है ।।२५४।।

अब शुद्ध भैरव- अंश, ग्रह और न्यास स्वर धैवत है, मन्द्र गान्धार कम्पयुक्त (आन्दोलित) है, मध्याह्न के बाद गेय है, ऐसा शुद्ध भैरव है ।।२५५।।

मूर्ति इस प्रकार है- हाथ में खड्ग, ढाल है, शिखा बंधी हुई है, वक्षःस्थल भी बँधा हुआ है, कण्ठ भाग भी लीन है, जो चारियों का प्रयोग कर रहा है (जिसके तीन नेत्र हैं), प्रायः पदातिक है, ऐसा प्रचंड रूपशाली भैरव राग है ।।२५६।।

अन्य औड़व में कहा जायगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अथ बंगालः
बंगालः कौशिकाज्जातः षड्जन्यासग्रहांशकः।
सकम्पमन्द्रगान्धारो गेयः करुण हास्ययोः ।।२५७।।

मूर्तिस्तु–
मनोज्ञ मौंजीगुणगुम्फितांगः।
सत्वचं ततं (स्रजं) दधानो धरणीरुहस्य।।
चण्डः कुमारः कमनीयमूर्तिः (रमणीयमूर्तिः)
बंगालरागः शुचिसामगानः (शुचिहास्यमानः) ।।२५८।।

अथ सोमरागः–
जातिन्यास गहांशेषु षड्जो वीरेघनागमे।
नि-तार प-रि-बाहुल्यः सोमरागोऽत्र गीयते।।२५९।।

(राग ओ रूप)
(षाड्जी जाति समुत्पन्नःषड्जन्यासग्रहांशकः।
नि-तार प-रि-बाहुल्यो रसे वीरे नियुज्यते।
मेघच्छायागमे गेयः सम (सोम) रागो मतः सताम्।।)

अब बंगाल- बंगाल राग कौशिकी जाति से उत्पन्न है। न्यास, ग्रह, अंश स्वर षड्ज है। मन्द्र गान्धार कम्पयुक्त है। करुण-हास्य रस में गेय है ।।२५७।।

मूर्ति – सुंदर मुंज नामक तृण की मौंजी (रस्सी) (पाठांतर-कांची) जिसके शरीर पर वेष्टित है, पेड़ के प्रतानों के तन्तु अथवा माला या वृक्ष का वल्कल जो धारण किया हुआ है, क्रोधयुक्त, कुमार और सुंदर शरीरधारी, जिसके मुख पर शुचिहास्य अथवा शुचि सामगान है, वह बंगाल राग है।। २५८।।

अब सोमराग- इसकी जाति षाड्जी है, न्यास, ग्रह एवं अंश स्वर षड्ज है। वीर रस के अनुकूल और वर्षा ऋतु के आगमन पर गेय है। निषाद तार का है और पंचम - ऋषभ बहुल प्रयोग है। ऐसा सोम राग है ।।२५९।।

(यह षाड्जी जाति से उत्पन्न है, न्यास, ग्रह एवं अंश स्वर षड्ज है। निषाद तार का है, पंचम-ऋषभ का बहुल प्रयोग है और वीर रस में गेय है। मेघच्छाया काल में गेय सम (सोम राग है।)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मूर्तिस्तु चन्द्रिकायाम्–
निशांगनां (निजांगना) वक्षसि शाययित्वा।
कलंकदम्भात् सुरतश्रमार्ताम्।।
(गृहीतमाल्यां सुरतं स्रवन्तीम्)
स्खलत्करः साल सलोचन श्रीः।
कामी सुधापाण्डुर एष सोमः ।।२६०।।

अथाम्रपंचमः
आन्ध्री (मान्द्र) जाति समुत्पन्नो मध्यमग्रामगोचरः
गान्धारांशग्रहन्यासोरागः स्यादाम्रपंचमः ।।२६१।।
मान्द्र जातिस्तूक्तैव। अयमेव अमरपंचमोऽप्युच्यते।
पंचमोऽयं प्रसिद्ध एव।

मूर्तिस्तु तत्रैव–
युवातसीसूनसमान कांतिः।
श्रीखण्डपंकार्द्रसमस्तदेहः।।
वीणाप्रवीणोऽमरपंचमोऽयम्।।
गीतेन मुग्धीकृतदेवराजः ।।२६२।।

चन्द्रिका में मूर्ति का वर्णन है– रात्रि में अपने वक्षःस्थल पर सुरत श्रम से खिन्न स्त्री को जो सुलाकर सोया है, आनंद से जिसके हाथ स्खलित हो रहे हैं, आँखों में जिसके मन्दता-युक्त रतिकालीन शोभा है, चूने की तरह सफेद जिसका वर्ण है, ऐसा सोमराग है ।।२६०।।

अब आम्रपंचम– आन्ध्री जाति से उत्पन्न है, मध्यम ग्राम है, अंश, ग्रह, न्यास स्वर गांधार है, ऐसा आम्रपंचम राग है ।।२६१।।

आन्ध्री जाति का यह राग है। इसे ही अमरपंचम कहते हैं और यह पंचमनाम से भी प्रसिद्ध है।

मूर्ति– तरुण, अतसी के फूल के समान कान्तिवाला, चंदन-रस से जिसका सारा शरीर लिप्त है, जिसने गीत से देवराज इंद्र को भी मुग्ध कर दिया है, जो वीणा-वादन में पटु है, ऐसा राग अमरपंचम (आम्रपंचम) है ।।२६२।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अथ कामोदः-
कामोदः करुणे हास्ये नि-तारो बहुकंपनः।
षाड्जी जाति ग्रहांशेषु यामार्ध्वंन्यासमन्दगः ।।२६३।।
(षड्जन्यासग्रहांशेषु यामार्द्धे गीयते सदा।)
यामात् प्रहरात् ऊर्ध्वं (भृंग) गानकाल इत्यर्थः।

मूर्तिस्तु-
अक्षमालां करे धृत्वा वसानं रौरवीं (रसालस्तातरी) त्वचम्।
जपन् जह्नुसुतातीरे कामोदः परिकीर्तितः ।।२६४।।

नारदसंहितायां तु-
भर्त्रा समं पाथसि हेमवर्णा।
पयोविहारेण सरोरुहाणि।।
विचिन्वती सौरभमोदमाना।
कामोद रागिण्युदिता विदग्धैः ।।२६५।।
(कामोदिका ता कथिता गुणज्ञैः)

अथ मेघरागः
वीरे धांशग्रहन्यास, षड्जे धैवतिकोद्भवः।
गेयो घनागमे मेघरागोऽयं मन्द्रहीनकः ।।२६६।।

अब कामोद - कामोद करुण और हास्य रस में उपयुक्त होता है। निषाद तार का है और बहुकंपयुक्त है। जाति षाड्जी है; ग्रह, अंश स्वर षड्ज है, अर्धप्रहर में गाया जाता है- एक प्रहर के बाद इसका गायनकाल है ('यामोर्ध्वं'- ऐसा पाठांतर होने से दो प्रकार का अर्थ है)। न्यास स्वर मन्द्र गांधार है ।।२६३।।

मूर्ति- हरिण चर्म परिधान कर, हाथ में रुद्राक्ष माला लेकर गंगा के तीर पर जप करता हुआ बैठा है, ऐसा कामोद राग है ।।२६४।।

नारदसंहिता में है- सुवर्ण वर्ण से शोभायमान, पति के साथ पानी में विहार करती हुई कमल चुनती है और सुगंध से आनंदित हो रही है, ऐसी कामोद रागिणी है, ऐसा विद्वानों का कहना है ।।२६५।।

अब मेघराग - वीर रस के अनुकूल है, अंश, ग्रह न्यास स्वर धैवत है, षड्जग्राम की धैवती जाति से इसकी उत्पत्ति है इसमें मन्द्र स्थान वर्ज्य है और यह वर्षा ऋतु में गेय है ।।२६६।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मूर्तिस्तु निबन्धांतरे–
पर्यंके प्रियया सार्धमासीन उपवीणयन् (उपलालयन्)।
पीतांबरः सूभूषाढ्यो मेघरागो घनद्युतिः ।।२६७।।

अथ द्राविड़गौड़ः–
निषादांशग्रहन्यासः षड्जपंचमसंकुलः।
गेयो द्राविड़ गोड़ोऽयं वीरशृंगारयोर्निशि ।।२६८।।
गौड़स्य द्वैविध्यं कोहलीये तुरुष्कगौड़ द्राविड़गौड़श्चेति।
तुरुष्क गौड़स्तु औडवे वक्ष्यते।

मूर्तिस्तु निबन्धान्तरे–
अंसाप्तकर्णः शिशिरांशुधामा।
कृकाटिका चुम्बितचारुचेलः (चूड़)।
स्रग्वी जपन् पाणिधृताक्षदर्भः।
विप्रो युवा द्राविड़गौड़ एषः ।।२६९।।
(देशी सुवर्णः शिशिरांशुधामा कृकाटिका चुम्बित चारुबालः।
स्रग्वीजपन् पाणिधृतांजदण्डो विप्रो युवा द्राविड़गौड़ एषः।।)

निबन्धान्तर में मूर्ति का वर्णन– अपनी प्रियतमा के साथ पलंग पर बैठकर वीणा बजा रहा है। नीलवर्ण भूषणों से सुशोभित है, पीतांबर परिधान किये हुए है। ऐसा मेघराग घनद्युति के समान है ।।२६७।।

अब द्राविड गौड़– अंश, ग्रह, न्यास स्वर निषाद है। षड्ज और पंचम संकुल (परिपूर्ण, अधिक) है। वीर एवं शृंगार रस का पोषक द्राविड़ गौड़ रात्रि में गेय है ।।२६८।।

कोहल ने गौड़ के दो प्रकार कहे हैं– तुरुण्क गौड़ और द्राविड़ गौड़। तुरुण्क गौड़ औड़व है।

निबन्धान्तर में मूर्ति– चन्द्र की तरह शीतल प्रकाशवाला, स्कन्ध तक जिसके कर्ण लम्बे हैं, शिरवा जिसकी गले तक आयी हुई है, हाथ में रुद्राक्ष और दर्भ धारण किये हुए है, गले में माला है, तरुणवय, ब्राह्मण जाति है और मुँह से कुछ बोल रहा है, ऐसा रूप द्राविड़ गौड़ का है ।।२६९।।

(कोष्ठकान्तर्गत पाठ में कोई विशेषता नहीं है।)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्थ वराडी–
प्रहरादूर्ध्वतो गेया भिन्नपंचमसंभवा (वराटीभिन्नपंचमी),
षड्जन्यासग्रहांशेयं वराडी भरतोदिता: ।।२७०।।

(षड्जन्यास ग्रहांशैषा हरिनायक सम्मताम्)
अस्यास्त्रैविध्यं तु उद्देशस्थाने उक्तम्। रत्नमालायाम्।
शुद्धवराडी, द्राविड़ वराडी, देशी वराडीतिभेदात्। कौमुद्यां तु षाडवमध्ये गणिता।
(कौमुद्यां तु सा औडवमध्ये गणिता)।

मूर्तिस्तु–
विनोदयन्ती दयितं च गौरी।
सुकंकणा चामरचालनेन।।
कर्णे दधाना सुरपुष्पगुच्छम्।
वरांगनेयं कथिता वराडी।।२७१।।

नारदसंहितायां त्वन्यथा दृश्यते–
कर्णे दधाना सुरपुष्पयुग्मम् (सुरपुष्पगुच्छम्)। सुवृत्तवक्षोजमनोहरांगी।
स्मेरानना चारु (भाव) विलोलनेत्रा। गौरांगयष्टि: कथिता वराडी।।२७२।।
(निषद्यधमाना(विच्छिद्यमाना)श्रुकलाकुलाक्षी।
सुनीलचीरा धरणीं पतन्ती।
प्रियानुरागं सततं स्मरन्ती।
कृशांग यष्टि: कथिता वराडी।)

अब वराडी– भिन्न पंचम जाति से उत्पन्न; एक प्रहर के बाद गेय; न्यास, ग्रह, अंश स्वर षड्ज; वराडी का ऐसा वर्णन भरत ने किया है ।।२७०।। (हरिनायक के अनुसार न्यास, ग्रह, अंश स्वर षड्ज है।)

वराडी के तीन प्रकार हैं– रत्नमाला में उनके नाम शुद्ध वराडी, द्राविड वराडी और देशी वराडी कहे हैं। कौमुदी में इसकी गणना षाड़व में है और औड़व में भी।

मूर्ति– गौरवर्ण, सुंदर कंकण धारण किये हुए, कल्पवृक्ष के फूलों का गुच्छ कानों में लगाये हुए, चामरों से हवा झलकर पति का मनोरंजन करती हुई, श्रेष्ठ अंगना के रूप में सुशोभित वराडी कही गयी है ।।२७१।।

नारद संहिता में भिन्न प्रकार का वर्णन है– गौर शरीर कान्ति, कान में देवपुष्पगुच्छ,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुंदर वर्तुलाकार स्तनों से मन मोहनेवाली, हास्यमुख, सुंदर चंचल नेत्रवाली, ऐसी वराडी है।।२७२।।

(अश्रुकणों से जिसके नेत्र व्याकुल हैं, नीलवस्त्र परिधान किये हुए है, पति के प्रेम का स्मरण कर धरती पर गिरती हुई, कृश शरीरवाली वराडी है।)

अथ गुंजरी (गुर्जरी)–
गुंजरी रि(स)ग्रहांशान्ता जातापंचमषाडवात्।
क्वचिन्मांसा(ता)पि धंम्रादौ(मंद्रादौ) गेया शृंगारवर्धिनी ।।२७३।।
षाडवः= षड्ज स्वरः।
(गुर्जरी रिग्रहान्ता च जाता पंचमषाडवात्। क्वचिन्माधस्य मासादौ गेया शृंगारवर्धिनी।)

संगीतसारे तु–
दक्षिणगुंजरी सौराष्ट्रगुंजरीति भेदद्वयमाह।
रत्नामालायां तु– दशधा गुंजरी प्रोक्तेत्याद्युक्तम्।
तत् प्रपंचभिया न लिखितम्।

मूर्तिस्तु–
श्यामा सुकेशी मलयद्रुमाणाम्।
मृदूल्लसत् पल्लव तल्पयाता।
श्रुतेः स्वराणां दधती विभागम्।
तन्त्रीमुखी (सुखा) दक्षिणगुंजरीयम् ।।२७४।।

नारदसंहितायां तु–
कर्णोत्पलासंगिमधुव्रतानाम्।
संशृण्वती मंजुलकूजितानि।
कान्तान्तिकं गन्तुमनाः प्रदोषे।
सा गुंजरी वेषकलांचितांगी ।।२७५।।

अब गुर्जरी– ग्रह, अंश, न्यास स्वर ऋषभ है और पंचमषाडव से यह उत्पन्न है। कभी-कभी मध्यम भी अंश माना जाता है और धैवत का वर्जन किया जाता है। शृंगार रस में इसका विनियोग है ।।२७३।। षाडव = षड्जस्वर।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संगीतसार में है- इसके दो भेद हैं- दक्षिण गुर्जरी और सौराष्ट्र गुर्जरी। रत्नमाला में गुंजरी के दस प्रकार कहे गये है। विस्तार के भय से मैंने यहाँ नहीं कहे हैं।

मूर्ति- श्यामा, सुंदर केशवाली, मलय के चंदन वृक्ष के कोमल पल्लवों की सुंदर शैया पर बैठकर श्रुति-स्वर का विभाग करती हुई तन्तुवाद्य - वादन के आनंद में तल्लीन दक्षिणगुंजरी है ॥२७४॥

नारदसंहितामें है- कान में धारण किये हुए कमलों पर बैठनेवाले भ्रमरों का मधुर गुंजारव सुनती हुई, सुंदर वेश और कलाओं से सुशोभित शरीर से रात्रि के आरंभ काल में पति के पास जाने के विचार में मग्न गुंजरी है ॥२७५॥

अथ तोड़ी-

मध्यमांशग्रहन्यासा तोड़िका शुद्ध षाडवात्।
जाता मध्याह्नसमये गेया शृंगारवीरयोः ॥२७६॥

मूर्तिस्तु-

उन्निद्रपंकरुह चारुनेत्रा।
कुरंगशारं कलयामांकुरेण।
संभावयन्ती विपिनोपकण्ठे।
तोडीयमिन्दीवरदामवल्ली ॥२७७॥
(उन्निद्रपंकेरुह चारुनेत्रा।
कुरंगनाभिं दधती करेण।
संभाषयन्ती विपिनोपकण्ठे।
तोड़ीयमिन्दीवरदामरम्या।)

अथ मालवश्रीः

मालवश्रीः शरद्गेया जाता मालवकैशिकात्।
एषा षड्जग्रहन्यासा पार्वतीप्रीतिकारिणी ॥२७८॥
आर्षमी धैवती वर्जिताः शुद्ध जातयः कौशिकीजातिवाच्याः।
(कै) प्रमाणयुक्तं जाति विवेचनावसरे।

तोड़ी- शुद्ध षाडव से उत्पन्न है। अंश, ग्रह, न्यास स्वर मध्यम है। मध्यान्ह में गेय है और शृंगार एवं वीर रस में विनियोग है- ऐसी तोड़िका (तोड़ी) है ॥२७६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मूर्ति– प्रफुल्लित कमलों की तरह सुंदर नेत्रोंवाली, वन के समीप हरिणों को शालियों के अंकुर खिलाकर प्यार करती हुई, नीलकमलों की माला से युक्त तोड़ी है ॥२७७॥

(कोष्ठकांतर्गत पाठ– हरिणनाभि (कस्तुरिकाकन्द) को हाथ में धारण किये हुए, अरण्य के एक स्थल पर संभाषण करती हुई– इतना विशेष उल्लेख है।)

मालवश्री– यह शरद् ऋतु में गेय है; मालवकैशिक से इसकी उत्पत्ति है; ग्रह, न्यास स्वर षड्ज है। पार्वती को यह अति प्रिय है– ऐसी मालवश्री है ॥२७८॥

आर्षभी–धैवती को छोड़कर जो शुद्ध जातियाँ हैं, वे सब कौशिकी जातियाँ कही जाती हैं। इसका प्रमाण जाति निरूपण के समय दिया गया है।

मूर्तिस्तु–
लीला(नीला)रविन्दस्य दलानि बाला।
विभावयन्ती तनु हेम (देह) यष्टिः।
महूर (मालूर) वृक्षस्य तले निषण्णा।
शोणा मृदुर्मालव श्रीरित्युदिष्टा (मृदुर्मानसिकाप्रदिष्टा))॥२७९॥

नारदसंहितायां तु–
करावधूताम्बुजयुग्मरम्या।
इतस्ततश्चारुविलोकयन्ती।
कण्ठे स्फुरन्मौक्तिक चारुहारा (रत्नहारा)
सा मालसी संकथिता विचित्रा ॥२८०॥
मालवश्रीरियमेव मालसीत्युच्यते।

अथ सैन्धवी–
सैन्धवी पंचमाज्जाता ग्रहांशन्यासपंचमा।
मध्याह्नदूर्ध्वतो गेया शृंगारे करुणेऽपि च ॥२८१॥
सैन्धवी सिन्धुड़ेति प्रसिद्धा।

मूर्ति– क्रीड़ा के लिए लाये हुए कमलों के दलों से खेल करती हुई, कुछ कृश और सुवर्ण वर्ण शरीर यष्टि धारण करनेवाली, महूर (मालूर, महुआ–बिल्व) वृक्ष के नीचे बैठी आरक्तवर्ण, मृदु मालवश्री है ॥२७९॥

नारदसंहिता में है– दो कमल हाथ में लेकर हिलाती हुई, सुंदरता के साथ इधर-उधर देखनेवाली मालवश्री है, जिसके गले में मोतियों का सुंदर हार चमक रहा है ॥२८०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मालवश्री को ही मालसी कहते हैं।

सैन्धवी- यह पंचम से उत्पन्न है। ग्रह, अंश, न्यास स्वर पंचम है। गायन का समय मध्याह्न का उत्तरकाल है। शृंगार और करुण रस में विनियोग है ।।२८१।।

सैन्धवी ही सिन्धुड़ा (सिन्धुरा) नाम से प्रसिद्ध है।

मूर्तिस्तु पंचमसार संहितायाम् (नारदसंहितायाम्)-
सदिन्द्र (महेन्द्र) नीलद्युतिरम्बुजाक्षी।
प्रवादयन्ती कविलास (कपिलास) यन्त्रम्।
रत्नैर्विचित्राभरणा सुकेशी।
सा सिन्धुरा कान्तसमीपसंस्था।।२८२।।
(संगीतसारे- कीलेन्द्रनीलद्युतिरम्बुजाक्षी प्रवाहयन्ती च कलासयन्त्रम्।)

अथ देवकिरी (देवकृति)-
षड्जन्यासग्रहांशेयं वीरे देवकृतिर्मता।
असावृतुषु सर्वेषु गातव्या समयेषु च ।।२८३।।
इयमेव शुद्धवसन्तः इतिकृष्णदत्तः। (गीतप्रकाश)

मूर्तिस्तु-
भ्रमन्ती नन्दने (नर्तने) श्यामा पुष्पप्रचयतत्परा।
ख्याता देवकिरीत्येषा करार्पितसखीकरा ।।२८४।।
(ख्याता देवक्रीतिह्येषा करार्पितसखीकरा)

अथ रामकिरी (रामकृति)-
प्रहराभ्यन्तरे गेया षड्जन्यासग्रहांशका।
षड्जर्षभग्रहा(घना)रंभा तज्ज्ञै रामकृतिर्मता ।।२८५।।

नारद पंचमसार संहिता में मूर्ति- श्रेष्ठ इन्द्रनील मणि की तरह कान्ति धारण करनेवाली, कमल की तरह आँखोंवाली, कविलास (कपिलास) यन्त्र बजानेवाली, रत्न-निर्मित चित्रविचित्र आभूषणों से सुशोभित, सुंदर केशकलाप से सुसज्जित, अपने कान्त (पति) के पास बैठी सिन्धुरा (सिन्धुड़ा) है ।।२८२।।

(कोष्ठकांतर्गत दिये गये संगीतसार के वर्णन में कोई विशेष बात नहीं है।)

देवकिरी (देवकृति)- न्यास, ग्रह, अंश स्वर षड्ज है। वीर रस में विनियोग है। सभी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऋतुओं के सर्वसमय में गेय है ॥२८३॥

गीतप्रकाश के अनुसार कृष्णदत्त ने इसी को शुद्धवसंत कहा है।

मूर्ति– श्यामा, सुंदर नंदनवन में फूल चुनने में मग्न है, सखी के हाथ में हाथ है, ऐसी देवकिरी (देवकृति) प्रसिद्ध है ॥२८४॥

रामकिरी (रामकृति)– न्यास, ग्रह, अंश स्वर षड्ज है, प्रहर के मध्यकाल में गेय है, षड्ज और ऋषभ का घनारंभ है, ऐसी रामकिरी (रामकृति) है ॥२८५॥

मूर्तिस्तु–
स्वर्णप्रभाभास्वर भूषणाढ्या।
नीलं निचोलं वपुषा वहन्ती।
कान्तोपदोपान्तमधिश्रितेपि।
मानोन्नता रामकिरी प्रदिष्टा ॥२८६॥

अथ प्रथममंजरी (पठमंजरी)–
पंचमांशग्रहन्यासा ध रि तारा गमोत्कटा।
शृंगारे चोत्सवे गेया प्रातः प्रथममंजरी ॥२८७॥

मूतिस्तु–
वियोगिनी कान्तवितीर्णपुष्प (विशीर्णपुष्प)।
स्रजं वहन्ती वपुषातिमुग्धा॥
आश्वास्यमाना प्रियया च सख्या।
विधूसरांगी पठमंचिरीयम् ॥२८८॥
(पठमंजरीयमेव प्रथममंजरीत्युच्यते।)

अथ नट्टा–
नट्टा नट्टवदाख्याता सकम्पान्दोलित (सकम्प ललित) स्वरा।
हास्येऽद्भुतेच शृंगारे गातव्या निशिमंगले ॥२८९॥

मूर्ति– सुवर्ण की तरह कान्तिशालिनी, चमकनेवाले आभूषणों से सज्जित, नील उत्तरीय वस्त्र (अथवा कंचुक) धारण किये हुए, पति के समीपप्रदेश में बैठी, मानी स्वभाववाली रामकिरी (रामकृति) है ॥२८६॥

प्रथममंजरी (पठमंजरी) – अंश, ग्रह, न्यास स्वर पंचम है, धैवत-ऋषभ तार हैं,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गांधार-मध्यम उत्कट (बाहुल्य) है, प्रातर्गेय है तथा शृंगार तथा उत्सव में विनियोग है ॥२८७॥

मूर्ति- यह वियोगिनी है, पति द्वारा त्यक्त पुष्पमाला को धारण किये हुए है, सुंदर नवयौवना मुग्धा है, प्रिय सखी जिसे आश्वासन दे रही है, ऐसी मलिनशरीरवाली पठमंजरी है ॥२८८॥

पठमंजरी को ही प्रथममंजरी कहते हैं।

नट्टा-नट्टा नट्ट राग की तरह की तरह है, स्वर कम्पयुक्त और आंदोलित हैं; हास्य, अद्भुत एवं शृंगार रस में विनियोग है तथा रात्रिकाल में मंगल समय में गेय है ॥२८९॥

मूर्तिस्तु निबन्धान्तरे-
विदेशस्थस्य कान्तस्य वृत्तान्तमतिविह्वला।
नट्टा रहित (वहित) वेषाढ्या पृच्छन्ती काकमादरात् ॥२९०॥

अथ वेलावली-
धैवतांशग्रहन्यासा समन्द्रा च समस्वरा।
शृंगारे करुणे चैव गेया वेलावली बुधैः ॥२९१॥

मूर्तिस्तु निबन्धान्तरे-
संकेतदीक्षां दयितस्य दत्त्वा।
वितन्वती भूषणमंगयष्टेः।
मुहुः स्मरन्ती स्मरभिष्टदेवम्।
वेलावली नीलसरोज कान्तिः ॥२९२॥

नारदसंहितायां तु- (ईषद्भेदेनोक्ता वेलावली)
संकेतितोत्फुल्ललतानिकुंजे।
कृतस्थितिः कान्तसमागमाय।
वेलावली चंपकदाममौलिः (चंपकमाल्यमौलिः)।
नानाविचित्राभरणा निरुक्ता॥२९३॥
(बाला विचित्राभरणेन युक्ता)

निबन्धान्तर में मूर्ति का वर्णन इस प्रकार है- वेषभूषादि छोड़कर (ढोकर), अति व्याकुलता के साथ विदेश में रहनेवाले पति का वृत्तांत बड़े आदर से कौए से पूछ रही है; ऐसी है नट्टा॥२९०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वेलावली– अंश, ग्रह, न्यास स्वर धैवत है, मन्द्र स्थान में प्रयुक्त है और समस्वर है। शृंगार और करुण रस में प्रयोज्य है। विद्वानों ने इसे वेलावली कहा है ॥२९१॥

निबन्धातर में मूर्ति– अपने प्रियतम को संकेत देकर अपने शरीर को सुशोभित करती हुई बारबार इष्ट देव –मदन– का स्मरण करती हुई नील कमल की तरह कान्तियुक्त वेलावली है ॥२९२॥

नारद संहिता में वेलावली की मूर्ति का कुछ भिन्न वर्णन है– ऐसी लताओं के, जिन पर फूल खिले हुए हैं, कुंज में पति को संकेत देकर उसके समागम के लिए तैयार बैठी वेलावली चित्र-विचित्र आभरणों से युक्त है, वह मालाएं पहने हुए है और मस्तक पर गुच्छ हिल रहे हैं। (बाला रूप में विचित्र आभरणों से युक्त है।)॥२९३॥

अथ गौड़ी–

ग्रहांशन्यासषड्जा स्याद्गौड़ी मालवकैशिकात्।
वीरशृंगारयोर्गेया सकम्पान्दोलितस्वरा ॥२९४॥

मूर्तिस्तु–

शुचिहरिचन्दनपंकै रतिसहितं मन्मथं पुरःकृत्वा।
गौरतनुर्बहुविधिना गौड़ी परिपूजयन्त्येषा ॥२९५॥

अथ नाटः–

नाटो निशि शुचौ वीरे षड्जांशोगमकोत्कटः ॥२९६॥
शुचौ – शृंगारे।

मूर्तिस्तु–

तुरंगमस्कन्धनिबद्धबाहुः।
स्वर्णप्रभाशोणित शोणगात्रः।
संग्रामभूमौ विचरन् धृतासिः।
नाटोऽयमुक्तः किल काश्यपेन ॥२९७॥

अथ घण्टारवः–

घण्टारवो धैवतजः प्रतापे सर्वदापि च ॥२९८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गौड़ी- ग्रह, अंश, न्यास स्वर षड्ज है; मालवकैशिक से इसकी उत्पत्ति है, वीर और शृंगार रस में विनियोग है तथा कम्पयुक्त और आंदोलित स्वर-प्रयोग है, ऐसी गौड़ी है ॥२९४॥

मूर्ति- धवलवर्ण के हरिचंदन के अंगराग से जिसका शरीर गौरवर्ण है, रतिसहित मदन को आगे रखकर अनेक प्रकार से गौड़ी (गौरी-पार्वती) की पूजा करती हुई गौड़ी है ॥२९५॥

नाट- अंश स्वर षड्ज है, गमक का बाहुल्य है, शृंगार रस की पोषक है और रात्रि में गेय है॥२९६॥

मूर्ति- घोड़े के स्कन्ध पर हाथ रखकर खड़ा है, स्वर्ण प्रभा के आरक्त वर्ण और कुंकुम से जिसके अवयव कान्तिमान हैं और संग्राम (युद्ध) भूमि में तलवार हिलाता हुआ घूम रहा है, काश्यप के अनुसार ऐसा नाट राग है ॥२९७॥

घण्टारव- धैवत जाति से उत्पन्न है, सर्वदा गेय है और पराक्रम, प्रभाव आदि के लिए उपयुक्त है ॥२९८॥

मूर्तिस्तु संगीतरत्नमालायाम्–
प्रसरदिभवराश्वस्कन्धमारूढ चोद्यत्।
कनकरुचिरमध्यं धूनयन् सर्वगात्रम् (शर्वलाग्रम्)
प्रदलित रिपुसैन्यो भीमघण्टारवेण
स्फुरित कनकान्तिर्भाति घण्टारवोऽयम् ॥२९९॥

अथ नट्टनारायणः
धैवतांशग्रहन्यासो नट्टनारायणो दिवा ॥३००॥

मूर्तिस्तु रत्नमालायाम्–
स्त्रीवेशधारी पुरुषो नवीनः।
संगीतशाले (शास्त्रे) भ्रमिमादधानः।
गायन् सतालं सलयं मनोज्ञः।
स्यान्नट्टनारायणराग एषः ॥३०१॥

अथ भूपतिः
मध्यमांश ग्रहन्यासो भूपतिः करुणे दिवा ॥३०२॥

संगीत रत्नमाला में मूर्ति- जो महावेगशाली है, श्रेष्ठ हाथी या घोड़े की पीठ पर चढकर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वर्ण आभूषणों से सज्जित मध्यभाग को और सभी अवयवों को हिलाता हुआ, भयंकर घण्टे की आवाज से शत्रु की सेना का जिसने संहार किया है और जिसके चारों ओर सुवर्ण की कान्ति चमक रही है, ऐसा घण्टारव है ॥२९९॥

नट्ट नारायण- अंश, ग्रह, न्यास स्वर धैवत है और दिन में गाने योग्य है ॥३००॥

रत्नमाला में मूर्ति इस प्रकार है- पुरुष रूप होते हुए भी स्त्रीवेष धारण कर तारुण्य से सुशोभित नट्टनारायण संगीतशाला (संगीतशास्त्र) में भ्रमण कर रहा है और लय-ताल के साथ सुंदर रीति से गा रहा है ॥३०१॥

भूपति- अंश, ग्रह, न्यास स्वर मध्यम है, करुण रस में विनियोग है और दिन में गेय भूपति है ॥३०२॥

मूर्तिस्तु निबन्धान्तरे-
सिंहासनगतश्चारुश्वेतचामरद्वयवीजितः।
मन्त्रिभिर्वेष्टितः श्याम छत्राढ्यो रागभूपतिः ॥३०३॥

अथ शंकराभरणः
वीरे निशि निषादांशः शंकराभरणः सदा ॥३०४॥

मूर्तिस्तु रत्नमालायाम्-
व्याघ्रचर्मशकलं पिदधान (वसनं परिधानो)।
भोगिहारवलयांगदभूषः।
सान्द्रभूति परिलिप्तशरीरः।
शंकराभरण एष उदितः ॥३०५॥
अथ षाडवा उच्यन्ते
तत्र च
षाडवास्तेऽभिधीयन्ते ये रागाः षट्स्वरोत्थिताः ॥३०६॥

के ते इत्याह-
गौड़ कर्णाटगौड़श्च देशी धन्नासिका तथा।
कोलाहला च वल्लारी देशख्या शारीरी तथा ॥३०७॥
संभावती (खंभावती) हर्षपुरी मल्लारी हुंजिका ततः
इत्याद्याः षाडवाः प्रोक्ता (षट्स्वरा रागाः) हरिनायक सम्मता ॥३०८॥
आदिपदेनान्येऽपि श्रीकण्ठाद्या गृह्यन्ते।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निबन्धांतर में मूर्ति- सिंहासन पर बैठा हुआ है, सेवक धवल वर्ण के दो सुंदर चामरों से हवा झल रहे हैं, मन्त्रियों का मण्डल आसपास में विराजमान है, श्यामवर्ण का छत्र धारण किये हुए है, ऐसा राग का राजा यह भूपति है ।।३०३।।

शंकराभरण- अंश स्वर निषाद है, वीर रस में विनियोग है, रात्रि गेय है, ऐसा शंकराभरण है ।।३०४।।

रत्नमाला में मूर्ति इस प्रकार है- व्याघ्रचर्म का वस्त्र धारण किये हुए है, सर्प का हार और सर्प के ही कंकण पहने हुए हैं, अंगद (बाहुभूषण) भी सर्प का ही है, भस्म का मोटा लेप शरीर पर है, ऐसा रूप शंकराभरण का है।।३०५।।

अब षाडव राग कहते हैं-

जो राग छः स्वरों से गठित होते हैं, उन्हें षाडव कहा जाता है ।।३०६।।

वे कौन से हैं- उनके नाम कहते हैं- गौड़, कर्णाटगौड़, देशी, धन्नासिका, कोलाहला, वल्लारी, देशाख्या, शारीरी, संभावती (खंभावती), हर्षपुरी, मल्लारी, हुंजिका, आदि षाडवराग हरिनायक को मान्य हैं ।।३०७-३०८।।

आदि कहने से श्रीकण्ठादि और भी लिये जा सकते हैं।

तदुक्तं संगीतसारे-
श्रीकण्ठश्चैव भोली च तारा सालग (मालव) गौड़काः।
शुद्धाभीरी मधुकिरी छाया नीलोत्पलापि च।।३०९।।
इति षाडव गणने।
फलमाह कोहलः
संग्रामे वीरता रूपलावण्य गुणकीर्तनम्।
गाने षाडव रागाणां गदितं पूर्वसूरिभिः ।।३१०।।

क्रमेण लक्षणमाह-
अथ गौड़ः
निषादांश ग्रहन्यासो गौड़ःस्यात् पंचमोज्झितः।
वीरशृंगारयोर्गेयो दिनान्ते विरलर्षभः ।।३११।।

मूर्तिस्तु निबन्धान्तरे-
विधाय शंभुं सुरनिम्नगातटे।
मुदार्चयन् नीलसरोजसंघैः।
मनोज्ञमूर्तिर्दधदंशुकेशी (दधदंशुकोऽपि)।
त्वगासनस्थो (दुर्गामनःस्थो) द्विज एष गौड़ः ।।३१२।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अथ कर्णाट गौड़:—

निषादांशग्रहन्यासयुक्तः पंचमवर्जितः।
एष कर्णाटगौड़स्तु कर्णाटवदुदाहृतः ।।३१३।।
कर्णाटवदिति कर्णाटोक्तगानकालरसमूर्त्यन्वित इत्यर्थः।
(हेमद्युतिश्चारुविलोचनश्रीः रुद्राक्षमाला जप युक्तपाणिः।
विद्वान् कलाकौशल शुद्धधर्मा कर्णाटगौड़ः किल दिव्यमूर्तिः।)

संगीतसार में कहा गया है – श्रीकण्ठ, तारा, सालग (मालव)गौड़, शुद्ध आभीरी, मधुकिरी (मधुकरी), छाया, नीलोत्पला– ये षाडव राग हैं ।।३०९।।

कोहल ने इनका फल कहा है– शुद्ध में वीरता प्राप्त होती है; रूप, सौंदर्य, गुण की ख्याति आदि फल षाडव रागों के गाने से होते हैं; ऐसा पूर्वाचार्यों का मत है ।।३१०।।

क्रम से उनके लक्षण कहते हैं–

गौड़– अंश, ग्रह, न्यास स्वर निषाद है, पंचम वर्ज्य है, ऋषभ का प्रयोग विरल है, दिन के अंतिम भाग में गेय है और वीर एवं शृंगार में विनियोग है। ऐसा गौड़ है ।।३११।।

निबन्धान्तर में मूर्ति–देहयष्टि सुंदर है, गंगा के तीर पर शिवजी की मूर्ति बनाकर पूजा कर रहा है, पूजा में आनंद से नीलकमल अर्पण कर रहा है, चर्मासन पर बैठा हुआ है, ब्राह्मण जाति का गौड़ है ।।३१२।।

कर्णाट गौड़– अंश, ग्रह, न्यास स्वर निषाद है, पंचम वर्ज्य है, शेष सब रूप कर्णाट की तरह है ।।३१३।।

गायनकाल, रस, मूर्ति आदि कर्णाट की तरह है ।

(सोने के रंग का, सुंदर नेत्र कान्तिवाला, रुद्राक्षमाला हाथ में लेकर जप कर रहा है। कला-कौशल जाननेवाला विद्वान है, शुद्धधर्मवान्, तेजस्वी शरीर युक्त कर्णाट गौड़ है।)

अथ कर्णाटबंगालः

अत्र कर्णाट बंगाल इति गीतप्रकाश संगीतसारयोर्दृश्यः।

तत्स्वरूपं तु–

गान्धारांशग्रहन्यासः षड्जपंचमवर्जितः।
एषः कर्णाटबंगालः शृंगारे टक्कवंशजः (–चैकवंशजः)।

टक्कलक्षणमाह–

नाटकर्णाटयोर्योगे टक्करागो नपुंसके इति।।३१४।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(मूर्तिस्तु बंगालवत्)

अथ देशी–

रेवगुप्तोद्भवा देशी पयुक्ता ग–नि–विस्तरा।
निन्यासांशग्रहा प्रातर्गेया करुणशान्तयो ।।३१५।।
(रेवगुप्तोद्भवा देशी रि ग्रहान्ता ध वर्जिता।
प्रहराभ्यन्तरे गेया शान्ते च करुणे रसे ।)

मूर्तिस्तु रत्नमालायाम्–

गजपतिगति वेली (वेणी) लोचनेन्दीवरांगी।
पृथुलतरनितम्बालम्बिवेणीभुजंगी।
तनुतरतनुवल्ली पीत कौसुम्भवासा (रागा)।
इयमुदयति देशी वालिनी (रागिणी) चारुहासा ।।३१६।।

अथ धन्नासी–

षांश धन्नासिका जाता शुद्धकैशिकमध्यमात्।
षड्ज ग्रह मध्यमान्ता रि-हीना विजये सदा(मता) ।।३१७।।
सदा–सर्वकालेषु गेयेत्यर्थः।
(रसे वीरे च शृंगारे गातव्यो सर्वदा बुधैः।)

कर्णाटबंगाल – गीतप्रकाश, संगीतसार में देखिये।

उसका स्वरूप- अंश, ग्रह, न्यास स्वर गान्धार है, षड्ज, पंचम वर्ज्य है, अक्क वंश में उद्भव है, ऐसा कर्णाट बंगाल है, जिसका शृंगार रस में विनियोग है।

टक्क के लक्षण कहते हैं- नाट और कर्णाट के योग से टक्क राग बनता है। यह नपुंसक है ।।३१४।। मूर्ति बंगाल के समान है।

देशी- रेवगुप्त से उत्पन्न देशी में गान्धार और निषाद का बहुल प्रयोग है; अंश, ग्रह, न्यासस्वर निषाद है, प्रातर्गेय है और करुण एवं शान्त रस में प्रयोज्य है ।।३१५।।

(रेवगुप्त से उद्भूत (अंग) देशी में ग्रह, न्यास स्वर ऋषभ है, धैवत वर्ज्य है, प्रहर के अंदर गाने योग्य है और शान्त एवं करुण रस में प्रयोज्य है।)

रत्नमाला में मूर्ति- उन्मत्त हाथी की तरह गतिवाली, नीलकमल की भाँति नेत्र, बड़े नितम्ब, उन पर सर्पिणी की तरह लम्बायमान वेणी, कृश देहलता, पीले अरुण वर्ण का वस्त्र परिधान किये हुए, लम्बा केशकलाप, मधुर हास्ययुक्त देशी है ।।३१६।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धन्नासी- धन्नासिका (धन्नासी) शुद्ध कैशिकमध्यम से उत्पन्न (अंग) है, अंश, ग्रह स्वर षड्ज है, न्यासस्वर मध्यम है, ऋषभ वर्ज्य है और विजय काल में सर्वदा इसका विनियोग है ॥३१७॥

(वीर और शृंगार रस में गुणीजन सर्वदा इसका विनियोग करते हैं।)

मूर्तिस्तु–
दूर्वादल (धन्नासिका)श्यामतनुर्मनोज्ञा।
कान्तं लिखन्ती फलके विदग्धा।
बाला गल(लस)ल्लोचनवारिविन्दु।
निष्यन्दधौत स्तनहृद्धनासी ॥३१८॥
(प्रस्यन्दधौतस्तनयुग्मनासा।)

अथ कोलाहल–
षड्जन्यासग्रहा कोलाहला टक्क कुलोद्भवा।
मध्यमांश प-हीना च कोलाहल गमोत्कटा ॥३१९॥
(कोलाहला च ककुभा सग्रहांशा प-वर्जिता।
ध-म-मन्द्रा म- विस्तारा कलहे गमकान्विता।)

मूर्तिस्तु–
उन्मत्त पुंस्कोकिल वृन्दरम्य (नादकण्ठः)।
नादात् परं (नादस्वरं) गायति कृष्णगाथाः।
रसी सदा सर्वपुरः प्रवर्ति (वंशीरवा मोदमनः प्रवृत्तः)।
कोलहलोऽयं तरुणोऽसितांगः ॥३२०॥
न च पूर्वमस्य स्त्रीलिंगत्वमिह पुल्लिंगत्वमिति केयं संगतिरिति वाच्यम्। "दृश्यते नैव कुत्रापि रागाणां लिंगनिर्णयः"। इति सर्वग्रन्थकार सम्मतम्। एवमन्यत्रापि द्रष्टव्यम्।

मूर्ति- दूर्वादल के समान श्यामवर्ण, सुंदर, चित्रफलक पर पति का चित्र बनाती हुई, विदुषी, बाला, नेत्र से निकलनेवाले जलबिंदुओं से स्तन और हृदय मानो धोया जा रहा है, ऐसी धन्नासी है । (दोनों स्तन और नाक धोये जा रहे हैं।) ॥३१८॥

कोलाहल (कोलाहला)- न्यास, ग्रह स्वर षड्ज है; कोलाहल की टक्क कुल में उत्पत्ति है। अंश स्वर मध्यम है और पंचम वर्ज्य है। गांधार और मध्यम उत्कट (बाहुल्य) है ॥३१९॥

(कोलाहल और ककुभा का अंश, ग्रह स्वर षड्ज है और पंचम वर्जित है; धैवत-मध्यम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मन्द्र और मध्यम विस्तृत है; कलह में गमकयुक्त है।)

मूर्ति- आनन्द में मत्त पुरुष-कोकिल समूह के सदृश मधुर नाद से कृष्ण-गाथा का गान करती हुई, रसपूर्ण कथा से पूर्णतया पूरित वातावरण सर्वदा सामने है, ऐसी तरुणी, नीलवर्ण कोलाहल है ।।३२०।।

श्लोक में कोलाहल का पुल्लिगी निर्देश है और ऊपर स्त्रीलिंगी, यहाँ संगति क्या है? ऐसी शंका होती है, किन्तु रागों का लिंग-निर्णय कहीं नहीं हैं। स्त्रीलिंग का पुल्लिग में और पुल्लिगी का स्त्रीलिंग में प्रयोग होता है। यह बात सभी ग्रन्थकारों को मान्य है। ऐसा जानना चाहिए कि एक ही राग के लिंगभेद में सर्वत्र यही समाधान है।

अथ वल्लाली (वल्लारी)–
(राग ओ रूप)
हिल्लोलान्वय सम्पन्ना वल्लाली षड्जग्रहांशका।
शृंगाराख्ये च मन्द्रा च रिहीना न्यासषड्जिका ।।३२१।।

(रत्नमाला)
(रवाट्युपांगा वल्लारी सन्यासांशग्रहांकिता।
ऋषभेण परित्यक्ता मन्द्रधैवतभूषिता।
शृंगाराख्ये रसे गेया हरिनायक सम्मता।)
मूर्तिस्तु निबन्धान्तरे– (रत्नमाला)
सख्या प्रबोध्यमानापि कान्ता रोषं न मुंचति।
परावृत्तमुखी (सुखा) श्यामा वल्लारी प्रौढनायिकाः ।।३२२।।

अथ देशाख्या–
गान्धारपंचमा जाता देशाख्यर्षभवर्जिता।
गान्धारांशग्रहन्यासा शान्तशृंगारयोःप्रगे ।।३२३।।
प्रगे – प्रातर्गेयेत्यर्थः।
(रि हीनां श-ग्रहन्यासा तारगान्धारभूषिता।
गान्धारपंचमोद्भूता देशाख्या स्यात् समस्वरा ।

वल्लाली (वल्लारी)– यह हिल्लोल वंश में उद्भूत है, ग्रह, अंश, न्यास स्वर षड्ज है, मन्द्र स्थान में प्रयुक्त है, शृंगार रस में प्रयोज्य है ।।३२१।।

(उपांगराग वल्लारी है; न्यास, अंश, ग्रह स्वर षड्ज है, ऋषम वर्ज्य है, मन्द्र धैवत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भूषित है और शृंगार रस में विनियोग है, ऐसा हरिनायक का मत हैं।)

निबन्धान्तर में मूर्ति– यह प्रौढ़ नायिका है, सखी के समझाने पर भी पति विषयक क्रोध का त्याग नहीं करती, मुख घुमाकर (सुख से परावृत्त होकर) बैठती है, ऐसी वल्लारी है ।।३२२।।

देशाख्या– यह गान्धारपंचमी से उत्पन्न हुई है, इसमें ऋषम वर्ज्य है; अंश, ग्रह, न्यास स्वर गान्धार है, शान्त एवं शृंगार रस में विनियोग है और प्रातः गेय है। ३२३।।

(ऋषम वर्ज्य है; ग्रह, न्यास स्वर षड्ज है, गान्धार तारस्थानीय है, गान्धारपंचम से उत्पन्न है, समस्वर है (सभी स्वरों का समान प्रयोग है), ऐसी देशाख्या है।)

मूर्तिस्तु–
आस्फोटनाविष्कृतरोमहर्षो।
नियुद्धसन्नद्ध (नियुद्धशीलो हि) विशालबाहुः।
प्रांशुप्रचण्डद्युति हेमगौरो।
देशाख्यरागः स हि मल्लराजः (मल्लरागः) ।।३२४।।

अथ शावरी–
शावरी धैवतान्ता च ग-तारा मन्द्रमध्यमा।
स ग्रहांशाल्पषड्जा च प-हीना करुणे मता ।।३२५।।

मुर्तिस्तु कलांकुर निबन्धे–
श्रीखण्डशैलशिखरे शिखिवर्हवासा (कृतसन्निवासा)
मातंगमौक्तिक कृतोत्तमहारयष्टिः।
आकृष्य चन्दनतरोः (किल शावरी सा) शबरीभुजंगम्।
हिं बध्नती वलयमुज्वलनीलकान्तिः ।।३२६।।

अथ खम्बावती–
धैवतांश ग्रहन्यासा सान्दोला मणिमण्डिता।
खम्बावती ग-हीना च शृंगारे निशिगीयते ।।३२७।।

मूर्ति –ऊरु और दण्ड के आस्फोटन (ठोकने) से जिसके शरीर में रोमांच होता है (वीरश्री से), जिसके विशाल बाहु युद्ध के लिए सन्नद्ध हैं, ऊँचा, अतिशय कान्तिमान्, सुवर्ण की तरह गौर (पीतारुण), मल्लों में श्रेष्ठ देशाख्य राग है ।।३२४।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शावरी – ग्रह, अंश स्वर स है, षड्ज अल्प है, धैवत न्यास स्वर है, पंचम वर्ज्य है, ग तारस्थानीय है और मध्यम मन्द्रस्थानीय, और करुण रस में विनियोग है ॥३२५॥

कलांकुर निबन्ध में मूर्ति – मलयाचल के शिखर पर विराजमान, मयूर पिच्छ का वस्त्र पहने हुए, हाथी के मस्तक के मोतियों से जिसका हार बना हुआ है, चंदन के वृक्ष को वह पकड़ कर खड़ी है, उज्ज्वल नीलमणि की कान्ति है, हाथ में कंकण धारण कर रही है (मुंह से आवाज कर रही है।) ॥३२६॥

खम्बावती (खम्मावती) अंश, ग्रह, न्यास स्वर धैवत है, मध्यम-निषाद से मंडित और सा आंदोलित, गान्धार वर्ज्य है, शृंगार रस में विनियोग है और रात्रि में गेय है ॥३२७॥

मूर्तिस्तु तत्रैव–
वासो वसाना शरदभ्रशुभ्रं विरंचिदेवीपरिकर्मदक्षा।
कुन्दावदाता(भा) चतुराननस्य खम्बावती लब्धसमृद्धसेवा ॥३२८॥
खमाचित्रीति पाश्चात्यभाषायाम्।

अथ हर्षपुरी–
जाता हर्षपुरी षड्जमन्द्रा मालवकैशिकात्।
षड्जाद्यन्ता तारमध्या ध-हीना विजये मता ॥३२९॥
(षड्जाद्यंगा धैवतान्ता प-हीना विजये मता।)

मूर्तिस्तु निबन्धान्तरे–
निपत्य तल्पे सुदृढानुरागात्।
कान्तं रतिश्रान्तमवेक्ष्य मुग्धा।
प्रौढांगना पौरुषमाचरन्ती।
मनोहरा हर्षपुरी प्रदिष्टा ॥३३०॥

अथ मल्लारी–
(राग ओ रूप)
पंचमांश ग्रहन्यासा प-हीना मन्द्रमध्यमा।
शृंगारे दुर्दिने गेया मल्लारी परिकीर्तिता ॥३३१॥
अयमेव माधवादिरुच्यते – इति गीतगोविन्द टीकाकारः।

मूर्ति– वही इस प्रकार है– शरद् ऋतु के मेघ की तरह धवल वस्त्र पहनी हुई, ब्रह्मदेव

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की पत्नी (सावित्री) की सेवा करने में मग्न, कुन्द के फूल की तरह सफेद (कुन्द की तरह कान्तिवाली) और ब्रह्माजी की भरपूर सेवा जिसे प्राप्त है, ऐसी खम्बावती है ॥३२८॥

पाश्चात्य भाषा में इसे 'खमाचित्री' और पश्चिम भाषा में 'खमाची' कहते हैं।

हर्षपुरी– यह मालवकैशिक से उत्पन्न है, षड्ज मन्द्रस्थानीय है, ग्रह, न्यास स्वर षड्ज है, तार-मध्य स्थानीय प्रयोग है, धैवत वर्ज्य है, विजय में विनियोग है ॥३२९॥

(ग्रहस्वर षड्ज है, न्यास स्वर धैवत है, पंचम वर्ज्य है और विजय में प्रयोज्य है।)

निबन्धान्तर में मूर्ति– नवतरुणी प्रेमातिशय से शैया पर सोयी हुई है, सुरतक्रीड़ा से परिश्रान्त पति को देखकर प्रौढ स्त्री की तरह पौरुषरत (विपरीत रति) करनेवाली, मन को मोहनेवाली हर्षपुरी है ॥३३०॥

मल्लारी– अंश, ग्रह, न्यास स्वर पंचम है, 'प' वर्ज्य है, मध्यम मन्द्र स्थानीय है, शृंगार रस में, बादलों से ढके हुए दिनों में विनियोग है, ऐसी मल्लारी कही गयी है ॥३३१॥

गीतगोविंद-टीकाकार ने लिखा है कि इसी को 'माधवादि' कहा जाता है।

मूर्तिस्तु–

विस्पष्टकृष्णाजिनमध्यवर्ती।
कान्तः परीतः (पवित्र) स्थविरोऽति गौरः।
कुर्वन् कथां तुम्बरु नारदाभ्याम्।
श्रीमाधवादिः कथितो मुनीन्द्रैः ॥३३२॥
गृह्णन् करे केतकिकुन्तयष्टिम्। इति ग्रन्थान्तरे पाठः।

अथ हुंचिका (लुंचिका, हुंजिका)–

आन्दोलितपसाधातुग्रहामध्यमवर्जिता।
गेया यामद्वया (त्रया) दूर्ध्वं शृंगारे हुंजिका बुधैः ॥३३३॥
(आंदोलित सा मा धान्ताग्रहा पंचमवर्जिता)

मूर्तिस्तु निबन्धान्तरे–

दूर्वादलश्यामरुचि(तनुः)र्विवस्त्रा।
बलाद्विशन्ती (वसन्ती) दयितोरुमध्ये।
कक्षांतरे प्रेरितदक्षहस्त।
धृतस्तनान्ता किल हुंचिका स्यात् (केयम्) ॥३३४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अथ श्रीकण्ठिका-
गेयोत्सवे ग-रहिता धान्ता श्रीकण्ठिका मता (वीरे) ॥३३५॥

मूर्ति- स्पष्ट चमकनेवाले हरिणाजिन के ऊपर बैठा हुआ, वृद्ध, अतिगौरवर्ण, सुंदर; नारद एवं तुम्बुरु जिसके पास है, उनसे संवाद करता हुआ, ऐसा माधवादि (माधव) है, श्रेष्ठ मुनियों का ऐसा कहना है ॥३३२॥

अन्य ग्रंथ में है कि वह हाथ में केतकी पत्र रूपी माला लिये हुए है।

हुंचिका (लुंचिका, हुंजिका)- प, सा आन्दोलित हैं, ध ग्रहस्वर है, मध्यम वर्ज्य है, दो प्रहर के बाद (तीन प्रहर के बाद) गेय है, शृंगार रस में विनियोग है, गुणियों के अनुसार ऐसी हुंजिका है ॥३३३॥ (सा, म आन्दोलित है, ग्रह, न्यास स्वर धैवत है और पंचम वर्ज्य है।)

निबन्धान्तर में मूर्ति- दूर्वा पत्र की नील कान्तिवाली वस्त्ररहित, पति के अंक के मध्य में जबरदस्ती घुसनेवाली, कुक्षि में दक्षिणहस्त डाले हुए है, जिसका स्तनाग्र भाग (पति के द्वारा) पकड़ा हुआ है, ऐसी हुंजिका है ॥३३४॥

श्री कण्ठिका- उत्सव में गाने योग्य श्रीकण्ठिका में गान्धार वर्ज्य है और न्यास स्वर धैवत है (वीर रस में विनियोग है।)॥३३५॥

मूर्तिस्तु निबन्धान्तरे-
कान्तस्य कुन्तलश्रेणीं शोषयन्त्यंजनद्युतिम्।
क्वणत्सुवर्णवलयावलिः श्रीकण्ठिका मता ॥३३६॥

अथ भोली-
(रत्नमाला)
पोज्झितांशग्रहा भोली प्रातर्गेया सुरस्तुतौ ॥३३७॥
(पोज्झिता ग-ग्रहा...)

मूर्तिस्तु निबन्धान्तरे-
निधारा (या) स्फोट नैरंके लालयन्ती सुतं मुहुः।
कुर्वती विविधालाप भोली मौलिमनोहरा ॥३३८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(भाति भौली)
(निशारां (यां) स्वपतेरंके लालयन्तौ सुतं मुहुः।)
अथ तारा
तारा दिवारतौ युद्धे निषादांशा मवर्जिता ।।३३९।।
(रत्नमाला)
(तारा गेया दिवारात्रि युद्धे न्यंशा मवर्जिता)

मूर्तिस्तु निबन्धान्तरे–
अंगहारान् शिक्षयन्ती कुमारान् नृत्यमन्दिरे।
तारा मारांगनाकारा नाट्याटोपविदां वरा ।।३४०।।

(रत्नमाला)
(अहो हावान् शिक्षयन्ती कुमारान् नृत्यमन्दिरे।
तारा मारवलांकुरा नाट्याद्या तड़िदम्बरा।)

निबन्धान्तर में मूर्ति इस प्रकार है – पति के कज्जल की तरह चमकने वाले केशकलाप को सुखाती हुई श्रीकण्ठिका है, जिसके सोने के कंकण मधुर शब्द कर रहे हैं।।३३६।।

भोली– पंचम वर्ज्य है, अंश एवं ग्रह स्वर (षड्ज) हैं, प्रातःकाल देवों की स्तुति में गाने योग्य है। (प वर्ज्य है, गान्धार ग्रह है।) ।।३३७।।

निबन्धान्तर में मूर्ति – गोद में बच्चे को रखकर बारबार हिला-डुलाकर प्यार करती हुई अनेक प्रकार से आलाप करनेवाली मनमोहक भोली है (जिसका मस्तक सुंदर है) ।।३३८।।

(रात्रि में अपने पति के अंक पर बैठ पुत्र का बारबार रंजन करती हुई।)

तारा–तारा (ताला) दिन में सुरत क्रीड़ा में, युद्ध में गायी जाती है, अंश स्वर निषाद है और मध्यम वर्जित है ।।३३९।।

(तारा दिन-रात युद्ध में गेय है, निषाद अंश स्वर और मध्यम वर्ज्य है।)

निबन्धान्तर में मूर्ति – नृत्यमन्दिर में कुमारों को अंगविक्षेप सिखाती हुई रति की तरह सुंदर, नाट्य विस्तार जाननेवालों में श्रेष्ठ तारा है ।।३४०।।

(नृत्यमन्दिर में कुमारों को अंगविक्षेप सिखानेवाली तारा मदन की सेना की तरह, नाट्य आरंभ में विद्युत् की तरह है।)

अथ सालगगौड़ः (मालवगौड़ः)–
मांशः प-हीनो वीरे च रतौ सालग (मालव) गौड़कः ।।३४१।।
(मांशग्रहः प-हीनोऽसौ वीरे मालवगौड़कः।)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मूर्तिस्तु–
वीणाविनोदप्रतिपन्नपाणि–
र्गृह्णन् कथां नारदसंप्रयोगात् ।।
श्यामो युवा विप्रकुलप्रसूतः।
स सालगो (मालवो) नाट्यमुनि प्रगीतः ।।३४२।।

अथ आभीरी–
धान्ताभीरी धैवतजा रि-हीना च शुचौ प्रगे ।।३४३।।
(धांशाभीरी धैवतजा रि-हीना च शुचौ प्रगे।)

मुर्तिस्तु कलांकुरोक्ताः–
वाचालकंकणविभूषितबाहुवल्लीः।
उन्निद्र चम्पकमनोहर गात्रयष्टिः।
श्रीखण्ड शैलशिखरे गजमौक्तिकानाम् (मौक्तिके द्वे)।
आभीरिका विदधती स्रजमिन्दुशुभ्राम्।।३४४।।

निबन्धान्तरे त्वन्यथा दृश्यते–
(राग ओ रूप)
दधिमन्थनशिंजानमेखलांगद (नद्ध) कंकणा।
स्वेदार्द्र (म्बु) वदनाम्भोजाभीरी गोपालवल्लभा ।।३४५।।

सालगगौड़ (मालवगौड़)– अंश स्वर मध्यम है, पंचम वर्ज्य है, वीर रस में विनियोग है और रति का पोषक है ।।३४१।।

(मध्यम अंश एवं ग्रह स्वर है, पंचम वर्ज्य है, वीर रस में विनियोग है।)

मूर्ति– नारद के संप्रदाय, प्रयोग या उपदेश के अनुसार हाथ में वीणा लेकर विनोद से कथा कहता हुआ, श्याम वर्ण, तरुण, ब्राह्मण कुलोत्पन्न सालग (मालव) है, ऐसा वर्णन नाट्याचार्यों ने किया है ।।३४२।।

आभीरी– धैवती जाति से उत्पन्न है, न्यास स्वर धैवत है, ऋषभ वर्ज्य है, शृंगार रस में विनियोग है और प्रातर्गेय है ।।३४३।। (धैवत अंश स्वर है।)

मूर्ति– कलांकुर में वर्णन इस प्रकार है– आवाज करनेवाले कंकणों से बाहुलता भूषित है, फूले हुए चम्पक वृक्ष की तरह आकर्षक देहलता है, मलय पर्वत के ऊपर हाथी के मोतियों का हार गूंथनेवाली आभीरिका चन्द्रमा की तरह धवल है ।।३४४।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निबन्धान्तर में दूसरे प्रकार से वर्णन है – आभीरी गोपाल की स्त्री है, दधि मथते समय कमर की मेखला और बाहुभूषण, कंकण आवाज कर रहे हैं। पसीने के बिन्दुओं से मुखमण्डल भर गया है, ऐसी आभीरी है ।।३४५।।

अथ मधुकरी–

धांशग्रहा मधुकरी ग-हीना करुणार्द्रके (कलनादिका)।।३४६।।

मूर्तिस्तु–

आताम्रनेत्रा चम्पक गौरीकृतरतारम्भा।
मुखमधुलुब्धान् भ्रमरान् मधुकरी करोत्येषा ।।३४७।।

राग ओ रूप

(पुष्पाढ्या मौलिनेत्रा चम्पक गौरी करतलरम्या।)

अथच्छाया–

षड्जग्रह म-रहिता छायाशृंगारवीरयोः ।।३४८।।

मूर्तिस्तु निबन्धान्तरे–

सूर्यप्रिया सूर्यमयूखदूना।
आह्लादयन्ती पथिकान् स्वकान्त्या।
करे दधानारुणपद्ममालाम्।
छायाप्रदिष्टेयमनंगरूपा ।।३४९।।

(राग ओ रूप)

सूर्यप्रिया सूर्यमणि विभ्राणा मुक्तमूर्धजा।
नीलोत्पलदलश्यामा भीषणा च दिगम्बरी।

अथ नीलोत्पला–

नीलोत्पला धैवतजा ग-हीना बीभत्सरौद्रेषु सदैव गेया ।।३५०।।

मूर्तिस्तु निबन्धान्तरे –

कृपाणखर्परे पाण्योर्बिभ्राणा मुक्तमूर्धजा ।।
नीलोत्पला घनश्यामाभा धनाढ्या दिगम्बरा ।।३५१।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मधुकरी- अंश, ग्रहस्वर धैवत है, गान्धार वर्ज्य है, करुणरस में विनियोग है ।।३४६।।

मूर्ति - नेत्र आरक्त वर्ण है, चम्पक की तरह गौर शरीर है, सुरत क्रीड़ा को जिसने आरंभ किया है, उसके मुख की सुगंध से (मधु पर) आकृष्ट होनेवाले भँवरों को आकृष्ट करने (मोहित करने) वाली मधुकरी है ।।३४७।। (फूलों से सुसज्जित है, मस्तक-नेत्र शोभायमान है, चम्पक वर्ण की, सुंदर करतल से शोभित है।)

छाया- ग्रहस्वर षड्ज है; मध्यम वर्ज्य है; शृंगार-वीर रस में विनियोग है - ऐसी छाया है ।।३४८।।

निबन्धान्तर में मूर्ति - यह सूर्यपत्नी है, सूर्य किरणों से क्लान्त है, अपनी कान्ति से प्रवासियों को आनंद देनेवाली है, लाल कमलों की माला हाथ में लिये हुए है, मदनरूप छाया है ।।३४९।।

(सूर्य की प्रिय पत्नी, सूर्यकान्तमणि धारण करनेवाली, केशकलाप जिसका खुला है, नीलकमल की तरह कान्तिवाली, भयंकर रूप धारण किये हुए है और दिगम्बरी (नग्न) छाया है।)

नीलोत्पला- धैवती जाति से उत्पन्न नीलोत्पला में गान्धार वर्ज्य है, बीभत्स, रौद्र में विनियोग है। यह सदैव गेय है।।३५०।।

निबन्धान्तर में मूर्ति- हाथ में खड्ग और मिट्टी का पात्र धारण किये हुए है, केशकलाप खुला हुआ है, मेघ की तरह श्यामवर्ण है, नीलकमल धारण किये हुए है, धनाढ्या और दिगम्बरी (नग्न) नीलोत्पला है ।।३५१।।

अथ औड़वाः

ते ख्याता औड़वा ये हि जायन्ते पंचभिः स्वरैः ।।३५२।।

के ते इत्याह-

(राग ओ रूप)

मध्यमादिश्च मल्लारो देशपाली (देशकारी) च मालवः।
हिन्दोलो भैरवी नागध्वनिर्गोण्डकृतिस्तथा ।।३५३।।
ललिता च ततश्छायातोड़ी वेलावली तथा।
प्रतापपूर्विका प्रोक्ता द्वितीया सैन्धवी तथा ।।३५४।।
इत्याद्या औड़वा रागा गेया जनमनोहराः।
आदिपदेन तुरुष्कगौड़ादयोऽपि गृह्यन्ते।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तदुक्तं संगीतसारे औड़वगणने–
तुरुष्क गौड़गान्धाराः पुलिन्दो मेघरंजकः ।।३५५।।

फलमाह कोहलः
व्याधिनाशे शत्रुनाशे भयशोकविनाशने।
औड़वास्तु प्रगातव्या ग्रहशान्त्यर्थकर्मणि ।।३५६।।
क्रमेणैशां लक्षणमाह

अब औड़व रागों का वर्णन करते हैं।

पाँच स्वरों से जो राग उत्पन्न, गठित होते हैं, वे औड़व राग कहे जाते हैं ।।३५२।।

वे कौन-से हैं, उनके नाम बताते हैं– मध्यमादि, मल्लार, देशपाली (देशकारी), मालव, हिन्दोल, भैरवी, नागध्वनि, गोण्डकृति, ललिता, छायातोड़ी, वेलावली, प्रतापपूर्विका (प्रतापवेलावली), द्वितीया सैन्धवी आदि औड़व राग लोगों का मन हरण करनेवाले हैं अतः गेय हैं।। ३५३-३५४।।

इत्यादि कहने से तुरुष्कगौड़ इत्यादि भी इसमें समाविष्ट हैं।

संगीतसार में औड़व-गणना के अंतर्गत हैं– तुरुष्क गौड़, गान्धार, पुलिन्द, मेघरंजी इत्यादि ।।३५५।।

कोहल ने इनका फल कहा है– व्याधिनाश, शत्रुनाश, भयशोक-विनाश, ग्रहशान्ति इत्यादि के उद्देश्य से औड़व राग गाने चाहिए ।।३५६।।

अब क्रमसे इनके लक्षण कहते हैं।

अथ मध्यमादि–
मध्यमादिर्मग्रहान्ते मध्यमग्रामगोचरः।
अथं सायं तु गातव्यः शृंगारे रि ध वर्जितः ।।३५७।।

मूर्तिस्तु चन्द्रिकायाम्–
अतितरुणवयाः श्रीः कुन्दकर्पूरकान्तिः।
युवति भजनदक्षः क्रौंचचाटूक्तिभासः।
अरुणजलजनेत्रः स्कन्धसंन्यस्तवीणः।
स्मितमधुरवचस्को राजते मध्यमादिः ।।३५८।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अथ मल्लारः
धांशन्यास पंचमजो मल्लार सप वर्जितः।
सदा वर्षास्विष्टरसे गमन्द्रस्तारसप्तमः ।।३५९।।

(राग ओ रूप)
(मल्लारः सपहीनोऽयं संजातः पंचमान्वये।
धैवतांशग्रहन्यासो गमन्द्रस्तारसप्तमः।
शृंगारे च रसे गेयः पयोदागमने बुधैः।)

मूर्तिस्तु–
शंखावदातं पतितं दधानः (शंखावतंशं श्रवणे दधानः)।
प्रलम्बकर्णः कुमुदेन्दुवर्णः।
कौपीनवासः शुचिहारधारी।
मल्लारराग: कथितस्तपस्वी ।।३६०।।

मध्यमादि – मध्यमग्राम से उत्पन्न मध्यमादि का ग्रह, न्यास स्वर मध्यम है, ऋषभ-धैवत वर्ज्य है। शृंगार रस में विनियोग है और सायंकाल में गेय है। ।।३५७।।

चन्द्रिका में मूर्ति का वर्णन इस प्रकार है– अतिशय तरुण वय, शोभायुक्त, कुन्द के फूल और कर्पूर की तरह धवल वर्ण, स्त्रियों की सेवा में दक्ष, क्रौंच पक्षी की तरह प्रेम से मधुर गप्पें हाँकने में निपुण, रक्तकमल की तरह नेत्रवाला, स्कन्ध पर वीणा धारण किये हुए, हास्ययुक्त मधुर वचन बोलनेवाला मध्यमादि है ।।३५८।।

मल्लार– अंश, न्यास स्वर धैवत है, पंचम ग्रामराग से उत्पन्न, षड्ज - पंचम वर्ज्य है, गान्धार मन्द्र और सप्तम (नि) तारस्थानीय है। वर्षाऋतु में सर्वकाल गेय है, किसी भी रस में विनियोग है ।।३५९।।

(स, प वर्ज्य; पंचम ग्रामराग में उत्पन्न; अंश, ग्रह न्यास स्वर धैवत; ग मन्द्रस्थानीय और नि तार स्थानीय है; शृंगार रस में विनियोग है और वर्षा ऋतु में गेय है।)

मूर्ति– शंख की तरह सफेद आभायुक्त पलित (वार्धक्य से बालों का सफेद होना) जिसने धारण किया है, जिसके कर्ण लम्बे हैं, रात्रि विकासी सफेद कमल और चन्द्र की तरह धवल वर्ण का कोपीन धारण किये हुए है, सफेद हार पहने हुए है, ऐसा तपस्वी मल्लार राग है ।।३६०।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नारदसंहितायां त्वन्यथा दृश्यते–
विहारशीलोऽप्यतिनीलदेहो।
गभीरवाक्यः प्रियकामिनीयुतः (परमविदग्धः)
कामातुरः पिंगलनेत्रयुग्मो।
मल्लार रागोऽखिलमोहनश्च ।।३६१।।

(राग ओ रूप)
(विहारशीलोऽति सुकान्त देहः कान्ताप्रियो धार्मिकशीलयुक्तः।
कामातुरः पिंगलनेत्रयुग्मो मल्लारराग: प्रियकृत् सुवेशः (कुसुमप्रियश्च, कुशलंकरोतु।)

अथ देशपालः (देशपाली, देशकारी)
न्यंशन्यासग्रहो देशपालः सान्दोलषड्जकः।
वीरशृंगारयोः सायं टक्कवंशो रिपोज्झितः ।।३६२।।

अयमेव देशकारीत्युच्यते–
(राग ओ रूप)
(टक्कान्वयसमुद्भूतो देशपाली रिपोज्झितः।
सान्दोलषड्जकलितः निन्यास ग्रहांशकः।
रसे वीरे च शृंगारे गेया सायमिदं (यम्) बुधैः।)

मूर्तिस्तु नारदसंहितायाम्–
सार्धं सखीभिर्विजनेवसन्ती विचित्र वक्षोजयुगक्षतानि (नखक्षतांगी)।
निरीक्षमाणामणिदर्पणेषुसा देशकारी कथिता गुणज्ञैः।।३६३।।

नारदसंहिता में अन्य ढंग से वर्णन है– अति नील वर्ण का शरीर धारण कर, प्रिय कामिनीं के साथ विहार करता हुआ, गंभीर वचन बोलनेवाला, काम से पीड़ित, पिंगट वर्ण के दोनों नेत्र हैं, ऐसा मल्लार राग सबको मोहनेवाला है ।।३६१।।

(कोष्ठकांतर्गत पाठ में– 'सुंदर शरीरवाला, धार्मिक आचरण युक्त, सुंदर वेष से सुशोभित, प्रिय करनेवाला' – इतना अधिक है।)

देशपाल (देशपाली, देशकारी,)देशपाल– टक्क वंश में उत्पन्न; अंश, ग्रह, न्यास स्वर निषाद; षड्ज आन्दोलित, ऋषभ-पंचम वर्ज्य; वीर, शृंगार में विनियोग और सायंगेय है ।।३६२।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(कोष्ठकान्तर्गत पाठ का अर्थ भी वही है।)

नारदसंहिता में मूर्ति- सखियों के साथ एकान्त में रहनेवाली, रत्नों के दर्पण में (काँच में) अपने स्तनों पर उठे चित्र-विचित्र नखक्षतों को देखती हुई देशकारी है, ऐसा गुणज्ञों ने कहा है ॥३६३॥

"अयमेव केदार उच्यते" इति गीतप्रकाशकारः। तथा
सत्यमपि (अथामुष्य) मूर्ति भिन्ना।
तदुक्तं चन्द्रिकायाम्—

मूर्तिस्तु—
(राग ओ रूप)
चिरप्रवासी जलदावलोको (जलदावलोकात्)
विचिन्तयन् नीलसरोरुहाक्षीम्।
कामी युवा गीतकलाभिलाषी।
केदाररागस्तरुणारुणाभः ॥३६४॥

अथ मालवः (माल्लवः)—
रि प हीनष्टक्कवंश्यो ग भूरिः स ध कम्पितः।
नि न्यासांशग्रहः सायं निशि वा मालव शुचौ ॥३६५॥

(राग ओ रूप)
(टक्कान्वयसमुत्पन्नो मालवोऽपि रिपोज्झितः।
निषादांशग्रहन्यासो ग-भूरिः स ध कम्पितः।
वीरशृंगारयोर्गेयो दिनान्ते निशि वा बुधैः।)

मूर्तिस्तु—
नितम्बिनी चुम्बितवक्त्रपद्मः।
शुकद्युतिः कुण्डलवान् प्रमत्तः।
संगीतशालां प्रविशन् प्रदोषे।
मालाधरो मालवराग राजः ॥३६६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गीत प्रकाशकार ने कहा है कि इसी को केदार कहते हैं, फिर भी इसकी मूर्ति भिन्न प्रकार की है

चन्द्रिका में कहा गया है- चिरकाल का प्रवासी, मेघों की तरह देखता हुआ, नीलकमल जैसी आँखोंवाला, अपनी स्त्री के बारे में सोचता हुआ, गीतकला की इच्छा करनेवाला, कामुक, तरुण, अरुणकान्तिशाली केदार राग कहा गया है ।।३६४।।

मालव (माल्लव)- यह टक्क वंश से उत्पन्न है, ऋषभ एवं पंचम वर्ज्य है, गान्धार का विपुल प्रयोग है, षड्ज-धैवत कम्पित है, अंश, ग्रह, न्यास स्वर निषाद है, (कोष्ठकान्तर्गत पाठ में ऋषभ-पंचम वर्ज्य है, यह ठीक है), दिन के अंत में या रात्रि में गेय है। (वीर एवं शृंगार रस में विनियोग है।) ।।३६५।।

मूर्ति- नितम्बवती स्त्री के द्वारा जिसके मुखकमल का चुम्बन लिया गया है, तोते की तरह हरित वर्ण है, कानों में कुण्डल है, आनंद में मग्न है, रात्रि के आरंभ में संगीतशाला में प्रवेश कर रहा है, कण्ठ में मालाएं हैं, ऐसा मालवराग श्रेष्ठ है ।।३६६।।

अथ हिल्लोलः (हिन्दोलः)–
षड्जन्यासग्रहांशोऽयं हिन्दोलो रि प वर्जितः।
अधैवत्यार्षभीजातो वीरशृंगारयोः सदा ।।३६७।।
धैवतीमार्षभीं विना अन्यजात्युत्पन्नोत्यर्थः। सदा सर्वेषुकालेषु।

मूर्तिस्तु–
नितम्बिनी मन्दतरंगितासु।
दोलासु खेलासुखमादधानः।
खर्वः कपोतद्युति कुर्वर (कर्पूर) ('कर्बुर' इति युक्तम्) श्रीः।
हिल्लोलरागः कथितो मुनीन्द्रैः ।।३६८।।

नारदसंहितायां तु–
लीलाविलासेन् (ह्रासाभिलाषेण) पतन् पृथिव्याम्।
उत्थापितस्तत् प्रियकामिनीभिः (क्षणमालिवृन्दैः)।
उल्लासयन् गीतरसैर्विदग्धः (विदग्धान्)।
हिल्लोल (हिन्दोल) रागः कथितो रसज्ञैः ।।३६९।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अथ भैरव–
भिन्नषड्ज समुत्पन्नो भैरवोऽपि रिपोज्झितः।
स(ध) ग्रहांशो मध्यमान्तो गेयो मंगलकर्मणि ।।३७०।।
इयमेव भैरवी।

हिल्लोल (हिन्दोल)– अंश, ग्रह, न्यास स्वर षड्ज है, ऋषभ-पंचम वर्ज्य है, धैवती और आर्षभी जाति छोड़कर अन्य जाति से उत्पन्न है, वीर, शृंगार रस में विनियोग है और सर्वदा गेय है ।।३६७।।

मूर्ति– वामनमूर्ति, कबूतर के कर्ण की तरह चित्र-विचित्र वर्ण का, नितम्बशालिनी सुंदर स्त्री से मन्द आंदोलित झूले पर क्रीड़ाओं का आनंद लूटता हुआ हिल्लोल (हिन्दोल) राग है, ऐसा श्रेष्ठ मुनियों ने कहा है ।।३६८।।

नारदसंहिता में है– अनेक लीला विलास करते हुए, धरती पर गिरते समय प्यारी कामुक स्त्रियों ने जिसे उठा लिया है, गायन के रस से विद्वानों को आनंद में मग्न करनेवाला हिल्लोल राग है, ऐसा वर्णन रसज्ञों ने किया है ।।३६९।।

भैरव– भिन्नषड्ज से यह राग उत्पन्न हुआ है, ऋषम-पंचम वर्जित है, ग्रह, अंश स्वर स (ध) है, मध्यम न्यास स्वर है, मंगल कार्य में गाया जाता है ।।३७०।।

यही भैरवी है।

तदुक्तं दामोदरे
भैरवी कैशिकी चैव भैरवस्यैव वल्लभे ।इति।

मूर्तिस्तु–
सरोवरस्थस्फटिकस्य मण्डपे।
सरोरुहैः शंकरमर्चयन्ती।
तालप्रयोगप्रतिबद्ध गीति–
गौरीकृशांगी (तनुर्नारद) किल भैरवीयम् ।।३७१।।

अथ नागध्वनिः–
टक्कान्वयोद्भवो नागध्वनी रि-ध विवर्जितः।
षड्जन्यासग्रहांशोऽयं गेयो वीररसे दिवा ।।३७२।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मूर्तिस्तु निबन्धान्तरे–
नागध्वनिः समारूढगजो हिंगुलसन्निभिः ।
सितवासाः कुन्तकरो युवा राजकुलोद्भवः ।।३७३।।

अथ गोण्डकिरिः (गोण्डकिरी, गौण्डकिरी)–
षड्जन्यासग्रहांशेयं गोण्डकिरी परिष्कृता।
रि-ध-हीना दिनान्ते च गातव्याष्टरसे बुधैः ।।३७४।।

मूर्तिस्तु–
(राग ओ रूप)
रत्युत्सुका कान्तपथप्रतीक्षा मापादयन्ती मृदुपुष्पतल्पे।
इतस्ततः प्रेरितदृष्टिरार्ता श्यामांगिका गोण्डकिरी प्रदिष्टा ।।३७५।।

दामोदर में कहा गया है– भैरवी और कैशिकी भैरव की ही प्रियाएं हैं।

मूर्ति– सरोवर के मध्यभाग में, स्फटिक मणि के मण्डप में कमलों से शिवजी की पूजा करती हुई, ताल-प्रयोग के अनुसार गीतियाँ गाती हुई, गौर वर्ण, कृश शरीर भैरवी है ।।३७१।।

नागध्वनि– टक्कवंश में उत्पन्न है, ऋषम–धैवत वर्ज्य है, अंश, ग्रह, न्यास स्वर षड्ज है, वीर रस में विनियोग है और दिन में गेय है ।।३७२।।

निबधान्तर में मूर्ति– हाथी पर बैठा हुआ, आरक्त वर्ण, (हिंगुल वर्ण का) सफेद वस्त्र परिधान किया हुआ, राजकुलोत्पन्न, हाथ में कुन्त धारण किया हुआ तरुण नागध्वनि है ।।३७३।।

गोण्डकिरी– अंश, ग्रह, न्यास स्वर षड्ज हैं, अलंकारों से सुसंस्कृत है, ऋषम-धैवत वर्ज्य है, आठों रसों में विनियोग है और दिनान्त में गेय है, गोण्डकिरी का ऐसा वर्णन विद्वानों ने किया है ।।३७४।।

मूर्ति– रति के लिए उत्कण्ठित, पति की राह देखनेवाली कोमल फूलों की शैया पर इधर-उधर दृष्टि दौड़ानेवाली, श्यामवर्ण शरीर धारण करनेवाली गोण्डकिरी कही गयी है ।।३७५।।

अथ ललिता–
टक्कान्वयसमुद्भूता ललिता ललितस्वरा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

षड्जन्यासग्रहांशा च समन्द्रा रि-प वर्जिता।
शृंगारवीरयोर्गेया निशान्ते च दिनान्तके।।३७६।।

मूर्तिस्तु –
प्रफुल्लसप्रच्छदमान(माल्य)भावी।
युवातिगौरोऽलसलोचन श्री।
विनि:सृतो वासगृहात् प्रभाते।
विलासवेषो ललितः प्रदिष्टः ।।३७७।।

(राग ओ रूप)
(प्रफुल्लगण्डस्थलमाल्यभारा स्निग्धातिगौरालसलोचनश्रीः ।
विनि:सृता वासगृहाद्विलासिवेषं वसाना ललिता प्रदिष्टा।।)

अथ छायातोड़ी –
छायातोड़ी रि-प त्यक्ता संजाता (सम्भूता) षाडवान्वये।।
मृदुकम्पस्वरा मांशग्रहा (ग्रहन्यासा) ज्ञेया दिवातनी ।।३७८।।

मूर्तिस्तु –
तोड़ीतुल्या पूर्णरागमध्ये उक्ता।।

ललिता – टक्कवंश में उत्पन्न, मधुर कोमल (ललित) स्वरवाली, अंश-ग्रह-न्यास स्वर षड्ज, षड्ज मन्द्रस्थानीय है, ऋषभ-पंचम वर्ज्य है, शृंगार, वीर रस में विनियोग है, दिन के अन्त में और रात्रि के अन्त में गेय ललिता है।।३७६।।

मूर्ति – प्रफुल्लित फूलों की माला और उत्तरीय वस्त्र धारण करनेवाला अथवा प्रफुल्लित फूलों की शैया पर विराजमान, तरूण, अति गौरवर्ण, आँखों की ज्योति में आलस्य की छटा विराज रही है, विलासपूर्ण वेष धारण कर प्रभातकाल में अपने घर से बाहर निकला है, ऐसा ललित कहा गया है ।।३७७।।

(गण्डस्थल गाल फुले हुए है, मालाओं का भार कण्ठ में है, स्नेहमयी है, गौरवर्णशालिनी है, आँखों में मान्द्य है, प्रभातकाल में घर से निकली है, ऐसी विलासपूर्ण वेष धारण करनेवाली ललिता है)

छाया तोड़ी – षाडव ग्रामराग से उत्पन्न है, ऋषभ पंचम वर्ज्य है, अंश, ग्रह स्वर मध्यम (अंश, ग्रह, न्यास स्वर मध्यम) है, मृदु कम्प युक्त स्वरों का प्रयोग है और दिवागेय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है छायातोड़ी ॥३७८॥

मूर्ति – तोड़ी के समान है, जिसका वर्णन संपूर्ण रागों में है।

अथ प्रतापवेलावल्ली –

(राग ओ रूप)

ककुभस्य(ककुभायाः) कुले जाता प्रतापोपदा (प्रतापोल्बणजा) दिवा।

गेया वेलावली तज्ज्ञैर्धग्रहान्ता रिपोज्झिता॥३७९॥

मूर्तिस्तु वेलावलीतुल्या।

अथ सैन्धवी –

षड्जन्यासग्रहांशान्या सैन्धवी नि ग वर्जिता।

मृदुकल्पस्वरा (कम्पस्वरा) ज्ञेया (गेया) जाता मालवकौशिकात् ॥३८०॥

अथ द्वितीय सैन्धवी –

द्वितीय सैन्धवी भिन्नषड्जांदोलित सुस्वरा

(द्वितीय सैन्धवी भिन्ना सकम्पललित स्वरा।)

धैवतांशग्रहन्यासा शृंगारे रि-प वर्जिता ॥३८१॥

मूर्तिस्तु–

पूर्ण सैन्धवीवत्

प्रतापवेलावली – ककुभा के कुल में उत्पन्न, प्रतापशालिनी (प्रतापशब्द जिसके पूर्व में है),

दिन में गेय; ग्रह, न्यास स्वर धैवत है और ऋषभ-पंचम वर्ज्य है॥३७९॥

मूर्ति वेलावली के समान है।

सैन्धवी – अंश, ग्रह, न्यास स्वर षड्ज, निषाद–गान्धार वर्ज्य है, कोमल एवं कम्पस्वर युक्त है और मालवकौशिक से उत्पन्न है ॥३८०॥

द्वितीय सैन्धवी– यह भिन्न षड्जा है, आन्दोलित और मधुर स्वरवाली (कम्पित स्वरवाली) है, अंश, ग्रह, न्यास स्वर धैवत है, ऋषभ-पंचम वर्ज्य है, शृंगार में विनियोग है ॥३८१॥

मूर्ति– पूर्ण सैन्धवी की तरह।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अथ तुरुष्कगौड़:
वीरे च रौद्रे च तुरुष्क गौड़ो।
निषादजांशो रि-प वर्जितश्च ।।३८२।।

मूर्तिस्तु निबन्धान्तरे–
तुरुष्कगौड़ो आरूढ हय: पक्वेष्टका रुचि:।
शरचापधरश्चण्ड उष्णीवकवचावृत: ।।३८३।।

(राग ओ रूप)
(तुरुष्कगौड़ आरुह्य ह्यपृष्ठेऽरुणद्युति:।
शंखघण्टोपनीतश्च सोष्णीष: कवचावृत:।)

अथ गांधार:
गान्धारको मध्यमजश्च मान्त:।
स पोज्झित: स्यात् करुणे सदैव ।।३८४।।

मूर्तिस्तु–
जटां दधान: कृतभूरिभूष: काषायवासास्तनुदेहयष्टि:।
सयोगपट्ट: कृतनेत्र मुद्रो गान्धारराग: कथितस्तपस्वी ।।३८५।।

तुरुष्कगौड़– अंश, ग्रह स्वर निषाद है, ऋषभ-पंचम वर्ज्य है, वीर एवं रौद्र रस में विनियोग है ।।३८२।।

निबन्धान्तर में मूर्ति इस प्रकार है– तुरुष्क गौड़ अश्वारूढ है; पकी हुई ईंट की तरह रंग है; हाथ में धनुष-बाण है, मस्तक पर पगड़ी है; शरीर पर कवच धारण किये हुए है; क्रोधयुक्त (क्रोधी स्वभाव का) है ।।३८३।।

(कोष्ठकान्तर्गत पाठ में इतना विशेष है कि शंख-घंटा भी साथ में है।)

गान्धार– गान्धार मध्यमज है, न्यास स्वर मध्यम है, षड्ज-पंचम वर्जित है; करुण रस में प्रयोज्य है और सदा गेय है ।।३८४।।

मूर्ति– कृश शरीर यष्टि है, गेरुए रंग का वस्त्र परिधान किया हुआ है, कई प्रकार के आभूषण और विविध वेषभूषा से युक्त है, जटा धारण किया हुआ है, योगपट्ट धारण किये हुए है, नेत्र मूंदे हुए हैं, ऐसे तपस्वी वेष में गान्धार राग है ।।३८५।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अथ पुलिन्दी–
गपोज्झिता षड्जभवा सदा स्यात्।
पुलिन्दिकाभीष्टरसेषु धांशा ।।३८६।।

मूर्तिस्तु निबन्धान्तरे–
गुंजा (मुक्ता) पुंजल सद्भूषा पल्लवैः सत्कृताम्बरा।
कण्डोल वीणां दधती पुलिन्दीन्दीवरद्युतिः ।।३८७।।

अथ मेघरंजी (मेघरंगी)–
धपोज्झिता षड्जभवा च गान्ता।
दिवा च वीरे किल मेघरंजी (मेघरंगी) ।।३८८।।

मूर्तिस्तु–
श्रुतौ दधानानवकर्णिकारम्।
आरामगा केशरपुष्पकांची।
अध्यापयन्ती स्वकरस्थसारीम् (सारिकाम्)।
श्रीरामरामेति च मेघरंजी (मेघरंगी) ।।३८९।।
इत्यौड़वाः।

अथ संकीर्णाः (भक्तिरत्नाकर सहाय्येन लिखितम्)–
तत्र हरिनायकः
एषामन्योन्यसंसर्गाद्रागाणां बहुशो भिदाः।
तत्र केचित्तु संकीर्णाः कथ्यन्ते श्रुतिशोभनाः ।।३९०।।

पुलिन्दी- गान्धार–पंचम वर्जित है, षड्ज (भिन्न षड्ज) से उत्पत्ति है, अंश स्वर धैवत है, सर्वकाल गेय है और अभीष्ट रस में विनियोग है ।।३८६।।

निबन्धान्तर में मूर्ति- गुंजाओं (मुक्ताओं) से बनाये हुए आभूषण धारण करनेवाली, पल्लवों से वस्त्र का काम करनेवाली, हाथ में बाँस का करण्डक धारण करनेवाली, नीलकमल की तरह कान्तिवाली पुलिन्दी है ।।३८७।।

मेघरंजी (मेघरंगी)– धैवत-पंचम वर्ज्य है, षड्ज से उत्पन्न, न्यास स्वर गान्धार है, वीर रस में विनियोग है और दिन में गाने योग्य है ।।३८८।।

मूर्ति– कान में नवीन कर्णिकार (कन्हेर, पारिंगा) का पुष्प धारण किये हुए है, केशरी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वर्ण के फूलों से बनायी हुई मेखला धारण करनेवाली, बगीचे में बैठकर हाथ में ली हुई सारिका को "राम-राम" शब्द पढाने वाली मेघरंजी है।।३८९।।

यहाँ औड़व रागसमाप्त हुए।

संकीर्णराग

हरिनायक ने कहा है– रागों के परस्पर मिश्रण से संकीर्ण राग कई प्रकार के बनते हैं, उनमें से कुछ श्रुतिमधुर रागों का वर्णन करते हैं ।।३९०।।

अथ पौरवी–

देशाख्यायाश्चाथ मल्लारिकायाः, स्यादंशाभ्यां पौरवीयं प्रदिष्टा ।।३९१।।

अथ कल्याणी–

वराटाख्या नाटकर्णाटकेभ्यः, सम्भूतेयं मंजुलकल्याणिकाख्या ।।३९२।।

अथ सारंगः

सारंगः स्यात्तोड़ी धानसिकाभ्याम्।

अथ गौड़ी–

श्रीरागात् स्याद् गौड़रागाच्च गौड़ी।

अथ नट्टमल्लारिका–

जाता नाटस्याथ मल्लारकस्य स्यादंशाभ्यां नट्टमल्लारिका च ।।३९३।।

अथ वल्लरी (वल्लवी)–

देशाख्याशावरी योगाद्वल्लरी परिकीर्तिता ।।३९४।।

अथ कर्णाटिका–

कर्णाटतो भैरवतोंशकाभ्यां कर्णाटिकाख्या गदिता सकम्पा ।।३९५।।

अथ सुखावरी–

सैन्धवीतोड़िकायोगात् समुत्पन्ना सुखावरी।

अथ आशावरी–

मल्लारी सैन्धवी तोड़ी योगादाशावरी भवेत् ।।३९६।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पौरवी-देशाख्या और मल्लारिका के अंशों को मिलाने से पौरवी होती है ।।३९१।।

कल्याणी- वराटी, नाट और कर्णाट के योग से सुंदर कल्याणी होती है ।।३९२।।

सारंग- तोड़ी और धानसी मिलाने से सारंग होता है।

गौड़ी- श्रीराग और गौड़ राग मिलाने से गौड़ी होती है।

नट्टमल्लारिका- नाट और मल्लार के अंशों को मिलाने से नट्टमल्लारिका होती है ।।३९३।।

वल्लरी- देशाख्या और शावरी के योग से वल्लरी होती है ।।३९४।।

कर्णाटिका- कर्णाट और भैरव के अंशों के योग से कम्पयुक्त कर्णाटिका होती है ।।३९५।।

सुखावरी- सैन्धवी, तोड़ी के योग से सुखावरी होती है।

आशावरी- मल्लारी, सैन्धवी, तोड़ी के योग से आशावरी होती है ।।३९६।।

अथ रामकेरी—

गुर्जरीदेशिकासंगाद्रामकेलिरजायत।
अन्येऽपि सन्ति भूयांसो रागाः संकीर्णलक्षणाः।
ये ये यथा श्रुता देशे ज्ञेयास्ते तु तथा बुधैः।।३९७।।

इति संकीर्णाः

(अथ प्रयोजनमाह)

मालवः श्रीश्च मल्लारो हिल्लोलस्तदनन्तरम्।
गीयते गायकैर्धरैशनन्दांशे चतुष्टयम् ।।३९८।।
वसन्तरागः कर्णाटद्वयं वीरे भवेद्रसे।
इत्येवं (रागषट्केन) षटरागेण वीरानन्द इतिस्मृतः ।।३९९।।
धानसी मानसी चैव भैरवी माधवी तथा।
सुभगा पंचमी नाटी वेलोयारी च गुंजरी (गुर्जरी) ।।४००।।
कामोदा चापि कल्याणी कोड़ा केदारिका तुड़ी।
कौमारी मायूरी चैव देशकरी च सिन्धुरा ।।४०१।।
रामकेरी च भूपाली रागिण्यश्चेति विंशतिः।
आनन्दांशे इति प्रोक्ता गीयन्ते गानकौविदैः ।।४०२।।

रामकेरी- गुर्जरी और देशिका(देशी) के योग से रामकेली (रामकेरी) होती है। और भी कई राग संकीर्ण जाति के है, उनमें जो-जो राग जिस-जिस देश में प्रसिद्ध हैं, विद्वानों को वहाँ से जानना चाहिए ।।३९७।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यहाँ संकीर्ण राग समाप्त हुए।

अब प्रयोजन कहते हैं।

मालव, श्री, मल्लार और हिल्लोल (हिन्दोल) ये चार राग धीर, विद्वान गायक आनन्द के प्रसंग में गाते हैं।।३९८।।

वसन्त और कर्णाट इन दो रागों का विनियोग वीर रस में होता है। इस प्रकार ये छः राग वीरानन्द नाम से प्रसिद्ध हैं।।३९९।।

धानसी, मानसी, भैरवी, माधवी, सुभगा, पंचमी, नाटी, बेलोयारी, गुंजरी (गुर्जरी), कामोदा, कल्याणी, कोड़ा, केदारिका, तुड़ी (तोड़ी), कौमारी, मायूरी, देशकारी, सिन्धुरा, रामकेरी, भूपाली- ये बीस रागिणियाँ आनन्दांश में कही गयी हैं, गाननिपुण लोग इन्हें आनन्द के प्रसंग में गाते हैं ।।४००, ४०१, ४०२।।

पूरबी कानड़ागौरी रामकेरी च दीपिका।
आशावरी विभाषा च वराड़ी च गड़ा तथा ।।४०३।।
एताश्च नव रागिण्यो वीरांशे गानमुतमम्।
वेलोयारी च गान्धारी ललिता पठमंजरी ।।४०४।।
वैरागी रागिणी चापि मारहाटी चैव पाहिड़ा।
करुणांशे विजानीयात् सप्तैता रागयोषितः ।।४०५।।
रागेण रसभागेन षड्त्रिंशद रागिणीति च।
करुणानन्द वीरत्व ज्ञापनार्थमिदं त्रयम् ।।४०६।।
इति शिवनारदसंवादे संगीत दामोदरे षड्रागाणां त्रिंशद्रागिणीनां च भावनिरूपणम्।

(अथ दासाः।)
मंगल स्वानकश्चैव कन्दर्पः परजस्तथा।
झल्लारश्चैव ह्मीर एते दासाः प्रधानतः ।।४०७।।

(दासपत्न्यः)
सारंगी सुहयी काफी सूरसेनी तथैव च।
जयन्ती जयहिन्दोला एता मंगलयोषितः ।।४०८।।
देवागरी (देवपरी) गण्डकिरी भाटियारी च बालिका।
बिहागः शंकराभरण एताः स्वानक योषितः ।।४०९।।

पूरबी, कानड़ा, गौरी, रामकेरी, दीपिका, आशावरी, विभाषा, वराड़ी, गड़ा - ये नौ (९)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रागिणियाँ वीरांश की हैं, इनका वीररस में विनियोग उत्तम है। वेलोयारी, गान्धारी, ललिता, पठमंजरी, वैरागी, मारहाटी, पाह्ड़ा– इन सात रागिणियों का करुण रस में विनियोग है। ।।४०३, ४०४, ४०५।।

छत्तीस (३६) राग-रागिणियों का रस-भेद से वर्णन करने के लिए तीन भागों -करुण, आनन्द और वीर रस में वर्णन किया ।।४०६।।

इस प्रकार छः राग और तीस रागिणियों का शिवनारद संवाद के अनुसार संगीत दर्पण में भावनिरूपण किया गया है।

दास– मंगल, स्वानक, कन्दर्प, परज, झल्लार, हमीर– ये छः राग प्रधानतः दास हैं ।।४०७।।

दासपत्नी– सारंग, सुहयी, काफी, सूरसेनी, जयन्ती, जयहिन्दोला– ये मंगल की स्त्रियाँ हैं ।।४०८।।

देवागरी, गण्डकिरी, भाटियारी, बालिका, बिहाग, शंकराभरण–ये स्वानक की स्त्रियाँ हैं ।।४०९।।

आड़ाली झंझतिर्बाला शक्तिश्च भीमसेनिका।
व्रह्माणी चेति संप्रोक्ताः कन्दर्पस्य प्रिया इमाः ।।४१०।।
आहीर(कस्तथा)करथा चैव धमारिरिमनस्तथा।
बंगाली चापि भैरोथी एताः परजयोषितः। ।।४११।।
नारायणी तथा गाजी नर्तकी चापि अग्रजा ।
बेहाती विहनाभी च झल्लारस्यैव योषितः ।।४१२।।
कालीकान्तिस्तथा भ्रान्तिर्नर्मदापि च हिंगुरी।
नटक्रान्तायणी ह्येता हामीरस्यैव चांगनाः ।।४१३।।

(के कस्य दासाः)
मालवे मंगलो दासो मल्लारे स्वानकः सदा।
श्रीरागे परजश्चैव कन्दर्पश्च वसन्तके ।।४१४।।
हिल्लोलदासो झल्लारः कर्णाटे हामीरस्तथा।
एते षडथ दासाश्च रागाणां सेवकाः सदा ।।४१५।।

अथ ध्यानं
पुनर्वक्ष्ये बालबोधार्थमेव यत्।
षण्णामेव हि रागाणां तत्पत्नीनां च वर्णितम् ।।४१६।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आड़ाली, झंझति, बाला, शक्ति, भीमसेनी, ब्रह्माणी ये कंदर्प की स्त्रियाँ हैं ।।४१०।।
आहीर, करथा, धमारी, इमन, बंगाली, भैरोधी ये परज की स्त्रियाँ हैं ।।४११।।
नारायणी, गाजी, नर्तकी, अग्रजा, बेहाती, विहनाभी ये झल्लार की स्त्रियाँ हैं ।।४१२।।
काली, कान्ति, भ्रान्ति, नर्मदा, हिंगुरी, नटक्रान्तायणी – ये हामीर की स्त्रियाँ हैं ।।४१३।।

कौन किसके दास हैं- मालव राग का दास मंगल है, मल्लार का दास स्वानक, श्रीराग का दास परज, वसन्त का दास कन्दर्प, हिल्लोल का दास झल्लार, कर्णाट का दास हामीर- ये छः दास रागों के सर्वदा सेवकों के रूप में रहते हैं। ।।४१४, ४१५।।

ध्यान- अब बालकों के बोध के लिए छः रागों और उनकी पत्नियों के ध्यान का पुनः वर्णन करते हैं ।।४१६।।

अथ रागरागिणीध्यानम्

(अथ मालवः– नारदसंहितायाम्–)
नितम्बिनीचुम्बितवक्त्रपद्मः।
शुकद्युतिः कुण्डलवान् प्रमत्तः।
संगीतशालां प्रविशन् प्रदोषे।
मालाधरो मालवरागराजः।।४१७।।

(अथ धानसी)
नीलोत्पलं कर्णयुगे वहन्ती।
श्यामा सुकेशी कृशमध्यभागा।
ईशत्सुहासाम्बुजवक्त्ररम्या (रम्यवक्त्रा, चारुवक्त्रा)।
सा धानसी पद्म सुचारुनेत्रा ।।४१८।।

(अथ मानसी)
करे विधृताम्बुजयुग्मरम्या (करावधुताम्बुजयुग्मरम्या)।
इतस्ततश्चारु विलोकयन्ती।
कण्ठे स्फुरन्मौक्तिक रत्नहारा।
सा मानसी (मालसी) संकथिता विचित्रा ।।४१९।।

राग-रागिणियों के ध्यान कहते हैं।

नारदसंहिता में मालव- नितम्बवती स्त्री ने जिसके मुखकमल का चुम्बन लिया है, तोते की तरह जिसका हरा वर्ण है, कानों में कुण्डल हैं, गले में मालाएं हैं, आनंद में मत्त है, ऐसा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रेष्ठ मालव राग रात्रि के आरंभ काल में संगीतशाला में प्रवेश कर रहा है ।।४१७।।

धानसी-दोनों कानों में नीलकमल है, श्यामवर्ण है, सुंदर केशकलाप है, पतली कमर है, कमल की तरह सुंदर नेत्र हैं, किंचित् मधुर हास्य के कारण जिसका मुखकमल रमणीय लगता है, ऐसी धानसी है ।।४१८।।

मानसी (मालसी)- दोनों हाथों में दो कमल धारण किये हुए है, वह उन कमलों को हिला रही है, अतः सुंदर लग रही है, विलास से इधर-उधर देख रही है, गले में चमकनेवाले मोतियों और रत्नों के हार धारण किये हुए है, विचित्र वर्ण से विस्मय उत्पन्न करनेवाली मानसी (मालसी) है ।।४१९।।

(अथ रामकिरी)–
प्रतप्तचामीकरचारुवर्णा (चारुवक्त्रा)।
कर्णावतंसं कमलं वहन्ती।
पौष्पं धनुः पुष्पशरान् दधाना।
चन्द्रानना रामकिरी प्रदिष्टा ।।४२०।।

अथ सिन्धुड़ाः (सिन्धुरा)–
सदिन्द्र(महेन्द्र)नीलद्युतिरम्बुजाक्षी।
प्रवादयन्ती कपिलासयन्त्रम्।
विचित्र रत्नाभरणा सुकेशी।
सा सिन्धुड़ा कान्तसमीपसंस्था ।।४२१।।

अथ आशावरी–
जवाप्रसूनद्युतिरिन्दुवक्त्रा।
सुनीलपद्मं (शुकं च) करयोर्दधाना।

क्षौमांशुकाच्छादितगात्रयष्टि–
र्महाविदग्धाशावरी प्रदिष्टा ।।४२२।।
(राशावरी रत्नगता विदग्धा)

रामकिरी – तपाये हुए सुवर्ण की तरह सुंदर रंग है, कान में भूषण के ढंग से कमल धारण किये हुए है, फूलों का धनुष और फूलों के बाण धारण किये हुए है, चन्द्रमा की तरह मुखश्री से युक्त रामकिरी है ।।४२०।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सिन्धुड़ा (सिन्धुरा) अच्छे इन्द्रनील की तरह कान्ति है, कमल के तुल्य नेत्र हैं, आभूषण पहने हुए हैं, सुंदर बालों से सुशोभित है, अपने प्रियतम के पास बैठी सिन्धुड़ा है ॥४२१॥

आशावरी- जवाकुसुम (रक्तवर्ण का बड़ा फूल) की तरह कान्ति है, चन्द्र के समान मुख है, दोनों हाथों में नीलकमल है, रेशमी वस्त्र से शरीर अवगुण्ठित है, ऐसी महाविदुषी आशावरी है ॥४२२॥

अथ भैरवी- नेदं नारदसंहितायाम्।
(शब्दकल्पद्रुम, रागध्यानम्)
सरोवरस्था स्फटिकस्य मण्डपे सरोरुहैः शंकरमर्चयन्ती।
तालप्रयोगे प्रतिबद्ध(प्रबन्ध)गीतिगौरीतनुर्भैरवी काशतीयम् ॥४२३॥

नारदसंहितायां तु-
चन्द्रप्रभाचारु मृगीसुनेत्रा।
विद्याधरा (बिम्बाधरा) नृत्यकलां (चारुकलां) वहन्ती।
पिकस्वरातीव मनोहरन्ती।

(राग ओ रूप)
सा भैरवीयं च शिवं ददातु (नामबुधैः प्रदिष्टा) ॥४२४॥

अथ मल्लारः-
विद्वान् सुशीलोऽतिसुकान्तदेहः।
कान्ताप्रियो धार्मिकशीलयुक्तः।
कामातुरः पिंगलनेत्रयुग्मः।
मल्लार रागः कुसुमप्रियश्च ॥४२५॥

भैरवी- (यह नारदसंहिता में नहीं है)- स्फटिक का मण्डप सरोवर के बीच में विराजमान है, उसमें बैठकर वह शिवजी की पूजा कर रही है, गौरवर्ण शरीर है, तालप्रयोगानुसार गीत गा रही है (गीत-रचना कर रही है), ऐसी भैरवी दैदीप्यमान है ॥४२३॥

नारदसंहिता में है- चन्द्र के समान प्रभा से सुंदर, हरिणी की तरह विशाल नयन हैं, पके हुए तुण्डीफल की तरह लाल अधर हैं, (विदूषी है) नृत्यकला (सुंदर कला) का प्रदर्शन कर रही है, कोकिल की तरह मधुर आवाज से मन हरण करनेवाली है। ऐसी यह भैरवी सब का कल्याण करे (ऐसा विद्वानों ने कहा है) ॥४२४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मल्लार- विद्वान् सदाचारी, सुंदर शरीरवाला, स्त्रियाँ जिसे प्रिय है (स्त्रियों को जो प्रिय है) धर्मानुकूल आचरण से युक्त, काम से पीड़ित, दोनों नेत्र पिंगट हैं, ऐसा मल्लार राग है, जिसे फूल अतिशय प्रिय हैं ।।४२५।।

नारदसंहितायां च–
विहारशीलोऽप्यतिनीलदेहो।
(राग ओ रूप)
गंभीर वाचाप्रिय कामिनीषु (गंभीर वाक्यः परमो विदग्ध)
कामातुरः पिंगलनेत्रयुग्मो।
मल्लाररागो गजवाहनोऽयम् (कुशलं करोतु)।।४२६।।

अथ वेलावली–
संकेतितोत्फुल्ल लता (संकेतिता स्फूर्तिलता) निकुंजे।
क्रीड़ास्थितिः (कृतस्थितिः) कान्तसमागमाय।।
वेलावली चम्पक माल्यमौलिः (चम्पकमौलिनी सा–प्रा. क.)।
विचित्र (नाना-रा. रु; बाला-श.क)
रत्नाभरणा निरुक्ता ।।४२७।।

अथ पूरवी–
रहः स्वकान्तक्रियमाणपत्रा– (रहःसुकान्तां प्रियमाणपत्रा - रा.रु.)
वलिं वहन्ती कुचकम्भयुग्मे।
दूर्वादलश्यामतनुः सकामा।
प्राणाधिका (पुरातनैः) सा पूरवी प्रदिष्टा (निरुक्ता) ।।४२८।।

नारदसंहिता में है- नाना क्रीड़ाओं में मग्न, अति नीलवर्ण शरीर, प्रिय कामिनियों के बीच गंभीर वाणी बोलनेवाला, नेत्रों में पिंगट वर्ण की छटा, हाथी पर विराजमान, काम से पीड़ित मल्लार राग है ।।४२६।।

वेलावली- चम्पक फूलों की मालाएं मस्तक पर धारण कर, चित्र-विचित्र आभूषणों से सुसज्जित; फूली हुई लताओं के घन कुंज में पति को संकेत देकर उनके साथ समागम करने के लिए उत्सुक बैठी वेलावली कही गयी है ।।४२७।।

पूरवी - दूर्वांकुर की तरह श्यामवर्ण शरीर है, कामवासना से परिपूर्ण, एकांत में दो घड़ों की तरह विशाल स्तनों के ऊपर पति अपने हाथों से केशर-कस्तूर्यादि द्रव्यों से पत्रावली

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(रंगवल्ली) लिख रहा है, ऐसी पूरवी है, ऐसा पुराचार्यों ने कहा है। ('प्राणाधिका'- यह पद सुसंगत नहीं बैठता, इसका अर्थ प्राणों से अधिक प्यार करनेवाली या पति जिसे प्राणों से अधिक प्यार करता है', हो सकता है। ।।४२८।।

अथ कानड़ा-
अशोकवृक्षस्य तले निषण्णा।
वियोगिनी बाष्पकणांचिताक्षी।
विभूषितांगी जटिलैकवेणी (जटिलेशबाला रा. रु.)।
सा कानड़ा हेमलतेव तन्वी ।।४२९।।

अथ माधवी-
संग्रथ्य संग्रथ्य गले दधाना।
प्रसूनमालां दयितस्य गौरी (दयितेन बाला)।
स्वकान्तकान्तानन (गौरीस्वकान्तानन) चुम्बितास्या।
सा सुंदरी माधविका निकुंजे ।।४३०।।

नारदसंहितायां च-
तड़ित्प्रभाचारुविलोलनेत्रा (लोलविचित्रनेत्रा)।
मातंगिनी सा प्रमदा स्वकान्तम्।
संचुम्बमाना प्रिय कामिनीयम्।
सा माधवी (मयूरिका) माधविका निकुंजे ।।४३१।।

कानड़ा- अशोक वृक्ष के नीचे बैठी हुई है, पति-वियोग के दुःख में डूबी है, आँचों में अश्रुजल के कण व्याप्त होने से आँखें अधिक सुंदर दिख रही हैं, अंगों पर धारण किये हुए भूषण वैसे ही पड़े हैं, एक वेणी होने से केशकलाप जटिल गूँथा हुआ लग रहा है, शरीर कृश है, सोने की लता की तरह पीतारुण कान्तियुक्त कानड़ा है ।।४२९।।

माधवी- गौरवर्ण शालिनी, फूलों की माला गूंथ-गूंथकर अपने पति के गले में अर्पण करनेवाली, लतावृक्ष में पति ने अपने सुंदर मुख से जिसका चुंबन लिया है, ऐसी सौंदर्यवती माघविका (माधवी) है ।।४३०।।

नारदसंहिता में है- बिजली की तरह चमकनेवाली कान्ति है, सुंदर और चंचल नयन हैं, मदोन्मत्त हस्तिनी की तरह आनंद से मग्न होकर अपने पति के मुख का चुंबन लेती हुई, पतिप्रिया, कामुक, लतागृह में बैठी हुई माधविका है ।।४३१।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अथ कोड़ा–
सत् कच्छपीं वादयतः स्वभर्त्तुः।
तानान् (गानार्थ) समभ्यस्यति सम्मुखेन।
सदैव तालावहिता च बाला।
कोड़ा करालस्तन युग्मरम्या (कलातानवती मता सा) ।।४३२।।

नारदसंहितायां च–
प्रणर्तिता लास्यकलाविलासा।
पवित्रदेहा कुटिलेक्षणा च।
कान्तस्य वामे वरकामिनी सा।
कोड़ा विहारेषु अतीव दक्षा (कोड़ा विहारेपि सुतिष्ठतीव)।।४३३।।

अथ केदारः
स्नात्वा समुत्तीर्णवती सुदेहा।
केशाग्रनिःष्यन्दित वारिबिन्दुः।
निष्पीडयन्ती स्तिमितांशुकान्तम्।
(राग ओ रूप)
केदारिका व्यक्त (रक्त) पयोधर श्रीः ।।४३४।।

कोड़ा– अच्छी जातवाली कच्छपी (वीणा) बजानेवाली, अपने पति के सम्मुख बैठकर तानों (गाने के अर्थ) का अच्छी तरह अभ्यास कर रही है, ताल की ओर चित्त एकाग्र है, अवस्था से बाला है, फिर भी 'भयंकर' स्तनद्वय से रमणीय लगनेवाली कोड़ा है ।।४३२।।

नारदसंहिता में है– जो लास्यकला के अनेक विलासों में निष्णात है, जो नृत्य कर चुकी है, जिसकी देह पवित्र है, दृष्टि कुटिल है, सुंदर कामिनी के रूप में पति के वामभाग में विराजमान है, अनेक क्रीड़ा-विहारों में अत्यन्त तत्पर है, ऐसी कोड़ा है।।४३३।।

केदार– स्नान करके बाहर आयी है, सुंदर देहवाली है, केशकलाप के अग्रभाग से जलबिंदु टपक रहे हैं, शान्ति से स्तब्ध होकर वस्त्र के अंचल को निचोड़ रही है, इसी से उसके स्तनों की शोभा प्रकट हो रही है, ऐसी केदारिका (केदार) है ।।४३४।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नारदसंहितायां च–
स्नानावरुद्धांशुकहीन देहा (स्नानेन शुद्धांशुकनील देहा-रा. रु.)
केशाद्विनिः ष्यन्दितवारिबिन्दुः।
त्सिग्धा मनोज्ञा च (मनोहरन्ती च) जगत् त्रयाणाम्।
केदारिका रक्त (वृत्त) पयोधर श्रीः ।।४३५।।

अथ श्रीरागः
लीलविहारेण वनान्तरेषु।
चिन्वन् प्रसूनानि वधूसहायः।
विलासवेषोसित (धृत) (विलासवित्तोद्युति) दिव्यमूर्तिः।
श्रीराग एषः प्रथितः पृथिव्याम् ।।४३६।।

अथ गान्धारी–
सन्ध्याकाले वेश्मनि प्राणबन्धोः।
स्कन्धे वीणां वादयन्ती दधाना।
धीराधीरा धातु चित्राचितांगी (विचित्रितांगी-रा. रू.)।
श्रीगान्धारी गन्धमाल्यानि धत्ते।।४३७।।

नारदसंहिता में है– स्नान करते समय वस्त्र समेटने से जिसके शरीर का भाग वस्त्ररहित हो गया है, बालों में से जलबिन्दु टपक रहे हैं, सौंदर्यशालिनी, लावण्यवती, तीनों लोकों में सुंदर, वर्तुलाकार (आरक्त) स्तनों की शोभा प्रकट हो रही है, ऐसी केदारिका है ।।४३५।।

श्रीराग– अरण्य में अनेक लीलाओं के साथ फूल चुनता हुआ, स्त्री जिसके साथ है, विलासानुकूल वेष से जिसके शरीर की शोभा दिव्य है, ऐसा जगप्रसिद्ध श्रीराग है ।।४३६।।

गान्धारी– अपने प्राणप्रिय के घर में शाम के समय अपने कन्धे पर वीणा रखकर बजाती हुई, अत्यंत धैर्यशालिनी (अथवा धीर होते हुए भी बीच-बीच में चंचल होनेवाली), गैरिकादि धातुओं से जिसके शरीर पर चित्र अंकित हैं, सुंगधित फूलों की मालाएं धारण किये हुए गान्धारी है ।।४३७।।

(राग ओ रूप)
(सन्ध्यासु काले गृहमध्यदेशे।
प्रवादयन्तीह पिनाकयन्त्रम्।
धराधराधातु विचित्रितांगी।
गान्धारिका गन्धस्रजं निधत्ते।)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नारदसंहितायां च–
संगीत (सुगीत) नृत्यानुरता दिनान्ते।
कान्तस्य कण्ठे (स्कंधे) प्रणिधाय पाणिम्।
वीणां दधानाति विचित्रितांगी।
गान्धारिणी (गान्धारिका) गन्धविनोदिनी च ।।४३८।।

अथ सुभगा–
रसपदार्थविवेचनकौतुकम्।
विदधती निजकोविद संसदि।
सुकवितामृतभावन तत्परा।
भगवती सुभगा समुदीरिता ।।४३९।।

(सायंकाल में अपने घर में बैठकर पिनाकवीणा बजा रही है, पहाड़ के गैरकादि धातुओं से शरीर पर चित्र अंकित है, सुगंधित फूलों की माला धारण किये हुए गान्धारिका है।)

नारदसंहिता में है– दिन के अंत में पति के गले में बाहें डालकर संगीत और नर्तन में मग्न है, अंग चित्र-विचित्र वर्णों से सुशोभित है, हाथ में वीणा है, सुगंधित द्रव्यों से मनोविनोद कर रही है, ऐसी गान्धारी है ।।४३८।।

सुभगा– अपनी विद्वान-मण्डली की सभा में रस और भिन्न-भिन्न पदार्थों पर कौतुकपूर्ण विचार करती हुई और अच्छे काव्यामृत के आस्वादन में निमग्न देवी सुभगा है ।।४३९।।

नारदसंहितायां च–
नानारसपदार्थांस्तु चिन्तयन्ती सकौतुका (नानारसपदार्थेन कौतुकं च विचिन्वती)।
कथिता(कविता)भावसंभोगभाविनी (भारती) सुभगा हि सा ।।४४०।।

अथ गौरी–
पुष्पोद्याने सार्धमालीकलापैः।
क्रीड़न्तीयं कोकिलाकाकलीभिः।
रामा श्यामा सद्गुण ग्रामसीमा।
गौरी गौरी गौरवेषोपदिष्टा ।।४४१।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नारदसंहितायां च–
प्रसाद्यमाना शिवभाविनी सा।
प्रगायन्ती कोकिल कामलीभिः।
श्यामा रसज्ञा कृशदेहमध्या (किल दिव्यरूपा)।
गौर गभीरा विधिनोपसृष्टा ।।४४२।।

नारदसंहिता में है– अनेक प्रकार के रसों और शास्त्रीय पदार्थों की कुतूहल के साथ चर्चा करती हुई, अनेक भावों और संभोग विषयों का मन में स्मरण करती हुई सुभगा है ।।४४०।।

गौरी–श्यामा जाति की सुंदर स्त्री, अनेक सद्गुणों की जिसमें सीमा है, सुवर्ण वर्ण की है, सखियों के साथ फूलों के उद्यान में कोकिल के अव्यक्त मधुर स्वर सुनकर मनोरंजन करती हुई यह गौरवान्वित गौरी है ।।४४१।।

नारदसंहिता में है– शिवजी के ध्यान में मग्न होकर कोकिल की तरह अव्यक्त मधुर स्वर में गाती हुई श्याम वर्ण की, रसतत्त्व को जाननेवाली, कृश कटि प्रदेश से सुंदर दिखनेवाली, गंभीर प्रकृति की गौरी है ।।४४२।। (यहाँ 'प्रसाद्यमान' का अर्थ है दूसरों से जिसकी प्रसन्नता सम्पादन की जा रही है, लेकिन श्लोक में इसका उल्लेख नहीं है कि किससे प्रसन्नता संपादन की जा रही है।)

अथ कौमारिका–
अट्टालिकायां स्फुटकौमुदीभिः प्रकाशितायां रजनीविहारैः।
सहाय (द्युताय) कान्तेन समं वसन्ती कौमारिका कामकलां वहन्ती ।।४४३।।

नारदसंहितायां च–
मुख्या प्रदिष्टा (सुखातिहृष्टा) स्फुट कौमुदीभि–।
र्विराजमाना सुविलासवेषा (र्विराजतेराजविलासवेषा)।
गौरीपदाम्भोरुहमर्चयन्ती (सेवमाना)
कौमारिका सैव महानुभावा (सा कथिता विचित्रा) ।।४४४।।

अथ बल्लारी (वेलोयारी – वेलावली)
गौरीपदाम्भोरुहमर्चयन्ती।
सा गह्वरे श्रीमति रत्नसानौ।
नानाद्रव्यो (रत्नो) पायनैर्भक्तिभावैः।
वेलोयारी कण्ठमालोदितेयम् (कथ्यते बालिकेयम्) ।।४४५।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कौमारिका- स्पष्ट चन्द्रप्रकाश से धवलित घर की ऊँची अटारी पर रात्रि के समय में अकेले पति के साथ रहकर अनेक लीलाविलास करनेवाली, कामकला धारण करती हुई कौमारिका है ।।४४३।।

नारदसंहिता में है- अनेक सुंदर विलासपूर्ण वेषों से युक्त, भरपूर चन्द्र प्रकाश में विराजमान है, जो सबसे मुख्य या श्रेष्ठ (प्रसिद्धि के कारण आनंदित) है, शिवपत्नी गौरी के चरणकमल की पूजा कर रही महाप्रभावशालिनी कौमारिका है ।।४४४।।

बल्लारी (वेलोयारी, वेलावली)- अतिशय शोभा से परिपूर्ण, रत्नमय पहाड़ के शिखर पर, गुफा में बैठकर अनेक प्रकार के पूजा द्रव्यों और वस्तुओं से गौरी के चरणकमल की पूजा कर रही है, गले में मालाएं हैं, ऐसी वेलोयारी कही गयी है। (वह बालिका रूप में है) ।।४४५।।

नारदसंहितायां च-
वेणीं वरां कंचुलिकां वहन्ती।
लावण्यस्निग्धा वरगात्रयष्टिः (सिन्धाववगाहयन्ती)
विनोदिनी रत्नकलापहारा।
सा वेलोयारी परितः प्रचारा ।।४४६।।
(वल्लारिका पीतनिचोलधारिणी।)

(अथ वैरागी)
उल्लासयन्ती धम्मिल्लं रहःस्था प्राणबन्धुना।
मालती कुसुमस्रग्भिर्वैरागी रागिणी स्मृता ।।४४७।।

नारदसंहितायां च-
सुलक्ष्मणी (मनस्विनी) मानरता प्रतापिनी।
निःश्वासयुक्ता स्थिरदृष्टिभूता।
वैरागिणी रागमता (युता) प्रदिष्टा।
विदग्धभूमिः किल देवरूपा ।।४४८।।
(विदग्धवृन्दैः किल सूक्ष्मधीभिः।)

नारदसंहिता में है- सुंदर वेणी और कंचुकी धारण किये हुए, विलक्षण दीप्ति से सुशोभित, सर्वश्रेष्ठ शरीरयष्टि धारण करनेवाली (मानो सौंदर्य समुद्र में तैर रही है), विनोदप्रवण, कमर की कांची और गले के हार जिसके रत्न के हैं, चारों ओर घूमनेवाली वेलोयारी है (पीले वर्ण का अवगुण्ठन धारण करनेवाली है) ।।४४६।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वैरागी– एकान्त में अपने प्राणप्रिय पति से बंधे हुए केशकलाप को मालती के फूलों की मालाओं से सुशोभित करा रही है और स्वयं अनुराग में तल्लीन है; ऐसी वैरागी है ।।४४७।।

नारदसंहिता में है– सुंदर चिह्नों से, लक्षणों से युक्त, मानवती, पराक्रम और प्रभाव दिखानेवाली, श्वासोच्छ्वास छोड़नेवाली (वैराग्ययुक्त निःश्वास छोड़नेवाली) है, दृष्टि में स्थिरता है, अनुरागवती, देवतास्वरूप और पाण्डित्य को जन्म देनेवाली वैरागिणी है। (सूक्ष्म बुद्धि के विद्वानों ने इसका ऐसा वर्णन किया है ।।४४८।।

(अथ वसन्तः)
चूतांकुरेणैव कृतावतंसो।
विघूर्णमानारुणनेत्र पद्मः।
पीताम्बरः कांचनचारूदेहः।
वसंतरागो युवतिप्रियश्च ।।४४९।।

(अथ तुड़ी)–
सुनृत्यमानाति सुशीलयुक्ता।
मुक्तालताकल्पित (कम्पित) हारयष्टिः।
चूतांकुरं पाणियुगे (कर्णयुगे) वहन्ती।
यवारुणांगी कथिता तुडीयम् (तुडीकेरियेयम्) ।।४५०।।

(अथ पंचमी)–
संगीतगोष्ठीषु गरिष्ठभारं (भावम्)।
समाश्रिता गायन् सम्प्रदायैः।
खर्वा ध्वनन्नूपुर पादयुग्मा (पद्मा)।
सा पंचमी पंचमवेदविद्या ।।४५१।।

वसन्त– कोमल आम्रपल्लव और मंजरियों से भूषण बनाकर धारण करनेवाला है, नेत्रकमल लाल हैं, भ्रमण कर रहा है, पीला वस्त्र पहने हुए है, सुवर्ण की तरह सुंदर शरीर है, ऐसा वसन्त राग है, तरुण स्त्रियाँ उसे अतिप्रिय हैं ।।४४९।।

तुड़ी– मोतियों के सरों के बने हार गले में हैं, दोनों हाथों में आम के कोमल पल्लव हैं, अरुण वर्ण का शरीर है, सुशील आचरण करनेवाली है और सुंदर नृत्य कर रही है, ऐसी तुड़ी है ।।४५०।।

पंचमी– ऱ्हस्वमूर्ति है, चरणों में नूपुर आवाज कर रहे हैं, संगीत सभाओं में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गायन-सम्प्रदाय के अनुसार ऊँचे भाव प्रकाशित करनेवाली मानो पंचम वेदविद्या ही शरीर धारण करके आयी है, ऐसी पंचमी है ।।४५१।।

नारदसंहितायां च–
संगीत विद्यासुविशारदा च विहारभावा वरकामनीयम्।
प्रदीप्तभावा सुरसा सुवेषा (सुधांगा) श्रीपंचमी पंचमवेदविद्या ।।४५२।।

(अथ ललिता)–
उषसि केशसुसंयममात्मनो।
विदधती शयनोत्थितवत्यसौ।
विलुलितालकवल्लिवृतानना।
सुललिता ललिता कथिता बुधैः ।।४५३।।

नारदसंहितायां च–
(राग ओ रूप)
उषः शिरः केशचयस्य संयमम्।
करोति लीलारतिभाव धीरा।।
चन्द्रानना लोहितनेत्रपद्मा।
सम्पूजिता सा ललिता वरस्त्री ।।४५४।।

नारदसंहिता में है– स्त्रियों में सर्वश्रेष्ठ स्त्रीरत्न, जिसके भावों में अनेक क्रीड़ा-विहार प्रकट हो रहे हैं, संगीत विद्या में परम निष्णात है, अंतःकरण में अनेक भाव उद्दीपित हो रहे हैं, रसानुभव से मग्न है, सुंदर वेशभूषा है, मानो पंचमवेद विद्या की प्रतिमूर्ति हो, ऐसी पंचमी है ।।४५२।।

ललिता– प्रातः बिस्तर से उठने के बाद अपने केशकलाप को अच्छी तरह संवारती हुई सुंदर विलासशालिनी ललिता है, जिसका मुख इधर-उधर बिखरनेवाले लता समान केशकलाप से बार-बार ढंकता सा जा रहा है; ऐसा विद्वानों ने कहा है ।।४५३।।

नारदसंहिता में इस प्रकार वर्णन है– जन सम्मानित, उच्च स्तर की स्त्री, चन्द्र के समान मुखश्री से युक्त, नयनकमलों में कुछ आरक्त छटा है, प्रभातकाल में मस्तक के बालों को बाँध रही है और विलासपूर्ण रतिविषयक भाव अंतःकरण में है, फिर भी गंभीर प्रकृतिवाली है; ऐसी ललिता है ।।४५४।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अथ पठमंजरी–

सखी कलापैः परिहासलीलया
क्वचित् स्वसखीभिः परिपूरयन्ती।
पत्रं मषीसत्कण (सत्कमलं रा. रू.)मुद्वहन्ती।
मंजूक्तिशीला पठमंजरीयम् ।।४५५।।

(सखी कलापैः परिहास्यमाना।
सुरूपिणी (वियोगिनी) कान्तवियोगिनी।।
पीनस्तनी चैव धराप्रसुप्ता।
श्यामा सुकेशी पठमंजरीयम्।।)

अथ गुर्जरी–

(नारद पं. सा., राग रत्नाकर, राग ओ रूप)
कर्णोत्पलालम्बिमधुव्रतानां।
संशृण्वती मंजुलकूजितानि।
कान्तान्तिकं गन्तुमनाः प्रदोषे।
सा गुंजरी वेष (नृत्य) कलांचितांगी ।।४५६।।

अथ विभाषा–

अध्यापयन्ती निजशिष्यवृन्दं संगीतशास्त्राणि विवेचनाभिः।
मनोहरा हारलताभिरामा समस्तभाषाकुशला विभाषा ।।४५७।।

पठमंजरी– अपनी सखियों के समुदाय के बीच हास्य-विनोद लीला करती हुई, स्याही से पत्र के ऊपर अक्षर अंकित कर रही है, स्वाभाविक मधुर संभाषण में मग्न पठमंजरी है ।।४५५।।

(अपनी सखियों के समुदाय के बीच हास्य-विनोद लीला करती है, सुंदर रूप है, पति-विरह से विषण्ण है और जमीन पर सोई हुई है, पुष्ट स्तन है, श्यामा जाति की है, विशाल, कुटिल और कृष्णवर्ण के केशकलाप हैं, ऐसी पठमंजरी है।)

गुंजरी (गुर्जरी) – कानों में धारण किये हुए कमलों पर भँवरे मंडरा रहे हैं, जिनका मधुर गुंजारव वह सुन रही है, रात्रि के आरंभकाल में पति के पास जाने के लिए उत्सुक है, नृत्यकला मानो अंग-प्रत्यंग में संचरित है, ऐसी सुंदर वेशभूषा धारण की हुई गुंजरी (गुर्जरी) है ।।४५६।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विभाषा– मन हरण करनेवाली लता जैसे हीरों के पहनने से रमणीय लगती है, वैसे ही सर्वभाषा बोलने में निपुण, अपने शिष्य समुदाय को विवरण सहित संगीत आदि शास्त्र पढाती हुई विभाषा है ।।४५७।।

अथ हिन्दोल:
लीलाविलासेन पतन् पृथिव्याम्।
उत्थापितस्तत्क्षणमालिवृन्दैः।
उल्लासयन् गीतरसैर्विदग्धान्।
हिल्लोल (हिन्दोल) रागः कथितो रसज्ञैः ।।४५८।।

अथ मायूरी–
मयूरकेका श्रवणोल्लसन्ती।
मयूरिकां वीक्ष्य मुदं वहन्ती।
मयूरकर्णाभरणं दधाना (मयूरकान्तीव शितिं दधाना - रा. रू.)
मायूरिका सा कथिता रसज्ञैः ।।४५९।।

(मयूरकेका श्रवणानुरागा मयूरिकां वीक्ष्य मुदं वहन्ती।
मयूरवृन्दैः सह नृत्यमाना मायूरिकेयं कथिता गुणज्ञैः।।)

अथ दीपिका–
प्रदोषकाले गृहदेहलीषु (-सम्प्रविष्टा) प्रदीपहस्तारुणगात्रवस्त्रा।
सीमन्तसिन्दूर विराजमाना सुरक्तमाल्या किल दीपिकेयम् ।।४६०।।

हिन्दोल– अनेक लीला-विलास करते हुए जमीन पर गिरते समय सखियों के समूह ने जिसे उसी क्षण उठा लिया है, गीत के रस से विद्वानों को आनंद से विदग्ध करता है, ऐसा हिल्लोल (हिन्दोल) राग है, रसतत्त्व जाननेवालों का यह कहना है ।।४५८।।

मायूरी– मयूर की वाणी सुनकर और मयूरी को देखकर आनंद से रोमांचित हो रही है, मयूर के पिच्छ के कर्णभूषण धारण करनेवाली (मयूर-कान्ति के सदृश नीलवर्ण धारणी), मयूरिका (मायूरी) है, ऐसा रसज्ञ लोगों ने कहा है ।।४५९।।

(कोष्ठकान्तर्गत 'मयूरों' के समूह में नाच रही है' इतना विशेष है।)

दीपिका– सायंकाल में घर की दहलीज पर दीप हाथ में लेकर खड़ी है, शरीर के अवयव आरक्तवर्ण से सुशोभित हैं, वस्त्र भी लालवर्ण का है, सीमन्त में (केशों के मध्यभाग में,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मस्तक पर) सिन्दूर विराजमान है, सुंदर लाल फूलों की माला धारण किये हुए है, ऐसी दीपिका है ॥४६०॥

अथ देशकारी–
सार्धं सखीभिर्विजने वसन्ती।
विचित्रवक्षोजनखक्षतानि (-तांगी)।
निरीक्षमाणा मणिदर्पणेषु।
सा देशकारी कथिता मुनीन्द्रैः ॥४६१॥

नारदसंहितायां च–
(राग रत्नाकर)
सार्धं सखीभिर्विजनेवहन्ती विचित्रवक्षोजनखक्षतानि।
निरीक्षमाणामलदर्पणेषु सा देशकारी कथिता गुणज्ञैः ॥४६२॥

अथ पाहिड़ा–
भर्तुर्दधानाचरणारविन्दं निषेधयन्ती परदेशयानम्।
प्रकाम दाम्पत्यसुखेन मुग्धा (निमग्ना) सा पाहिड़ा संकथिता कवीन्द्रैः ॥४६३॥
(प्रेमानुरागादतिकातराक्षी– इति तृतीय चरणः।)

अथ वराडी–
कर्णे दधाना सुरपुष्पयुग्मं।
सुवृत्तवक्षोज (स्फुरत् सुवक्षोज) मनोहरांगी।
स्मेराननना चारुविलोलनेत्रा।
गौरांगयष्टिः (वरांगवेयं) कथिता वराड़ी (वडारी) ॥४६४॥

देशकारी– सखियों के साथ एकान्त में बैठकर स्तन के चित्र-विचित्र नखक्षतों (कामशास्त्र में स्तनों पर अनेक प्रकार के नखक्षतों का वर्णन है) को रत्न के दर्पण (काँच की आरसी) में देखती हुई देशकारी है, ऐसा वर्णन मुनियों ने किया है ॥४६१॥

नारदसंहिता में – अर्थ प्रायः वही है, सिर्फ रत्नदर्पण के बदले निर्मल स्वच्छ दर्पण का उल्लेख है ॥४६२॥

पाहिड़ा– विदेश जाने के लिए तैयार अपने पति के चरणारविन्द पकड़कर विदेश-यात्रा का निषेध कर रही है, पति – पत्नी के परिपूर्ण संभोग और संसार के सुखों में मग्न,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुग्धा (सुंदर या तारुण्योन्मुख) पाहिड़ा है, (प्रेमातिशय से जिसके नेत्र अधीर और कम्पित हो गये हैं) ।।४६३।।

वराडी- कान में कल्पवृक्ष के दो फूल धारण किये हुए है, सुंदर चमकनेवाले वर्तुलाकार स्तनों से शरीर चित्ताकर्षक लग रहा है, हास्ययुक्त मुख है,सुंदर चंचल नयन हैं, गौरवर्ण शरीर है, ऐसी वराडी (वडारी) कही गयी है ।।४६४।।

नारदसंहितायां च –
विच्छेद्यमानाश्रुकुला मदाक्षी (निषिध्यमानाश्रुकलाकुलाक्षी)।
सा नीलचीरा धरणीं लुठन्ती।।
प्रियानुरागं सततं स्मरन्ती।
कृशांगयष्टिः कथिता वराडी।।४६५।।

अथ मारहाटी–
उत्पन्नमात्रे प्रथमापराधे।
मानं रहः कर्तुमनाश्चिरेण।।
ऋजुस्वभावा नियतं(निवृतं) वदन्ती(रुदन्ती)।
सा मारहाटी हठकेलि जुष्टा(रुष्टा–रा.रू.)।।४६६।।

अथ कर्णाटः–
कृपाणपाणिस्तुरगामिधरूढ़ः।
मयूर कण्ठोपमदेहकान्तिः (कण्ठकान्तिः इति मूले)।।
सुवेष्टितोष्णीषधरः प्रयाति(स्फुरत्सितस्निग्धरसःप्रशान्तः –श.क.)।
कर्णाटरागो हरिणान् विहन्तुम्(हरितालवर्णः)।।

नारदसंहिता में है – सतत गिरनेवाली अश्रुधाराओं को पोंछती हुई और इसी से जिसके नेत्र त्रस्त हैं एवं मद की छटा से भी परिपूर्ण है, नीलवस्त्र पहनकर जमीन पर लुढक रही है और प्रिय पति का अनुराग से सतत स्मरण कर रही है, ऐसी वराडी (वडारी) है ।।४६५।।

मारहाटी – पति की ओर से महले कोई अन्याय होते ही एकान्त में बड़ा मान कर रहने की आकांक्षी है, वैसे सरल स्वभाव की है, सतत बोलनेवाली (रुदन करने वाली) है, जबरदस्ती के विलास में रखने वाली (जबरदस्ती के विहार में रुष्ट होने वाली मारहाटी है।।४६६।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कर्णाट- घोड़े पर बैठा हुआ है, हाथ मैं कृपाण है, मयूर कण्ठ की तरह नीलवर्ण की शरीरकान्ति है, हरिणों को मारने के लिए जा रहा है। (मनःशील के रंग का, रसमय और शान्त अन्तःकरणयुक्त)।।४६७।।

अथ नाटिका(नाटी)-
चिरं नटन्ती शुभरंगमध्ये।
विचित्र रत्नाभरणा सुमध्या (कृशांगी)।।
(संप्रार्थयन्ती नटिनं वसन्तम् -रा.रू.)
सुगीततालेषु कृतावधाना।
नाटी सुशाटी परिधानशीला ।।४६८।।

अथ भूपालिका -
स्वनायकं पुष्पलताधिरूढ़म्।
समुन्मुखी तं समुदीक्षमाणा।।
प्रयाचमाना कुसुमानि शश्वत्।
भूपालिका सा कथिता सुधीभिः ।।४६९।।

नारदसंहितायां च-
सनायकापुष्पगणं सृजन्ती सुवेषयाना वरकामिनीयम्।
उल्लासिता प्रेममदाकुलाक्षी भूपालिका सा कथिता रसज्ञैः (स्खलदुत्तरीया)।।४७०।।

नाटिका - चित्र विचित्र रंग के रत्नों के गहने पहनकर चिरकाल तक सुन्दर रंगमंच पर नर्तन कर रही है, सुन्दर गीतों और तालों में चित्त एकाग्र है, कटिप्रदेश कृश होने से सुन्दर है, सुन्दर शाल आदि बड़ा वस्त्र पहने हुए है, ऐसी नाटी है (वसन्त रूपी नट की प्रार्थना कर रही है।)।।४६८।।

भूपालिका - फूलों की लता पर चढ़े हुए अपने पति की ओर उँचा मुख करके देखती हुई बारम्बार फूलों की याचना कर रही है, विद्वानों का कहना है कि ऐसी भूपालिका है ।।४६९।।

नारदसंहिता में है - सुन्दर वेशभूषा के अच्छे वाहन में बैठकर सुन्दर रूपवती यह स्त्री अपने नायक के साथ फूल चुनती हुई भूपालिका है, प्रेम के मद में उसकी आँखें झुकी है; (जिसका उत्तरीय वस्त्र गिर रहा है।) रसज्ञों ने इसका ऐसा वर्णन किया है।।४७०।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अथ रामकेरी(रामकेली)
अध्यापयन्ती शुकसारसारीं।
श्रीरामरामेति सुवेशलक्ष्मीः।।
वामस्तनार्धस्खलितांशुकश्रीः।
श्रीरामकेलिः कथिता विदग्धैः(कवीन्द्रैः)।।४७१।।

नारदसंहितायां च–
श्रीरामरामेत्यनिशं जपन्ती।
पूजारता पुष्पचयैः सुवासाः।।
सानन्दरूपा करूणार्द्रदेहा(लावण्ययुक्ता करूणार्द्रचित्ता – रा.रू.)।
श्रीरामकेलिः कथिता विदग्धैः ।।४७२।।

अथ गड़ा–
विशेषवैदग्ध्यवती समस्तान्।
कलाविलासेन विमोहयन्ती।।
बृहन्नितम्बा परिपुष्टदेहा (कृशमध्यभागा)।
गड़ा प्रलम्बस्तनभारभव्या ।।४७३।।

रामकेरी (रामकेली) – अपने तोता – सारिकादि को श्रीराम – राम सिखाती हुई, सुन्दर वेशभूषा से शोभायमान, बायें स्तन से वस्त्र गिरने से उसकी विशेष शोभा प्रकट हो रही है, विद्वानों के अनुसार ऐसी रामकेली है ।।४७१।।

नारदसंहिता में है – दिन रात श्रीराम – राम जप करती हुई, अनेक प्रकार के सुवासित फूलों से पूजा में मग्न, सुन्दर वस्त्र धारण करनेवाली रामकेली है, जिसका अन्तःकरण दया से द्रवित है (लावण्ययुक्त रामकेली करुणार्द्र चित्तवाली है), विदग्ध लोगों के अनुसार आनन्द में मग्न रामकेली है ।।४७२।।

गड़ा – विशेष प्रकार की विद्वत्ता होने से अपने कला-विलास से सबको मोहित करने वाली गड़ा है, जिसके नितम्ब बहुत बड़े है, देह परिपुष्ट है (मध्यभाग कृश है), और लम्बायमान स्तनों के भार से भव्य लग रही है।।४७३।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नारदसंहितायां च–
(राग ओ रूप)
विशेषवैदग्ध्यवती समस्तान् कलाविलासेन विमोहयन्ती।
गृहन्नितम्बा कृशमध्यभागा पीनस्तनी सैव गड़ा प्रदिष्टा।।४७४।।

अथ कामोदी –
(पदकल्पतरु)
भर्त्ता समं चाम्भसि संचरन्ती(रहसि प्रकरणम्)।
पयोविहारेण सरोरुहाणि।।
विचिन्वती सौरभमोदमाना।
कामोद रागिण्युदिता मुनीन्द्रैः।।४७५।।

अथ कल्याणी –
व्याधुता नटनपरिश्रमेण बाला।
लीलाभिः सदसि कृतादरा नटेन।।
कल्याणी कलयति हस्तहावहेलम्।
प्रस्थाने मुखरितकिंकणीकलापम्।।४७६।।

(रागं ओ रूप)
(स्ववासके नृत्यति वेशशीला लावण्यलीला कलितांगशोभा।
केयूरकं नूपुरकिंकिणीगणं कल्याणिकेयं परिवादयन्ती।।)

इति श्रीकृष्णरस संगीत – संग्रहे (त्यादी) लीलापुरुषोत्तम श्रीनन्दनन्दन-रूपनामगुणादिगान हेतुकं प्रयोगोत्तमारत्नमाला (रागमाला) निर्णयविरचनं नाम तृतीय प्रकरणम्।।

नारदसंहिता में है – पाण्डित्य के वैशिष्ट्य से, कला-विलास से सभी प्रकार के लोगों को मोह लेने वाली, विशाल नितम्ब प्रदेशवाली गड़ा कही गयी है; उसका मध्यभाग सिंह की तरह कृश है, और स्तनद्वय पुष्ट हैं।।४७४।।

कामोदी – पति के साथ पानी में विहार करने वाली, विहार के समय कमल चुनने वाली एवं उनकी सुगन्ध से आनन्दित होने वाली ऋषिवर्यों के मतानुसार कामोद रागिणी है ।।४७५।।

कल्याणी – अवस्था से यह बाला है, नर्तन के श्रम से श्रान्त और कम्पित है, सभा में इसकी अनेक प्रकार की लीलाएं देखकर नट(नर्तक) ने उसका सम्मान किया है, ऐसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कल्याणी है, जो गमन के समय क्षुद्रघण्टिकाओं के समूह के अनेक निनाद निर्माण करती हुई हस्त के हावभाव् सहज लीला से व्यक्त करती है।।४७६।।

(लावण्य की अनेक लीलाओं से जिसके अंग सुंशोभित हो रहे हैं वेशभूषा में तल्लीन अपने निवास की नृत्यशाला में नृत्य करती हुई केयूर (बाहुभूषण) और नूपुरों के किंकिणी – कलाप बजा रही है, ऐसी कल्याणी है।)

।।इति शम्।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

।।अथ चतुर्थं प्रकरणम्।।

अथ तालः

(तालस्य नानात्वं तज्ज्ञानप्रकारश्च।
संगीत दर्पणस्य तालाध्याय उक्तं संक्षेपेण लिखामि।)

(संगीत दर्पणम्)
तौर्यत्रिकं तु मत्तेभस्तालं तस्यांकुशं विदुः।
न्यूनाधिक प्रमाणं तु प्रमाणं क्रियते यतः।।४७७।।
कालः क्रिया च मानं च सम्भवन्ति यथा सह।
तथा तालस्य सम्भूतिरिति ज्ञेयं विचक्षणैः ।।४७८।।

कालः क्षणादिको ज्ञेयः काल(सं. द. – ताल)योर्घटनं क्रिया।
क्रिययोनन्तरं यत्तु विरामो मानमुच्यते ।।४७९।।

तथा च शिवकिंकरः
तालो लघ्वादिमितया क्रियया सम्मितो मितिम्।
गीतादेर्विदधत् कालः स च द्वेधा बुधैः स्मृतः ।।४८०।।

तथा च हरिभट्टः इति संगीत दर्पणे –
तालः काल इति ख्यातो ह्यावापादि क्रियामितः।
प्राणैस्तु दशभिर्युक्तस्तौर्यत्रयमितो भवेत्।।४८१।।

ताल – अब ताल का निरूपण करते हैं। ताल के अनेक प्रकार और उनके ज्ञान की पद्धति जैसी संगीत दर्पण के तालाध्याय में कही गयी है, उसके अनुसार संक्षेप में लिखते है।

तौर्यत्रिक (नृत्य, गीत, वाद्य) मदोन्मत्त हाथी है, उसे नियम में रखने वाला ताल उसका अंकुश है, उससे गीतादि का कम-अधिक परिमाण का माप प्रमाणित किया जाता हैं।।४७७।।

गीतादि का काल, हस्त की क्रिया और उसका मान (परिमाण) – उन सबके एक साथ उत्पन्न होने की जो व्यवस्था है, उसमें से ताल की उत्पत्ति हुई है, इसे विद्वज्जन को जानना चाहिए ।।४७८।।

क्षणादिक अवयवों के रूप में जो प्रसिद्ध है, वही काल है, दो कालों का विभाजन या मिलन करने वाली क्रिया है। दो क्रियाओं के बीच का जो अन्तर है, जिसमें विराम होता है, वह मान है ।।४७९।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शिवकिंकर ने इस प्रकार कहा है – लघु इत्यादि परिमाण से नापी हुई क्रिया से जिसका (ताल का) नाप होता है और जो गीतादि को नापता है, ऐसा काल ही ताल कहलाता है; विद्वानों के बनुसार वँह दो प्रकार का है ।।४८०।।

हरीभट्ट ने भी इसी प्रकार कहा है – आवापादी क्रियाओं से नापा हुआ काल ही ताल कहा जाता है। वह दस प्राणों से युक्त है। तौर्यत्रिक का उससे नाप होता है।।४८१।।

तथा च विनोद:

हस्तद्वयस्य संयोगे वियोगे वापि वर्तते।
व्याप्तिमात्रो(व्याप्यमानो) दशप्राणै: स कालस्ताल संज्ञक: ।।४८२।।
मार्गदेशीगतत्त्वेन तालोसौ द्विविधो मत:।
शुद्ध सालग संकीर्णास्तालभेदा: क्रमान्मता: ।।४८३।।

अथ दशप्राणा:

कालो मार्ग: क्रियांगानि ग्रहो जाति: कला लय:।
यति: प्रस्तारकश्चेति तालप्राणा दशस्मृता:।।४८४।।
क्षणादिरूपो य: काल: स प्राणत्वेन कीर्त्यते ।
गीतादेस्तु मितिं कुर्वन् स एवायाति तालताम्।।४८५।।
क्षणादि रूपकस्ताल: क्षणं नेतुं न शक्यते।
अनुद्रुतं समारभ्य तालकालोऽत्र कथ्यते।।४८६।।
ताल: काल इति प्रोक्त: सोऽवच्छिन्नो द्रुतादिभि: ।
गीतादिमानकर्ता स्यात्स द्वेधा कथितो बुधै:।।४८७।।
शिवशक्त्यात्मकं पुण्यं यशस्यं भुक्ति मुक्तिदम्।
दशप्राणात्मकं तालं यो जानाति स तत्त्ववित्।।४८८।।

विनोद ने इस प्रकार कहा है – दोनों हाथों के संयोग – वियोग जनक क्रिया में जो व्याप्त रहता है, और दश प्राणों से जो व्याप्त है, ऐसे काल को ताल कहते है ।।४८२।।

यह ताल दो प्रकार का है – मार्ग और देशी। और क्रम से उसके शुद्ध, सालग और संकीर्ण ऐसे तीन भेद हैं ।।४८३।।

अब दस प्राण कहते हैं– काल, मार्ग, क्रिया, अंग, ग्रह, जाति, कला, लय, यति, प्रस्तारक – ताल के ऐसे दस प्राण कहे गये हैं ।।४८४।।

क्षणादि अवयवरूप जो काल है, वही कालरूप प्राण है, गीतादि को नापता हुआ वही ताल कहा जाता है ।।४८५।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनुद्रुत से आरंभ करके ताल का काल यहाँ कहा जाता है, द्रुतादि से परिमित (उपाधियुक्त) काल ही ताल है। वही गीतादि को नापता है। वह दो प्रकार का है। यह ताल शिवशक्ति रूप है, पुण्यप्रद, कीर्तिदायक और मोक्ष देनेवाला है। इस दश प्राणस्वरूप ताल को जो जानता है, वही तत्त्वज्ञ है ।।४८६, ४८७, ४८८।।

दशप्राणपरिज्ञाने प्रवीणस्तालधारकः।
नृत्यादिषु प्रशस्त स्यादितरस्तु मृतोपमः ।।४८९।।

अथ कालप्राणः
पद्मपत्रशतैकैकच्छेदकालः क्षणः स्मृतः।
एकभेदेन सूच्यग्रे क्षण इत्यभिधीयते ।।४९०।।
लवः क्षणैरष्टभिः स्यात्काष्ठास्यादष्टभिर्लवैः।
स्यान्निमेषोऽष्टकाष्ठाभिः निमेषैरष्टभिः कला ।।४९१।।

कलाद्वयी चतुर्भागः स एव त्रुटिरुच्यते।
चतुर्भागद्वयेनैव बिन्द्वर्धं संप्रकीर्तितम् ।।४९२।।
अणुद्वयाद् द्रुतः प्रोक्तो द्रुतद्वया (तद्द्वयाच्च)ल्लघुः स्मृतः।
लघुद्वयात्तु वक्रः स्याल्लत्रयेण प्लुतो मतः।
इति तालगतिः प्रोक्ता तालज्ञैः पूर्वसूरिभिः ।।४९३।।
इति कालः प्रथम प्राणः।

जो ताल के दस प्राणों के ज्ञान में प्रवीण है, ऐसा ही ताल धरनेवाला, नृत्यादि में प्रशस्त (स्तुतिपात्र) होता है; इससे इतर जो हैं, वे मृततुल्य हैं ।।४८९।।

अब काल-प्राण कहते हैं– कमल के सौ पत्तों को एक के ऊपर एक रखकर सूई के अग्र से एक साथ भेद करें, तो उसमें एक-एक पत्र के छेद के लिए काल का जो अंश लगेगा, वही क्षण है ।।४९०।।

आठ क्षणों से एक लव; आठ लवों से एक काष्ठा; आठ काष्ठाओं से एक निमेष; आठ निमेषों से एक कला; दो कलाओं से एक चतुर्भाग, त्रुटि; दो चतुर्भागों से एक बिन्द्वर्ध, अणु; (संगीतशास्त्र पृ. २११ संगीत दर्पण के अनुसार चतुर्भाग मार्ग विशेष में है।); दो अणुओं से द्रुत; दो द्रुतों से एक लघु; दो लघुओं से एक वक्र, गुरु; तीन लघुओं से एक प्लुत; इस प्रकार ताल जाननेवाले पूर्वकाल के विद्वानों ने तालगति का वर्णन किया है। ।।४९१, ४९२, ४९३।।

यहाँ कालरूप प्रथम प्राण समाप्त हुआ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अथ मार्गप्राणः –(तथाच रत्नाकरः)
मार्गाः स्युस्तत्र चत्वारो ध्रुवश्चित्रश्च वार्तिकः।
दक्षिणश्चेति तत्र स्याद् ध्रुवके मात्रिका कला ।।४९४।।

इत्यादि देशभेदानुच्चार्य स्वयमाह–
सर्वेषां मतमाश्रित्य मार्गाद्वादशधा कृताः ।।४९५।।
तेषां तु मार्गभेदानां कलाभेदान् प्रचक्ष्महे।
तदर्धार्ध प्रभेदेन शास्त्रतः सांप्रदायतः।।४९६।।
तत्र दक्षिणमार्गे तु मात्राष्टकमुदाहृतम्।
वार्तिके तु चतुर्मात्रश्चित्रमार्गे द्विमात्रकः ।।४९७।।
एकमात्रा चित्रतरे द्रुतश्चित्रतमे मतः।
अतिचित्रतमे मार्गेऽनुद्रुतः परिकीर्तितः ।।४९८।।
चतुर्भागे तदर्धास्यात् कलासकलिता (कलांशकलिता)कृतिः।
त्रुटिस्तदर्धभागः स्यादणुत्रुटिस्तदर्धकम् ।।४९९।।
तदर्धं घर्षणं च स्यात् तदर्धं चानुघर्षणम्।
एतदर्धं स्वरे प्रोक्तं सूक्ष्मतत्त्वार्थ वेदिभिः ।।५००।।

मार्गप्राण (रत्नाकर में है)– मार्गप्राण में चार मार्ग माने गये हैं– ध्रुव, चित्र, वार्तिक और दक्षिण; उनमें ध्रुव मार्ग में एक मात्रा की कला मानी गयी है ।।४९४।।

देश-भेद का उल्लेख कर स्वयं कहा है– सबके मतों का आश्रय लेकर ऐसा सिद्ध होता है कि मार्ग बारह प्रकार के कहे गये हैं ।।४९५।।

उन भिन्न-भिन्न मार्गों की भिन्न कला का निरूपण करते हैं। शास्त्र और संप्रदाय के अनुसार आधा-आधा काल करके ये भेद किये गये हैं ।।४९६।। (संगीत शास्त्र पृ. २१० टिप्पणी द्रष्टव्य – गुरु का नाम कला है।)

दक्षिण मार्ग में आठ मात्राओं की कला है। वार्तिक में चार मात्राओं की कला है। चित्र मार्ग में दो मात्राओं की कला है। चित्रतर में एक मात्रा, चित्रतम में द्रुत कला है (आधी मात्रा)। अति-चित्रतम में अनुद्रुत, चतुर्भाग में उसका आधा भाग कला है। त्रुटि में उसका आधा भाग कला का मात्रा काल है (१/१६)। अनुत्रुटि में उसका आधा, घर्षण में उसका आधा (१/६४) और अनुघर्षण में उसका आधा भाग है। स्वर में उसका आधा भाग है। सूक्ष्मतत्त्व का विचार करनेवालों ने इस प्रकार वर्णन किया है ।।४९७, ४९८,४९९, ५००।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एकावृत्तिर्दक्षिणे स्यात्ततोऽधोऽधो (द्वे द्वे) प्रयोजयेत्।
यदा(लक्ष्येण) लक्षणसहितं कमनीयं तदा भवेत् ।।५०१।।
इति मार्गाः । द्वितीयः प्राणः।

अथ क्रिया प्राणः
निःशब्दा शब्दयुक्ता च क्रिया च द्विविधा मता।
निःशब्दा च कला प्रोक्ता चतुर्धा सा प्रकीर्तिता ।।५०२।।
आवापादिप्रभेदेन तल्लक्षणमथोच्यते।
आवापश्चाथ निष्क्रामो विक्षेपश्च प्रवेशकः ।।५०३।।
निःशब्देति चतुर्धोक्ता सशब्दापि चतुर्विधा।
ध्रुवःशम्पा तथा तालः सन्निपात इतीरिता ।।५०४।।
पातः कला च सा ज्ञेया तासां लक्ष्माभिधीयते।

(संगीतदर्पण)
आवापस्तत्र हस्तस्योत्तानस्यांगुलिकुंचनात् ।।५०५।।
निष्क्रामोऽधस्तलस्य स्यादंगुलीनां प्रसारणात्।
क्षेपो दक्षिणपार्श्वस्थोत्तानस्य प्रसृतांगुले ।।५०६।।
प्रवेशोऽधस्तलस्य स्याद्विक्षेपोऽगुंलिकुंचनम्।
ध्रुवो हस्तस्य पातः स्याच्छोटिका शब्दपूर्वकः ।।५०७।।
शम्पा दक्षिणहस्तस्य (पात) तालो वामकरस्य (पात) तु।
उभयो सन्निपातः स्यात्तासां मार्गवशान्मितिः ।।५०८।।
इत्यष्टौ क्रिया तृतीयः क्रियाप्राणः।

दक्षिण मार्ग में एक वृत्ति होती है, और उसके बाद नीचे-नीचे (दो-दो) का प्रयोग करना चाहिए। लक्षण का समन्वय होने से ही सुंदरता प्रतीत होती है ।।५०१।।

यहाँ द्वितीय मार्गप्राण समाप्त हुआ।

क्रिया प्राण--क्रिया दो प्रकार की है- निःशब्द और सशब्द। निःशब्द क्रिया को कला कहते हैं- वह चार प्रकार की है- आवाप, निष्क्राम, विक्षेप, प्रवेशक। आवापादि के लक्षण कहते हैं। सशब्द भी चार प्रकार की है- ध्रुव, शम्पा, ताल, सन्निपात। पात को कला (सशब्द कला) समझना चाहिए। अब उनके लक्षण कहते हैं- आवाप-- हाथ को उत्तान (उपरिमुख) स्थिति में रखकर अंगुलियाँ कुंचित करना। निष्क्राम-- अधोमुख हाथ की अंगुलियाँ पसारना। क्षेप (विक्षेप) दक्षिण पार्श्व में हाथ ले जाकर उत्तान हाथ की अंगुलियाँ पसारना। प्रवेश--

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अधोमुख हस्त का अंगुलिकुंचनपूर्वक नीचे ले जाना। ध्रुवा-- चुटकी बजाते हुए हाथ गिराना। शम्पा-- दक्षिण हाथ का आघात। ताल--बायें हाथ का आघात। सन्निपात-- दोनों हाथों की एककालिक क्रियीं से परस्पर आघात। मार्गानुसार उन क्रियाओं का नाप किया जाता है। ये आठ क्रियाएं समाप्त। तृतीय क्रिया प्राण समाप्त ।।५०२, ५०३, ५०४, ५०५, ५०६, ५०७, ५०८।।

अथ अंगप्राणः

अणुद्रुतो द्रुतश्चेति दविरामो लघुस्तथा।
लविरामो गुरुश्चेति प्लुतश्चेति यथाक्रमम् ।।५०९।।
सप्तांगानि क्रमात्ताले ज्ञातव्यानिसदा बुधैः।
अणुद्रुतो वातजातो द्रुतश्च जलसंभवः ।।५१०।।
समीर जलसंभूतो दविरामो हि कथ्यते।
लघुरग्निभवः प्रोक्तो लविरामो जलाग्निना ।।५११।।
गुरुराकाशसम्भूतो दीप्तो (प्लुतः) धरणिसंभवः।
अणुद्रुते चन्द्रदेवो द्रुते शंभुर्विधीयते ।।५१२।।
दविरामे कुमारः स्याल्लघौ देवी स्मृता बुधैः।
लविरामे स्मृतो जीवो गुरौ गौरीयुतः शिवः ।।५१३।।
दीप्ते त्रयो विरिंचाद्या देवतामुनिभिः स्मृताः।
तित्तिरिश्चटकश्चैव बकचातक (चाषश्च) कोकिलाः।।५१४।।
वायसः कुक्कुटश्चैव क्रमादुच्चारयन्त्यमी।
अण्वाद्यक्षरकैर्ज्ञेयाः सन्ति संज्ञान्तराण्यपि ।।५१५।।

अंगप्राण- अणुद्रुत, द्रुत, दविराम, लघु, लविराम, गुरु, प्लुत- ये सात अंग यथाक्रम ताल में होते हैं ।।५०९।।

अणुद्रुत वायु से उत्पन्न है, द्रुत जल से, दविराम वायु और जल से, लघु अग्नि से उत्पन्न है, लविराम जल और अग्नि से, गुरु आकाश से, दीप्त यानी प्लुत धरणी से पैदा हुआ है ।।५१०, ५११।।

अणुद्रुत के देवता चन्द्र, द्रुत के देवता शंकर, दविराम के देवता कार्तिक स्वामी, लघु के देवता देवी, लविराम के देवता बृहस्पति, गुरु के देवता गौरी सहित शंकर, दीप्त (प्लुत) के देवता ब्रह्मा-विष्णु-महेश तीनों हैं; ऐसा मुनियों ने कहा है ।।५१२-५१३।।

तित्तिरि (तीतर), चटक (छोटी चिड़िया), बक, चातक, कोकिल, कौवा और कुक्कुट-ये सात पक्षी क्रम से अणुद्रुतादि का उच्चारण करते हैं। इनकी अणु इत्यादि अनेक संज्ञाएं हैं, उन्हें जानना चाहिए ।।५१४-५१५।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अणुद्रुतश्चार्धचन्द्रः करजं चार्धबिन्दुकम्।
अर्धद्रुतं चाणुसंज्ञं सांकुशं धनुसंज्ञकम् ।।५१६।।
अणावेतानि नामानि कथितानि विपश्चिता।
बिन्दुकं व्यंजनं शून्यं द्रुर्दुतं चार्धमात्रकम् ।।५१७।।
सुवृत्तं च तथा ज्ञेयमाकाशं च तथोत्तमम्।
खं कूपं वलयं ज्ञेयं द्रुते नामान्यनुक्रमात् ।।५१८।।
व्यापकः सरलो ऱ्हस्वः शरो दण्डो लमात्रिकः।
लघौ मेरुरिमाः संज्ञाबाणाख्याः (बाणपर्यायाः) सर्वसम्मताः ।।५१९।।
दीर्घो वक्रो द्विमात्रः स्याद् पूज्यो गोऽथ कलाभिधः।
केयूरनूपुरौ हारस्ताटंकः कंकणो गुरुः ।।५२०।।
गुरोश्च यानि नामानि गुरुत्वात्तान्यपि ध्रुवम्।
त्रिमात्रः सामजं शृंगी प्लुतो दीप्तः प्लुतो भवेत् ।।५२१।।
त्र्यंगं सामोद्भवं ज्ञेयं तारस्थानं (भारस्थानं इति मूले) प्लुतो मतम्।
अनुद्रुतश्चातिसूक्ष्मघाते योज्यो विचक्षणैः ।।५२२।।
सूक्ष्मघाते द्रुतं पूर्णघाते लघुरिहोदितः।
घातक्षेपे गुरुर्ज्ञेयो दीप्ते घातान् करभ्रमः ।।५२३।।

अणुद्रुत, अर्धचन्द्र, करज (नख), अर्धबिन्दु, अर्धद्रुत, अणु, अंकुश, धनु-ये नाम अणु (अणुद्रुत) के हैं ।।५१६।।

बिन्दु, व्यंजन, शून्य, द्रु, द्रुत, अर्धमात्र, सुवृत्त, आकाश, उत्तम, ख, कूप, वलय-ये नाम द्रुत के हैं ।।५१७-५१८।।

व्यापक, सरल, ऱ्हस्व, शर, दण्ड, ल, मात्रिक, मेरु और बाण के सर्वपर्याय लघु के वाचक हैं ।।५१९।।

दीर्घ, वक्र, द्विमात्र, पूज्य, ग, कला, केयूर, नूपुर, हार, ताटंग, कंकण, गुरु, गुरु बृहस्पति के सर्व पर्यायशब्द गुरु के नाम हैं ।।५२०।।

त्रिमात्र, सामज, शृंगी, प्लुत, दीप्त, त्र्यंग, सामोद्भव, तारस्थान। अतिसूक्ष्म घात में अनुद्रुत का प्रयोग करना चाहिए, सूक्ष्मघात में द्रुत, पूर्णघात में लघु, घातक्षेप में गुरु, घात के बाद कर को घुमाना प्लुत में, ऐसा विद्वानों को जानना चाहिए ।।५२१, ५२२, ५२३।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(अत्यल्पघातेऽणुर्ज्ञेयः सूक्ष्मघाते द्रुतो मतः।
पूर्णघाते लघुः प्रोक्तो घातक्षेपे गुरुर्मतः।
घातात् करभ्रमो यत्र प्लुतो ज्ञेयो विचक्षणैः ।।) – मूले पुनरुक्तिः।
विना तालेन गीतादेर्गीतशुद्धिर्न जायते।
कर्णधारं विना नाव इवातस्तान् प्रचक्ष्महे ।।५२४।।
तालस्तल प्रतिष्ठायामिति धातोर्घञि स्मृतः।
गीतं वाद्यं तथा नृत्यं भाति ताले प्रतिष्ठितम् ।।५२५।।
तकारे शंकरः प्रोक्तो लकारे पार्वती स्मृता।
शिवशक्ति समायोगात्ताल इत्यभिधीयते ।।५२६।।

(अथ ताल लक्षणानि)–
नारद पंचमसार संहितायां–
प्रत्यक्षरे विरामश्चेत् सर्वतालादिसंभवः।
एकतालः स कथितो देवैराद्यमुदाहृतम् ।।५२७।।

(अथ वसुतालः)–
आदौ गुरुर्लघुश्चाथ चरणे चरणे भवेत्।
गायकानां मनोहारी वसुतालस्तदा भवेत् ।।५२८।।

(अथ यतितालः)
आदौ गुरुर्लघुद्वंद्वं चरणे चरणे भवेत्।
यतितालः स कथितो नृत्यभूमौ गुणीश्वरैः ।।५२९।।

(अति अल्पघात में अणु, सूक्ष्मघात में द्रुत, पूर्णघात में लघु, घातक्षेप में गुरु, घात के बाद जहाँ हस्त का भ्रमण है, वहाँ प्लुत कहा गया है, ऐसा विद्वानों को जानना चाहिए।)

ताल के बिना गाने में शुद्धता नहीं आती, जैसे कर्णधार के बिना नौका चल नहीं सकती। इसलिए तालों का निरूपण करते हैं ।।५२४।।

'तल प्रतिष्ठायाम्' ऐसे धातुपाठ में तल धातु का अर्थ प्रतिष्ठा (आधार) कहा गया है। उससे 'घञ' (अ) प्रत्यय लगाकर 'ताल' शब्द बन जाता है। गीत, वाद्य और नृत्य– इन तीनों की प्रतिष्ठा ताल में है, इसी के आधार से ये तीनों चलते हैं ।।५२५।।

त-कार में शंकर देवता और ल-कार में पार्वती अधिष्ठित है। शिव और शक्ति के समायोग से ताल शब्दार्थ का व्यवहार होता है ।।५२६।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नारद पंचमसार संहिता के अनुसार अब तालों के लक्षण बताते हैं-

एकताल--प्रत्येक अक्षर पर ठहरना जिसमें होता है, ऐसा एकताल है। सर्व तालों में प्रथम एकताल है ॥५२७॥

वसुताल-- पहले गुरु, बाद में लघु- ऐसा प्रत्येक चरण में हो, तो वह गायकों का मन मोहनेवाला वसुताल होता है ॥५२८॥

यतिताल-- आदि में गुरु, बाद में लघु-ऐसा प्रत्येक चरण में हो, तो नर्तनशास्त्र में गुणियों में श्रेष्ठ लोग उसे यतिताल कहते हैं ॥५२९॥

अथ तालास्तत्रैव--

(नारद पंचमसार संहितायां)

तालस्यमानं नियमेन घातम्।

तालाश्च शून्यर्त्तु (शृण्वन्तु) गुण प्रचाराः ॥(३६०)॥

भद्रः सुभद्रश्च तथातिभद्रो (ऐते भरतपुत्राः)।

निनाय तालान् दिवि खर्त्तुचन्द्रान् ॥५३०॥

एकाधिक शतांस्तालान् विश्वभद्रोमहीतले।

गुणिनामुपकाराय सर्वतः समचारयत् ॥५३१॥

अष्टोत्तरशतं स्वर्गे पांचाले पंचकं तथा।

दक्षिणे पंच, लंकायां सप्त, सप्त च सिंहले ॥५३२॥

पूर्वे पंच समादेया उत्तरे पंचकं तथा।

पूर्वभागे चोत्तरे च क्रमेणैव विभागितम्।

प्रचरन्ति च ते ताला गौड़ेत्वष्टादश ध्रुवम् ॥५३३॥

वाद्याश्चतस्रस्तु कला लये तु कलाद्वयं पूरणके च वाद्यम्।

कलाद्वयं स्यादथ घातिनीषु पूर्वाक्षरं स्याद्गुरुरेव तस्मात्॥५३४॥

कलाष्टतो यद्यधिका कलास्यात् सा वादनीया वलये विदग्धैः ।

न पूरणे नापि च घातिनीषु न चोन्नतस्यापि लये विधेया ॥५३५॥

नारद पंचमसार संहिता में तालों का इस प्रकार वर्णन है-- नियमपूर्वक घात करना ही ताल का मान (नापने का साधन) है। ताल शून्य, ऋतु और गुण नाम से प्रसिद्ध हैं ॥(३६०)॥

भद्र, सुभद्र और अतिभद्र- ये तीन भरतपुत्र १६० ताल स्वर्ग में लाये ॥५३०॥

विश्वभद्र १०१ ताल पृथ्वी पर लाये और गुणीजनों ने लोगों के उपकार के लिए सर्वत्र उनका प्रसार किया ॥५३१॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१०८ स्वर्ग में, ५ पांचाल में, ५ दक्षिण में, ७ लंका में, और ७ सिंहल में, ५ पूर्व में, ५ उत्तर में, पूर्वोत्तर भाग में क्रम से ही विभाग किया; गौड़ देश में १८ ताल प्रचलित हैं ।।५३२, ५३३।।

लय में चार कला बजाने योग्य हैं। दो कला पूरणक में बजाना चाहिए। घातिनी में दो कलाओं को बजाना चाहिए, इसीलिए पूर्वाक्षर गुरु होता है ।।५३४।।

आठ कलाओं से अधिक कला हो, तो उसे जानकार लोगों को वलय में बजाना चाहिए; पूरण, घातिनी में नहीं बजाना चाहिए, उन्नत की लय में भी नहीं बजाना चाहिए ।।५३५।।

शीघ्रं गुरुर्घातर्युगस्त्रिघातः प्लुतस्तथास्याल्लघुरेकघातः।
विरामयुक्त द्रुत एक घातो धीरैः कलानां विषये निरुक्तः ।।५३६।।
(प्रत्यक्षरे विरामश्चेत सर्वतालादिसंभवः।
एक तालः स कथितो देवैः .... उदाहरणः।।)

(अथ धरणः)
यतितालो यदान्तस्थो धृतो गुणमुनीश्वरैः।
तदा धरण नाम्नैव प्रसिद्धो गुणिसंसदि ।।५३७।।

(अथ छोटः)
प्लुतस्त्रिमातृकः शंभुदैवतः स्यात् पदे पदे।
आदिमध्यावसाने च छोटः किल स उच्यते ।।५३८।।

(अथ गन्दलः)
द्रुतद्वयं लघुश्चैकताले गन्दल नामा।

(अथ विषमः)
चतुर्द्रुतानि च लघुर्भवेद्विषमतालके ।।५३९।।

(अथ युग्मकः)
द्रुतद्वयं लघुश्चैकचरणे भवेद्युग्मकम्।

(अथ षट्पदी)–
द्रुतद्वयं लघुः प्लुतश्च तालः षट्पदी भवेत् ।।५४०।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(अथ विषमसन्धिः)
आदावन्ते लघुद्वन्द्वं गुरुर्मध्ये यदाभवेत्।
तदा विषमसन्धिः स्यात्तालो भरतसम्मतम् ।।५४१।।

(अथ हरगौरी)–
द्रुतद्वयं लघुश्चैको गुरुर्लघुयुगं तदा।
हरगौरीति तालः स्यात् द्वौ प्लुतावन्ततो यदि ।।५४२।।

(अथ यमकः)
गुरुद्वयं लघुत्रयं ततः प्लुतो गुरुर्लघुः।
चरणे चरणेऽप्येवं स तालो यमको भवेत् ।।५४३।।

गुरु में जल्दी दो घात करने चाहिए, प्लुत तीन घातवाला होता है, लघु का एक घात होता है; विरामयुक्त द्रुत हो तो एक ही घात होता है; विद्वानों ने कलाओं के बारे में ऐसा कहा है ।।५३६।।

धरण-- यतिताल जिस समय अन्तःस्थ (अन्दर, मध्य में) धारण किया जाता है, तो श्रेष्ठ मुनियों ने उसकी प्रसिद्धि धरण नाम से की है। गुणियों की संसद में वह धरण नाम से व्यवहृत होता है ।।५३७।।

छोट-- प्लुत तीन मात्राओं का होता है, उसके देवता शंभु हैं, आदि, मध्य और अन्त में प्लुत होता है, उसे छोट कहते हैं ।।५३८।।

गन्दल-- दो द्रुत, एक लघु एक ताल में हो तो गन्दल होता है।

विषम-- चार द्रुत और एक लघु एक चरण में हो तो विषमताल होता है ।।५३९।।

युग्मक-- एक चरण में दो द्रुत, एक लघु हो, तो युग्मक ताल होता है।

षट्पदी-- दो द्रुत, एक लघु, एक प्लुत एक चरण में हो तो षट्पदी ताल होता है ।।५४०।।

विषमसन्धि-- आदि और अंत में दो-दो लघु, मध्य में गुरु हो, तो वह ताल विषमसन्धि होता है, यह भरतसम्मत है ।।५४१।।

हरगौरी-- दो द्रुत, एक लघु, एक गुरु, दो लघु और अंत में दो प्लुत हों, तो हरगौरी ताल होता है ।।५४२।।

यमक-- प्रत्येक चरण में दो गुरु, तीन लघु, एक प्लुत, एक गुरु, एक लघु हो, तो यमक ताल होता है ।।५४३।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(अथ देशकौशिकी)–
गुरुद्वयं लघुद्वयं प्लुतो लघुः परं भवेत्। (गुरुद्वयं लघु प्लुतस्ततः प्लुतगुरुर्लघुः)
चरणे-चरणे यत्र स तालो देशकौशिकी (दशकुशी) ।।५४४।।

(अथ कुन्दशेखरः)–
प्लुतो गुरुस्ततः प्लुतो गुरुस्ततः प्लुतो लघुः।
चरणे चरणेऽप्येवं स तालः कुन्दशेखरः ।।५४५।।

(अथ आटनी)–
गुरुद्वयं प्लुतो गुरुस्ततः प्लुतस्ततो गुरुः।
आदौ गुरुर्लघुद्वयं लघुस्ततोऽपरो मतः ।।५४६।।
यदि चाष्टकलातोऽपि न्यूनता स्यात् पदे पदे।
आटनी नाम तालः स्यात्तदा सर्वमनोहरः ।।५४७।।
इति संगीतशास्त्रं च यो जानाति प्रमाणतः।
परमानन्दरूपोऽसौ विष्णुलोके महीयते ।।५४८।।
मार्गदेशीविभेदेन तालोऽपि द्विविधो मतः।
तत्र देशस्थयारीत्या यत् स्याल्लोकानुरंजकम् ।।५४९।।
देशे देशे तु तत्तालं तद्देशीयमितीर्यते।
अतो हि गौड़देशीय तालानेव प्रचक्ष्महे ।।५५०।।

देशकौशिकी– दो गुरु, दो लघु, एक प्लुत, एक लघु–प्रत्येक चरण में हो तो वह देशकौशिकी ताल होता है ।।५४४।।

कुन्दशेखर– प्लुत, गुरु, प्लुत, गुरु, प्लुत, लघु–प्रत्येक चरण में हो, तो वह कुन्दशेखर ताल कहा जाता है ।।५४५।।

आटनी– दो गुरु, प्लुत, गुरु, प्लुत, गुरु; अन्य मत से आदि में गुरु, दो लघु, फिर एक लघु प्रत्येक पद में आठ कला से न्यून हो, तो आटनी नामक ताल होता है। यह सबका मन हरण करनेवाला है ।।५४६-५४७।।

इस प्रकार प्रमाणबद्ध संगीतशास्त्र जो जानता है, वह परमानंद रूप में मग्न होकर विष्णुलोक में पूजित होता है ।।५४८।।

मार्ग और देशी भेद से ताल दो प्रकार का माना गया है, उनमें से देशी पद्धति से लोगों को जो आनंद देता है, देश-देश में वह ताल देशी (उस देश के नाम से) कहा जाता है। इसलिए गौड़देशीय तालों को ही कहते हैं ।।५४९-५५०।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(अथ गौड़ताला:)
(शब्द कल्पद्रुम)
आदावष्टौ तथा रुद्रब्रह्मेन्द्राश्च चतुर्दशः।
प्रबन्धगाननाट्ये च दशावतार वर्णनम्।
(दशावतारबन्धादि नृत्यनाट्यं ततः परम्) ।।५५१।।
सम्यक् संगीतगानं च तालमाला भवेत् परम्।
संगीतगीतमानं च ऱ्हस्वदीर्घादिभिर्यथा ।।५५२।।

(अथ अष्टौ ताला:)
अडो दोजस्तथा ज्योतिस्तत्परश्चन्द्रशेखरः।
गंजनः पंचतालश्च रूपकः समतालकः ।।५५३।।

(लक्षणानि–)
एकतालस्तथा शून्यं युगलं तालिका परे।
संगीत प्रथमः सारः आडतालः प्रकीर्तितः ।।५५४।।
एकतालं च शून्यं च क्रमेणापि त्रिधा भवेत्।
शेषं शून्यं कलाभेदे दोजाख्यो हि भवेत् पृथक् ।।५५५।।
प्रथमे युगलं तालमेक एक स्तथा परे।
कलाभेदे तालभेदो ज्योतिश्च परिकीर्तितः ।।५५६।।

अब गौड़तालों का निरूपण करते हैं- प्रथम अष्टताल, रुद्रताल, ब्रह्मताल, इन्द्रताल और चतुर्दशताल हैं। प्रबन्धगान, नाट्य, दशावतारवर्णन (दशावतारबन्धादि, नृत्यनाट्य) में संगीत का अच्छी तरह से गान, बाद में तालमाला, संगीत और गीत का मान (माप), ऱ्हस्वदीर्घादि रूप से स्वरूप- निर्णय कहा जायगा ।।५५१, ५५२।।

अब अष्टताल का वर्णन करते हैं- अड, दोज, ज्योति, चन्द्रशेखर, गंजन, पंचताल, रूपक, समताल–नामक आठ ताल हैं ।।५५३।।

लक्षण- एकताल, उसके बाद शून्य युगल, फिर ताली, सर्वतालों का सारभूत यह प्रथम ताल- आड (अड) ताल नाम से कहा गया है ।।५५४।।

एक ताल और शून्य- ऐसा क्रम से तीन बार हो, भिन्न कला में और शेष शून्य हो, तो वह दोज नामक ताल होता है ।।५५५।।

प्रथम युगल ताल हो, फिर एक-एक हो, प्रत्येक कला के भेद में ताल का भी भेद हो, वह ज्योति ताल है ।।५५६।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चन्द्रश्चन्द्रस्तथा युग्मं तथा चन्द्रस्तथा परे।
षट्तालंच भवेच्चैव चन्द्रशेखर भाषितः।।५५७।।
एकतालं भवेच्छ्रेष्ठं क्रमेणापि चतुष्टयम्।
शेषशून्यं गंजनं च सर्वतो मुनिभाषितम्।।५५८।।
प्रथमं युगलं तालमेक तालं ततः परम्।
शेषे युग्मं तथा शून्यं पंचतालः प्रकीर्तितः ।।५५९।।
प्रथमे युगलं तालं तत्परं शून्यमेव च (तालमेककं च)
शेषं च युगलं तालं रूपकः परिकीर्तितः ।।५६०।।
एकतालं तथा शून्यं क्रमेण हि द्विधा भवेत्।
शेषं च युग्मतालं च समतालो भवेत् परः ।।५६१।।
इत्यष्टतालात् किल सारभूतात् विधानतः शून्यकलाविभेदात्।
सर्वोपरिस्थेन गायति स्म देवर्षिरितेन च देवदेवम् ।।५६२।।

'चन्द्र', 'चन्द्र', इसी प्रकार 'युग्म' फिर चन्द्र, इस प्रकार षट्ताल हो, तो उसे चन्द्रशेखर कहते हैं ।।५५७।।

एकताल और श्रेष्ठ, क्रमसे चार बार हो और शेष शून्य हो तो वह गंजन है, ऐसा मुनियों ने कहा है ।।५५८।।

प्रथम युगल ताल, उसके बाद एकताल, और शेष में युग्म और शून्य हो, तो उसे पंचताल कहते हैं ।।५५९।।

प्रथम युगल ताल, उसके बाद शून्य, शेष में युगल ताल हो, तो उसे रूपक कहते हैं ।।५६०।।

एकताल, शून्य- ऐसा क्रम से दो प्रकार से (दो बार) हो और शेष युग्मताल हो, तो श्रेष्ठ समताल है ।।५६१।।

तालों में सारसर्वस्व इन आठ तालों से, शास्त्रकथित मार्ग से, शून्यकलादि के विभागानुसार देवर्षि नारद देवों के देव भगवान् नारायण का गान (स्तुति) करते हैं ।।५६२।।

(अथ रुद्रतालाः)
वीरविक्रमः समुद्रः स विषमो धरणस्तथा।
वीरदशको मण्डूकश्च कन्दर्पो डासपाहिडः ।।५६३।।
ध्रुवचरणो दशकोषी च गजेन्द्रगुरुछट्टकौ।
इत्येकादश तालाश्च रुद्राख्याः परिकीर्तिताः ।।५६४।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(अथ लक्षणानि)–
एकतालं तथा शून्यं क्रमेण त्रिविधं भवेत्।
तत्परं युग्मतालं च इत्येवं वीरविक्रमः ।।५६५।।
युग्मतालं तथा शून्यं तत्परं द्वयतालकम्।
शेषं च युगलं चैव (तालं) समुद्रविषमो भवेत् ।।५६६।।
युग्मतालं च शून्यं च ह्येकतालं च तत्परे।
शेषैकत्र त्रिशून्यं च विषमं धरणं भवेत् ।।५६७।।
एकतालं तथा शून्यं क्रमेणापि त्रिधा भवेत्।
युगलं युगलं पश्चात् स वीरदशको भवेत् ।।५६८।।

अब रुद्रतालों का निरूपण करते हैं– वीरविक्रम, विषमसमुद्र, विषमधरण, वीरदशक, मण्डूक, कन्दर्प, डासपाहिड, ध्रुवचरण, दशकोषी, गजेन्द्रगुरु, छट्टक– ये ग्यारह ताल रुद्रताल नाम से प्रसिद्ध हैं ।।५६३, ५६४।।

अब इनके लक्षण कहते हैं–

वीरविक्रम-- एकताल, शून्य-क्रमसे तीन बार, उसके बाद युग्मताल, इस प्रकार का वीरविक्रम है ।।५६५।।

समुद्रविषम-- युग्मताल, शून्य, उसके बाद दो ताल, शेष में युगल हो, तो वह समुद्रविषम होता है ।।५६६।।

विषमधरण-- युग्मताल, शून्य, उसके बाद एकताल, शेष में एक साथ तीन शून्य हो, तो विषमधरण होता है ।।५६७।।

वीरदशक-- एकताल, शून्य-क्रम से तीन बार, बाद में युगल, युगल हो, तो वह वीरदशक है ।।५६८।।

प्रथमं त्वेकतालं च एकं शून्यं च तत्परम्।
शेषैकत्र त्रितालंच मण्डूकस्य गतिर्यथा ।।५६९।।

समतालो यथा दृष्टस्तथा कन्दर्पकः स्मृतः।
समताले भवेच्छून्यं कन्दर्पे नापि शून्यता ।।५७०।।
पंचतालात् परं शून्यं श्रेष्ठको डासपाहिड़ः।
अत्यूर्ध्वं च भवेत् त्रस्तः संग्रामस्य गतिर्यथा ।।५७१।।
एकतालस्तथा शून्यं क्रमेणाऽपि द्विधा भवेत्।
शेषैकत्र त्रितालंच ध्रुपदं मुनिभाषितम् ।।५७२।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एकतालमेक शून्यमित्येवं च भवेत् क्रमे।
विराम एकतालं च वाग्भेदे दशकोषिकी ।।५७३।।
युगलं युगलं चैव एकतालं च तत्परम्।
शेषं च युग्मशून्यं च गजेन्द्रगुरुभाषितम् ।।५७४।।
युग्मशून्यं विरामे च एकतालं भवेत् क्रमे।
छट्टकाख्यो महाधीरः संगीते च प्रवीणकः ।।५७५।।
एकादशेमे किल रुद्रतालाः सर्वे मया संकथिताश्च गुह्याः।
ये वादयन्ते जनचित्तरम्यान् ते मानवा धन्यतमा भवन्ति ।।५७६।।

मण्डूक-- प्रथम एकताल, उसके बाद एक शून्य, शेष में एकसाथ त्रिताल होने पर मण्डूक ताल होता है ।।५६९।।

कन्दर्प-- समताल के सदृश ही कन्दर्प कहा गया है। समताल में शून्य होता है, कन्दर्प में वह नहीं होता ।।५७०।।

डासपाहिड-- पंचताल के बाद शून्य हो तो वह सर्वश्रेष्ठ डासपाहिड होता है।

ध्रुवचरण-- जिसमें युद्ध की गति की तरह अतिशय ऊर्ध्व ऐसा त्रस्त होता है, एकताल, शून्य क्रम से दो बार होता है, शेष में एकसाथ त्रिताल होता है, मुनियों के अनुसार वह ध्रुवचरण (ध्रुपद) है ।।५७१-५७२।।

दशकोषी-- एकताल, एक शून्य क्रम से हो, फिर विराम और एकताल हो, तो वह देशकोषी (दशकोषिकी) है ।।५७३।।

गजेन्द्रगुरु-- युगल, युगल, एकताल, शेष में युग्मशून्य हो, तो वह गजेन्द्रगुरु होता है ।।५७४।।

छट्टक -- क्रम से (आरंभ में) एकताल हो, और विराम में युग्मशून्य हो, तो संगीत में महाधीर, प्रवीण छट्टक ताल होता है (इसकी संज्ञा छुट्टक भी है।) ।।५७५।।

ये ग्यारह (११) अति गुप्त रुद्रताल मैंने कहे हैं। जन चित्त को रिंझानेवाले इन तालों को जो बजाते हैं, वे महापुण्यवान् होते हैं ।।५७६।।

अथ ब्रह्मतालाः

ब्रह्मतालान्तरे ब्रह्म विराम ब्रह्मतालकः।
षट्कला सप्तमात्रा च ब्रह्मताल इतीर्यते ।।५७७।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(अथ लक्षणानि)–
युग्मं सत्रस्तं प्रथमैकतालम्।
किंचिद्विरामे तु पुनरेकतालः।
ब्रह्माख्यतालश्च संगीतमध्ये।
कपोतवद् ब्रह्म करोति शब्दम् ।।५७८।।
युग्मतालो भवेत् त्रस्तः एकतालं च तत्परे।
शेषे द्वितयशून्यं च विराम ब्रह्म तालकः ।।५७९।।
प्रथमं चैकतालं च युग्मशून्यं तथापरे।
शेषैकत्र त्रितालं च षट्कला खलु कथ्यते ।।५८०।।
आदौ युग्मं तथा युग्मं त्रितालं च तथापरे।
सप्तमात्रा भवेत्येषा ब्रह्मतालान्तरे शुभा ।।५८१।।

अब ब्रह्मताल कहते हैं– (१) ब्रह्म, (२) विरामब्रह्म, (३) षट्कला (४) सप्तमात्रा – ये चार ताल ब्रह्मताल के अंतर्गत हैं ।।५७७।।

अब इनके लक्षण कहते हैं–

ब्रह्म-- युग्म, त्रस्त सहित एकताल, किंचित् विराम, फिर एकताल,– ऐसा संगीतशास्त्र में ब्रह्मताल कहा गया है। इसमें कबूतर की तरह शब्द होते हैं ।।५७८।।

विरामब्रह्म-- युग्मताल त्रस्त, एकताल, शेष में दो शून्य हो, तो वह विरामब्रह्मताल होता है ।।५७९।।

षट्कला-- प्रथम एकताल, युग्म शून्य, शेष में एकसाथ त्रिताल– ऐसा हो, तो उसे षट्कला कहते हैं ।।५८०।।

सप्तमात्रा-- प्रथम युग्म, फिर युग्म, फिर त्रिताल ऐसा होने पर उसे सप्तमात्रा कहते हैं। ब्रह्मतालों में यह मंगलकारक है ।।५८१।।

अथ इन्द्रतालाः
देवसारो देवचाली मदनदोला तथैव च।
गुरुगन्धर्वपंचाली इन्द्रभास इतीर्यते ।।५८२।।

अथ लक्षणानि–
विरामं तु त्रितालं च एक शून्यं तथापरे।
(शेषेत्रस्तं-रां.क.)
शेषके तु त्रितालश्च देवसार इतीर्यते ।।५८३।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्वितय (द्वितीय) शून्यं विरामे तु त्रितालं च ततः परम्।
शेषे द्विशून्यमित्येवं देवचाली निगद्यते ।।५८४।।
प्रथमं युग्मकं तालं तत् पश्चादेकशून्यकम्।
(विरामे ह्येकतालश्च शून्यमेव विरामके।) मूले इत्यधिकम्
शेषे यत्र त्रितालं च मदनदोला समीरिता ।।५८५।।
युग्मतालं समारभ्य पंचतालं क्रमाद्यदा।
अत्यूर्ध्वं च तथा त्रस्तं गुरुगन्धर्व ईरितः (ईर्यते) ।।५८६।।

अब इन्दताल कहते हैं- (१) देवसार, (२) देवचाली, (३) मदनदोला, (४) गुरुगन्धर्व, (५) पंचाली (६) इन्द्रभास- ऐसे नामों से छः इन्द्रताल प्रसिद्ध हैं ।।५८२।।

अब इनके लक्षण कहते हैं-

देवसार-- विराम, त्रिताल, एकशून्य, शेष में त्रिताल ऐसा देवसार कहा जाता है ।।५८३।।

देवचाली-- द्वितय शून्य, विराम, उसके बाद त्रिताल और शेष में दो शून्य- ऐसा देवचाली कहा जाता है ।।५८४।।

मदनदोला-- प्रथम युग्मक ताल, उसके बाद एक शून्य और शेष में त्रिताल हो, तो उसे मदनदोला कहते हैं ।।५८५।।

गुरुगन्धर्व-- युग्मताल से आरंभ करके क्रम से पाँच ताल यदि हों, तो और अति ऊर्ध्व ऐसा त्रस्त हो तो गुरुगन्धर्व ताल होता है ।।५८६।।

श्रावणस्य यथा धारा तथा तालो भवेद् घनः।
पंचतालान्तरे नीतः पंचचाली (पंचाली) प्रकीर्तितः ।।५८७।।
चतुस्तालं विरामे (सविरामे) तु त्रितालं शून्यमेव च।
मेघारम्भे यथा केका श्रूयन्ते चेन्द्रभाषितः ।।५८८।।
ऐरावतस्थः कुलिशं दधानो निरन्तरं भासित ब्रह्मवार्तः।
संगीतमध्ये च पुरन्दरेति नाम्ना प्रसिद्धः सुरताल एषः ।।५८९।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अथ चतुर्दश तालाः (इदं मूले न वर्तते)
(चिह्नश्च चन्द्रमात्रा च देवमात्रार्धज्योतिका।
स्वर्गसारः क्षमाष्टश्च तथैव च धराधरा।
वसन्तवाक् काककला कीरशब्दाथ ताण्डवी।
हर्षधारा तथा भाषा चार्द्धमात्र चतुर्दशी।
अथ लक्षणानि शब्दकल्पद्रुमे
एकतालं च शून्यं च क्रमेण त्रितयं ततः।
शेषे चतुष्टयं त्रस्तं चिह्नताल इतीर्यते ।।१।।

पंचमाली-- सावन की धारा जैसे सान्द, भरी-पूरी होती है, ऐसा जो सघन ताल है और पंचतालों के अंतर्गत लिया गया है, वह पंचचाली है ।।५८७।।
इन्द्रभास-- विराम के सहित चतुस्ताल, त्रिताल, शून्य, ऐसा हो और वर्षारंभ में जैसी मयूरवाणी सुनायी देती है, वैसी आवाजवाला हो, तो वह इन्द्रभास है ।।५८८।।
इन्द्रताल-- ऐरावत पर बैठा हुआ, हाथ में वज्र धारण किया हुआ, निरन्तर ब्रह्म-चर्चा से सुशोभित, ऐसे स्वरूपवाला यह ताल देवताल है और संगीतशास्त्र में पुरंदर यानी इन्द्र के नाम से 'इन्द्रताल' रूप में प्रसिद्ध है ।।५८९।।
अब चतुर्दश तालों का निरूपण करते हैं- (यह मूल में नहीं है)-
(चिह्न, चन्द्रमात्रा, देवमात्रा, अर्द्धज्योति, स्वर्गसार, क्षमाष्ट, धराधरा, वसन्तवाक्, काककला, कीरशब्दा, ताण्डवी, हर्षधारा, भाषा, अर्द्धमात्रा- ये चौदह ताल चतुर्दशताल के नाम से प्रसिद्ध हैं।
इनके लक्षण-
चिह्नताल-- एक ताल, शून्य क्रम से तीन, शेष में चतुष्टय त्रस्त हो, तो वह चिह्नताल है ।।१।।

एकचन्द्रस्तथा युग्मं तालं प्रत्येकतस्त्रयम्।
शेषे त्रीणि च शून्यानि चन्द्रमात्रा भवेत् परा ।।२।।
प्रथमं षट्कतालं च अत्यूर्ध्वं तु भवेत् क्रमे।
शेषे युग्मं तथा शून्यं देवमात्रा च सोच्यते।।३।।
चन्द्रशून्यं त्रितालंच विरामेण क्रमेण तु।
अत्यूर्ध्वं तु भवत्येवमर्द्धज्योतिरिरिति स्थितिः ।।४।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एकैक तालान्तर युग्मतालात्।
शून्यत्रयं तत्परमेक तालम्।
कलाभिदा शून्यभिदा समाख्या।
स स्वर्गसाराख्य नवीनताल: ।।५।।
युग्मशून्यं विरामेण देवतालमिति क्रमात्।
क्षमाष्टाख्योऽन्तरे शून्यमिति सर्वत्र भाषितम् ।।६।।
नवाम्बुदे दामिनि शीघ्रयानम्।
तथा सुसम्बद्ध सुतालमानम्।
युग्मं सत्रस्तं क्रमतश्च तालम्।
शेषे त्रितालंच धराधराख्या ।।७।।

चन्द्रमात्रा-- एक चन्द्र, युग्म, प्रत्येक से तीन ताल और शेष में शून्य हो, तो वह चन्द्रमात्रा है ।।२।।

देवमात्रा-- प्रथम छ ताल, क्रम से अत्यूर्ध्वं हो, शेष में युग्म और शून्य हो, तो वह देवमात्रा कही जाती है ।।३।।

अर्द्धज्योति-- चन्द्र, शून्य, त्रिताल- ये विराम के साथ क्रम से हों, अति ऊर्ध्वं भी हो, तो वह अर्द्धज्योति है ।।४।।

स्वर्गसार-- एक-एक ताल के बीच में युग्म ताल हो, फिर तीन शून्य हों, उसके बाद एकताल हो, कलाभेद से शून्यभेद हो, तो वह स्वर्गसार नाम का नवीन ताल हो जाता है ।।५।।

क्षमा ट-- युग्मशून्य विराम के साथ हो, देवताल हो और बीच में शून्य हो, तो वह क्षमाष्ट ताल कहा गया है ।।६।।

धराधरा-- नये मेघ में बिजली की शीघ्र गति होती है, वैसे ही जिसमें ताल का ज्ञान सुसम्बद्ध रूप में होता है; युग्म, त्रस्त, उसके बाद ताल और शेष में त्रिताल है। तो धराध रा नामक ताल होता है ।।७।।

एकतालंच शून्यं च क्रमेणापि चतुष्टयम्।
क्रमात्तालत्रयंचैव कथितो हि वसन्तवाक् ।।८।।
सविरामं द्वयं तालं युग्मतालं तथा परे।
शेषैकत्र त्रितालंच भवेत्काककलेति सा ।।९।।
त्रितालंच भवेत् त्रस्तं तत् परं त्वेकतालकम्।
शेषे यदा त्रितालं स्यात् कीरशब्दा तदा भवेत् ।।१०।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

युग्मं युग्मं तथा युग्मं तालमेकं क्रमाद् भवेत्।
शेषशून्यं कलाभेदे ताण्डवीति भवेत् पृथक् ।।११।।
सविरामं द्वयं तालं युग्मशून्यं च तत्परम्।
शेषोर्ध्वं तु त्रितालंच हर्षधारा प्रकीर्तिता ।।१२।।
चन्द्रशून्यं विरामेण द्वयं तालं भवेत् क्रमात।
अत्यूर्ध्वं तु भवेत् त्रस्तं भाषाख्यस्ताल उत्तमः ।।१३।।
अत्यूर्ध्वं तु त्रितालंच द्वयं तालं विरामकम्।
इत्यर्धमात्रा संगीतशास्त्रे प्रोक्ता बुधैर्वरा ।।१४।।
इति शिवनारद संवादे संगीतदामोदरमतमाश्रित्य
गौड़देशीय तालाः।

वसन्तवाक्--एकताल और शून्य क्रम से चार हों और क्रम से तीन ताल हो, तो वह वसन्तवाक् होता है ।।८।।

काककला-- प्रथम विराम के बाद दो ताल, उसके बाद युग्मताल, उसके बाद युग्मताल, शेष में एकत्र त्रिताल त्रिताल हो, तो वह काककला नामक ताल होता है ।।९।।

कीरशब्दा-- त्रिताल त्रस्त हो, उसके बाद एकताल हो, शेष में त्रिताल हो, तो उसे कीरशब्दा कहते हैं ।।१०।।

ताण्डवी-- युग्म, युग्म, फिंर युग्म और एकताल क्रम से हों और कलाभेद में शेष शून्य हो, तो वह ताण्डवी नामक ताल होता है ।।११।।

हर्षधारा-- विराम के साथ दो ताल, उसके बाद युग्म शून्य, शेष में ऊर्ध्वं और त्रिताल हो, तो वह हर्षधारा नामक ताल कहा गया है ।।१२।।

भाषा-- विराम के साथ चन्द्र शून्य हो, फिर क्रम से तालद्वय हो और अत्यूर्ध्व त्रस्त हो, तो वह भाषा नामक उत्तम ताल होता है ।।१३।।

अर्द्धमात्रा-- अत्यूर्ध्व, त्रिताल, तालद्वय विराम के साथ हो, तो वह संगीतशास्त्र में अर्द्धमात्रा कही गयी है ।।१४।।

।। इस प्रकार शिवनारद संवाद का विषय, जो गौड़-देशीताल का है, संगीत दामोदर के मतानुसार समाप्त हुआ।।

अथ नाट्यमाह

तत्रादौ नाट्यवेदोत्पत्तिमाह-
इहानुश्रूयते ब्रह्मा शुक्रेणाभ्यर्थितः पुरा।
चकाराकृण्य वेदेभ्यो नाट्यवेदं च पंचमम् ।।५९०।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भरताय ददौ पूर्वं नाट्यवेदं चतुर्मुखः।
स नाट्यनृत्यनृत्तानि शंभोरग्रेप्रयुक्तवान् ।।५९१।।

तत्र च—
नर्तनं त्रिविधं नाट्यनृत्यनृत्तमिति क्रमात्।
तत्र नाट्यं यथा—
योऽयं स्वभावो लोकस्य नानावस्थान्तरात्मकः।
सत्वंगाभिनयैर्युक्तो नाट्यमित्युच्यते बुधैः।।५९२।।

अपरंच—
नाटकस्थित वाक्यार्थपदार्थाभिनयात्मकम्।
तदाद्यभरतेनोक्तं रसभावसमन्वितम्।
नाटकादिषु तन्नूनमुपयुक्तं मुनीश्वरैः।।५९३।।

।।अब नाट्य का निरूपण करते हैं।।

पहले नाट्यवेदोत्पत्ति कहते हैं– गुरु परंपरा से ऐसा सुना जाता है कि प्राचीन काल में इन्द्र ने ब्रह्मदेव के पास जाकर प्रार्थना की, तब उनकी प्रार्थना के अनुसार ब्रह्मदेव ने यह पाँचवाँ नाट्यवेद बनाया ।।५९०।।

ब्रह्मदेव ने नाट्यवेद की रचना कर पहले भरत को दिया, भरत ने नाट्य, नृत्य और नृत्त का प्रयोग शिवजी के समक्ष किया ।।५९१।।

इसमें नर्तन के तीन प्रकार हैं– क्रमशः नाट्य, नृत्य और नृत्त।

उसमें नाट्य इस प्रकार है– भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में लोगों का जो स्वभाव है, वह अंगाभिनय से युक्त होने पर नाट्य कहा जाता है।।५९२।।

और भी ऐसा है– नाटक के अन्दर जो वाक्य और पद आते हैं, उनके अर्थ का (वाक्यार्थ और पदार्थ का) अभिनयात्मक जो रूप भरत नामक आद्याचार्य ने कहा है वही रूप, रस और भाव के साथ होने से उसे नाट्य कहा जाता है। श्रेष्ठ मुनियों ने उसका उपयोग प्रायः नाटकादि में किया है ।। ५९३।।

अथ नृत्यम्—
देशरीत्या प्रतीतो यस्तालमानलयाश्रितः।
सविलासांगविक्षेपो नृत्यमित्युच्यते बुधैः ।।५९४।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विलासो यथा–
नायकालोकनादौ वै विशेषो हि क्रियासु यः।
शृंगारचेष्टासहितो विलासः स निगद्यते ।।५९५।।

नृत्तमाह–
गात्रविक्षेपमात्रं तु सर्वाभिनयवर्जितम्।
आंगिकोक्त प्रकारेण नृत्तं नृत्तविदो विदुः।
एतत् त्रयं द्विधा प्रोक्तं मार्गदेशीति भेदतः ।।५९६।।

तत्र मार्गमाह–
ब्रह्माद्यैर्मार्गितं शंभोः प्रयुक्तं भरतादिभिः।
गान्धर्वं वादनं नृत्यं यत् स मार्ग इति स्मृतम् ।।५९७।।

देशीमाह–
देशे देशे नृपादीनां यदाह्लादकरं परम्।
गानं वाद्यं तथा नृत्यं तद्देशीत्युच्यते बुधैः ।।५९८।।

नृत्य-- अपने-अपने देश की रीति के अनुसार ताल, मान और लय के आश्रित एवं विलास के साथ अंगों का जो विक्षेप, हालचाल है, उसी को विद्वानों ने नृत्य कहा है ।।५९४।।

विलास-- नायक को देखने-मिलने से शृंगार विषयक चेष्टाओं के साथ शरीर की क्रियाओं में जो विशेषता प्रतीत या अनुभूत होती है, उसे विलास कहते हैं ।।५९५।।

नृत्त-- जिसमें अर्थबोधक अभिनय नहीं है, मात्र गात्रविक्षेप यानी शरीर के अवयवों का हिलाना-फेंकना है, उसे आंगिक नर्तन शास्त्र के अनुसार नर्तनशास्त्रज्ञ 'नृत्त' कहते हैं। ये तीनों और देशी भेद से दो-दो प्रकार के कहे गये हैं ।।५९६।।

इसमें मार्ग इस प्रकार है-- ब्रह्मा आदि देवों ने जिसका मार्ग बनाया, भरतादि ने जिसे शिवजी के समक्ष प्रयोग कर दिखाया, जिसमें गन्धर्वों की वादन-पद्धति है, ऐसा नृत्य मार्ग कहलाता है ।।५९७।।

देशी-- भिन्न-भिन्न देशों में राजाओं को जो आनंद देनेवाला है, उन स्थलों पर जो गान, वाद्य, नृत्य प्रसिद्ध है, उसे देशी कहते हैं ।।५९८।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नारदसंहितायां तु–
पुं नृत्यं ताण्डवं प्रोक्तं स्त्रीनृत्यं लास्यमुच्यते।
इति साधरण्येनोक्तम्।
भरतकोहलादिप्राचीनाचार्यैरंगीकृतं बहुविधं नृत्यम्।
जनानुरंजनाद्धेतोर्मया तदपि कथ्यते ।।५९९।।

तद्यथा– काष्ठानृत्यम्–
अष्टाभिर्गोपनारीभिरष्टभिः कृष्णमूर्तिभिः।
काष्ठानृत्यं प्रभवति कृतस्वस्तिकमंगलम्। ।।६००।।
इति काष्ठानृत्यम्।
इति प्रकार नाट्यानि प्रोक्तान्याधुनिकैः पुनः।
देशे देशेऽप्येवमेव देशीनृत्यं तथोच्यताम् ।।६०१।।

तदुक्तं कौमुद्याम्–
यस्मिन् देशे च या रीतिर्या च भाषा मनोहरा।
तथापि नृत्यं भवति प्रभूणां चित्तरंजनम् ।।६०२।।
इति संक्षेपः

नारद संहिता में है– पुरुष का नृत्य ताण्डव होता है और स्त्री का नृत्य लास्य कहलाता है। ऐसा साधारण रूप से कहा गया है। लेकिन भरत, कोहल आदि प्राचीन आचार्यों ने नाना प्रकार के नृत्य स्वीकार किये हैं। लोगों का मनोरंजन करनेवाले होने के कारण उनका भी मैं वर्णन करता हूँ ।।५९९।।

जैसे काष्ठानृत्य–– आठ गोपांगनाएं और आठ कृष्णमूर्ति का स्वस्तिक मंगल वाचनपूर्वक किया हुआ जो नृत्य है, वह काष्ठा नृत्य है। (काष्ठा का अर्थ है दिशा; दिशाएं आठ होती हैं और इसमें आठ-आठ की संख्या से नृत्य होता है, इसलिए इसे काष्ठानृत्य कहते हैं।) ।।६००।।

इसी प्रकार अनेक नाट्यों के प्रकार आधुनिक विद्वानों ने कहे हैं; देश-देश में इसी प्रकार जो नर्तन प्रचलित हुए, वे ही देशी नृत्य के नाम से प्रसिद्ध हुए ।।६०१।।

कौमुदी में कहा गया है– जिस देश में जो रीति सुंदर और भाषा मनोहर होती है, उसी रीति और भाषा के अनुरूप नृत्य भी होता है और राजाओं के मन को आनंद देनेवाला होता है। इतना संक्षेप में वर्णन किया ।।६०२।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अथ नृत्तहस्ताः
चतुरस्रावथोद्वृत्तौ हस्तौ तलमुखाभिधौ।
स्वस्तिकौ विप्रकीर्णाविप्यरालखटकामुखौ ।।६०३।।
आविद्धवक्त्रौ सूच्यास्यौ रेचितावर्धरेचितौ।
नितम्बौ पल्लवौ केशबन्धावुत्तानवंचितौ ।।६०४।।
लताख्यौ करिहस्तौ च पक्षवंचितकाभिधौ।
पक्षप्रद्योतकौ दण्डपक्षौ गरुड़पक्षकौ ।।६०५।।
ऊर्ध्वमण्डलिनौ हस्तौ पार्श्वमण्डलिनावपि।
उरोमण्डलिनौ स्यातामुरः पार्श्वार्धमण्डलौ ।।६०६।।
मुष्टिकस्वस्तिकावन्यौ नलिनीपद्मकोशकौ।
अलपद्मावुल्बणौ च वलितौ ललिताविति।
नृत्तहस्ता मतास्त्रिंशन् नृत्तमात्रोपयोगिनः ।।६०७।।

(संगीत रत्नाकरे तु–
एतानभिनयेऽप्याहुः शास्त्रतः संप्रदायतः।
लताख्यौ हि मुनिर्वक्ति नृत्ताभिनयगोचरौ।
सूच्यन्तेऽन्ये साहचर्यात्तेनाभिनयगोचराः। अ. ७. श्लो. ९१
मूले तु संयुतासंयुतहस्तानां वर्णनं नास्ति। केवलं नृत्तहस्तावर्णिताः)

अब नृत्त हस्तों का वर्णन करते हैं– चतुरस्र, उद्वृत्त, तलमुख, स्वस्तिक, विप्रकीर्ण, अरालखटकामुख, आविद्धवक्त्र, सूच्यास्य (सूचीमुख), रेचित, अर्धरेचित, नितम्ब, पल्लव, केशबन्ध, उत्तानवंचित, लता, करिहस्त, पक्षवंचित, पक्षप्रद्योतक, दण्डपक्ष, गरुडपक्ष, ऊर्ध्वमण्डली, पार्श्वमण्डली, उरोमण्डली, उरः पार्श्वार्द्धमण्डली, मुष्टिकस्वस्तिक, नलिनी–पद्मकोश, अलपद्म, उल्वणवलित, ललित–ये तीस नृत्त हस्त माने गये हैं, नृत्त में इनका उपयोग किया जाता है।।६०३, ६०४, ६०५, ६०६, ६०७।।

(संगीत रत्नाकर में इन हस्तों के बारे में कहा गया है– ये हस्त शास्त्र और संप्रदाय के अनुसार अभिनय (नृत्य) में भी प्रयुक्त होते हैं। लता जैसे जो हाथ हैं, वे नृत्त और अभिनय दोनों में आते हैं और उनके साहचर्य से और भी हस्त औचित्य के अनुसार नृत्य एवं नृत्त दोनों में उपयुक्त हो सकते हैं, ऐसा सूचित किया गया है। मूल में संयुत-असंयुत हस्तों का वर्णन नहीं है, केवल नृत्त हस्तों का वर्णन है।)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वरदाभयदाबन्धचतुरस्रमिति द्वयम्।
अन्यच्छिरोमणिः प्राह एते द्वात्रिंशदीरिताः ।।६०८।।

(टिप्पणी—खटकामुखमिति
अनामिकाकनीयस्यावुत्क्षिप्ते वक्रिते मनाक्।
विरले चेत् कपित्थस्य तदा स्यात् खटकामुखः ।।६०९।।
परशुरामसंहितायां तु कराभ्यासप्रकरणेः
तर्जनीमध्यमामध्ये पुंखोऽगुंष्टेन पीड्यते।
तस्मिन्ननामिकायोगात् स हस्तः खटकामुखः ।इति।
उत्तानोऽसौ युगादौ स्याद् वस्त्र चामरधारणे ।।६१०।।
कुसुमावचयेत्यादौ।) कंसान्तर्गतः पाठः पार्श्वे लिखितः।

(चतुरस्रः)
समान कूर्परस्कन्धौ वक्षसोऽष्टांगुलान्तरौ।
प्राङ्.मुखौ खटकावक्त्रौ चतुरस्रभिधौ करौ।
मुक्ताहार स्रगादीनामेतावाकर्षणे मतौ ।।६११।।
इति चतुरस्रौ।

वरदाभयद और अबन्धचतुरस्र- ऐसे दो कहे गये हैं। शिरोमणि में इस प्रकार कहने से बत्तीस (३२) होते हैं ।।६०८।।

(खटकामुखम् - ऐसा प्रतीक लेकर टिप्पणी में लिखा गया है- कपित्थ हस्त की अनामिका, कनिष्ठिका ऊँची और थोड़ी टेढी करने और विरल रखने से खटकामुख होता है ।।६०९।।

परशुराम संहिता के कराभ्यास प्रकरण में इस प्रकार है-

तर्जनी और मध्यमा दोनों के मध्य में पुंख अंगुठे से दबाया जाता है, उसमें अनामिका को मिलाने से खटकामुख हस्त हो जाता है। इसे उत्तान धारण करें, तो युगारंभ, वस्त्र, अथवा चामर धारण करने और फूल चुनने में इसका विनियोग होता है ।।६१०।।)

चतुरस्र- कूर्पर, स्कन्ध, समान रेखा में हों, और हाथ, वक्षःस्थल से आठ अंगुल की दूरी पर हों, पूर्व की तरफ उनका मुख हो, ऐसे खटकामुख को चतुरस्र नामक कर कहते हैं। मोती के हार, मालाएं, इनके धारण, आकर्षण में इनका विनियोग हैं ।।६११।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(उद्वृत्तौ)–
समाभ्यां हंसपक्षाभ्यामुत्तानो यो व्रजत्यधः।
यदान्योऽधोमुखो वक्षस्तदोद्वृत्तौ करौ स्मृतौ ।।६१२।।

पार्श्वे– (हंसपक्षाभ्यामिति–
तर्जन्याद्याः पताकस्य तिस्रोऽंगुल्योनताः समाः।
ऊर्ध्वा कनीयसी यत्र हंसपक्षः स उच्यते।)
तालवृन्तावाहुरेके तालवृन्तनिरूपणौ।
प्राङ्.मुखौ हंसपक्षौ च व्यावृत्तपरिवर्तिते ।।६१३।।
(उद्वृत्तौ मेनिरे केचिज्जयशब्दे प्रयोजयेत्।) मूले नास्ति।
शरमोक्षणे।

(अथ दोष विचारः)
असंयुतोऽपि संयोगे ऱ्हस्वदीर्घव्यतिक्रमे।
भवन्त्येते न दोषाय संस्कृते प्राकृतेऽपि च।
वारद्वयाधिकं गीते पौनरुक्त्ये तु दोषभाक् ।।६१४।।

संगीतसारेऽप्येवमेवोक्तम्–
संस्कृत प्राकृतयोस्तु तत्तल्लक्षणहीनत्त्वं दोष एव।
दुष्टं पदं श्रुतिकटु, इत्यादिदोषाः काव्यप्रकाशादिभ्यो ज्ञातव्याः।

उद्वृत्तौ– दो हंसपक्ष सम धारण करके, एक उत्तान स्थिति में नीचे जाता हे और दूसरा वक्षःस्थल पर ही अधोमुख रहता है, उस समय उद्वृत्त कर होते हैं ।।६१२।।

पार्श्व में पाठ– (पताक हस्त की तर्जनी से लेकर तीन अंगुलियां सम और नत हों और छोटी अंगुली ऊँची हो।, तो वह हस्त हंस पक्ष है।) कुछ लोगों ने इस हस्त को तालवृन्त कहा है, उससे तालवृन्त (पंखे) का अभिनय किया जाता है। हंसपक्ष पूर्वाभिमुख हों और व्यावर्तित एवं परिवर्तित किये जायं, तो वे उद्वृत्त हैं, ऐसा कहा गया है।)।।६१३।। (जय शब्द-सूचन और बाण छोड़ने में इसका विनियोग है।) यह मूल में नहीं है।

दोष-विचार– हस्तादि के असंयुत होने पर भी संयोग में, ऱ्हस्व का दीर्घ, दीर्घ का ऱ्हस्व – इस व्यतिक्रम को संस्कृत या प्राकृत में, गाते समय दोष नहीं माना जाता (जोड़ाक्षर को तोड़कर बोलने में भी), गाते समय दो से ज्यादा तीन-चार बार पुनरुक्ति हो, तो दोष होता है ।।६१४।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संगीतसार में ऐसा ही कहा गया है। संस्कृत-प्राकृत में इतर समय में उस-उस लक्षण से हीन हो जाना दोष ही माना गया है। पद्दुष्टता, श्रुतिकटुता आदि दोष काव्यप्रकाश से जानना चाहिए।

अथ गुणिनः (नटाः)
द्वारकामाश्रिताः केचित् केचिद्भोजपुरे स्थिताः।
केचित् प्राच्यामुदीच्यां च दक्षिणस्यां तथापरे ।।६१५।।
प्राच्यां प्रायेण गुणिनो नानागीत विशारदाः।
रागाणां संस्थिता ये तु ते नटाः परिकीर्तिताः ।।६१६।।
ये गायन्ति सुगीतानि नृत्यन्ति च विचक्षणाः।
जितेन्द्रियाः सदाचारास्ते नटाः पुनरुत्तमाः ।।६१७।।
नानाशास्त्रं च काव्यं च कुर्वन्ति कथयन्ति वा।
रंजयन्ति सभाः सर्वास्ते नटाः पुनरुत्तमाः ।।६१८।।
पारम्पर्येण विदितो नटवंशमहागुणः।
स्वर्गे मर्त्ये च पाताले संगीतं प्राचरत्ततः ।।६१९।।
ये नटाः पुण्यकर्माणः स्ववर्त्मस्था जितेन्द्रियाः।
ग्राह्यास्ते वै प्रियैः सर्वैर्विप्रैर्गुणमहात्मभिः ।।६२०।।

अब गुणी नटों का वर्णन करते हैं– कुछ नट द्वारका निवासी हैं, कुछ भोजपुर में रहनेवाले हैं, कुछ पूर्व दिश के हैं, कुछ उत्तर प्रांत के और अन्य कुछ दक्षिण के हैं ।।६१५।।

उनमें पूर्व के नट प्रायः अनेक गुणसम्पन्न, अनेक गीत जाननेवाले, राग-रागिणियों का अच्छी तरह अभ्यास किये हुए परिकीर्तित हैं ।।६१६।।

जो अच्छे गीत अच्छी तरह गाते हैं, विद्वान हैं और नृत्य करते हैं, जो इन्द्रियों पर विजय प्राप्त किये हुए हैं, सदाचारी हैं, वे ही उत्तम नट हैं ।।६१७।।

जो अनेक शास्त्रों एवं काव्य का निर्माण कर सकते हैं और उनका कथन कर सकते हैं, सभाओं में सभी का जो मनोरंजन कर सकते है, वे नट उत्तम हैं ।।६१८।।

नटवंशों के बड़े-बड़े गुण वंश-परंपरा से आये हैं, उसी से स्वर्गलोक, मर्त्यलोक और पाताललोक में संगीत का प्रचार हुआ है ।।६१९।।

जो नट पुण्यकर्म करनेवाले हैं, अपने मार्ग में (सदाचरणपूर्वक) इन्द्रियविजयी होकर रहते हैं, वे सब अपने गुणों की महिमा से ब्राह्मणों को ग्राह्य होते हैं। वे अपने प्रिय हैं, इस भावना से उनका सत्कार करना चाहिए, उन्हें स्वीकार करना चाहिए। ।।६२०।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अथ गायकलक्षणमाह-
गायकस्तु त्रिधा प्रोक्त उत्तमो मध्यमोऽधमः।
मृष्टध्वनिः सुशारीरो नानारागप्रभेदवित् ।।६२१।।
(पार्श्वपाठ- तालविश्रामकारित्वान्मानं ताल समाप्तकृत्।
गीतवाद्यपदन्यास क्रियाणां समतामिथः।
तथाक्रियातालयोर्वालय इत्युच्यते बुधैः । इति वाचस्पतिः।
हरिनायकस्तु- क्रियान्तरेण विश्रान्तिर्लय इत्यभिधीयते।)
ग्रहमानलयोपेतस्तालज्ञो विजितश्रमः।
त्रिस्थानस्पर्शगमकेष्वनायास लसद् गतिः ।।६२२।।
प्रबन्धगानकुशलः सावधानः क्रियापरः।
आयत्तकण्ठः स्थायिज्ञो निर्दोषो धारणान्वितः ।।६२३।।
उत्तमो, मध्यमः प्रोक्तो गुणैः कतिपयैरितः।
गुणयुक्तोऽपि दोषाढ्यो यस्तु सोऽधम उच्यते ।६२४।।

सोऽपि पंचधा-तदुक्तम्-
शिक्षाकरोऽनुकारश्च रसिको रंजकस्तथा।
भावकश्चेति गीतज्ञाः पंचधा गायकं विदुः (जगुरिति पाठः) ।।६२५।।
अन्यूनशिक्षणे दक्षः शिक्षाकारो मतः सताम्।
अनुकार इति प्रोक्तः परभंग्यनुकारकः ।।६२६।।
रसाविष्टस्तु रसिको रंजकः श्रोतृरंजकः।
गीतस्यातिशयाधानो भावकः परिकीर्तितः ।।६२७।।

अब गायकों के लक्षण बताते हैं- गायक तीन प्रकार के हैं - उत्तम, मध्यम और अधम। जिसकी आवाज मंजी हुई, स्वच्छ एवं मधुर है; जिसका शरीर सुंदर है; नाना रागों के प्रभेद जो जानता है; ग्रहस्वर, नाप, लय, ताल जाननेवाला, विजितश्रम है, मन्द्रादि तीनों स्थानों में जिसकी आवाज का सहज संचरण है, गमकों के अनायास, बिना श्रम प्रयोग में जो निपुण है; जिसकी सहज गति है; प्रबन्ध-गान में जो कुशल है, सावधान-सतर्क है; क्रियाशील है; कण्ठ जिसेंके वश में है, स्थायी आदि में भिज्ञ है; निर्दोष है, जिसकी बुद्धि धारणाशील (कई विषयों को धारण कर न भूलनेवाली) है; ऐसा गायक उत्तम है ।।६२१, ६२२, ६२३।।

ऊपर कहे गये गुणों से कम गुण जिसमें हैं, वह मध्यम है। जिसमें गुण हैं किन्तु दोष भी भरपूर है, वह अधम गायक है।।६२४।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

फिर भी गायक पाँच प्रकार के हैं, जैसा कि कहा है- शिक्षाकार, अनुकार, रसिक, रंजक और भावक। गीतशास्त्रज्ञों ने कहा है कि ऐसे पाँच प्रकार के गायकं हैं ॥६२५॥

पूर्ण शिक्षण प्राप्त किया हुआ और इसके लिए और भी तत्पर हो, वह शिक्षाकार है। दूसरों की शैली का अनुकरण करनेवाला अनुकार है। स्वयं रस में मग्न होनेवाला रसिक है। श्रोताओं के मन को रंजन करनेवाला रंजक है। गाने में अपनी तरफ से वैशिष्ट्य निर्माण करनेवाला भावक है ॥६२६-६२७॥

(अथ गायक विभेदमाह)–
एकलो यमलो वृन्दो गायकश्चेति स त्रिधा ।इति।
एक एवतु यो गायेदसावेकलगायनः।
स द्वितीयस्तु यमलः स वृन्दो वृन्दगायनः ॥६२८॥

अथ गायकदोषमाह–
भीतोऽव्यक्तपदः शिरोविचलितः फूत्कारको विस्वरः।
स्यात् सन्दष्टरदो निमीलनयनो ग्रामाव्यवस्थस्तथा।
गायन् वक्रगलः स्वराल्पबहुलः स्याद्रागसम्मिश्रकः।
कम्पांगोऽनवधानको विरसकृत् काकस्वरः सत्वरः ॥६२९॥
भीतो-भयान्वितः। घर्घरध्वनिरव्यक्त उच्यते गीतवादिभिः
"इतरेषां च रागाणां मिश्रको भूरिमिश्रणात्", इति राग सम्मिश्रकः।
स्वाय्यादिष्ववधानेन निर्मुक्तोऽनवधानकः। काकस्वरः– क्रूरस्वरः।

किंच–
वितालको गीततनुप्रसारकः करालकश्छागगलोऽव्यवस्थितः।
उत्फुल्लगण्डस्त्वनुनासिकः स्यादेवं हि दुष्टः किल गायनः स्यात्॥६३०॥

अन्य प्रकार से गायकों के भेद कहते हैं- गायक तीन प्रकार के हैं- एकल, यमल और वृन्द। गायक के अकेला गाने को एकल गायन कहते हैं, दूसरे के साथ गाने को यमल गायन कहते हैं और समूह के साथ गाने को वृन्दगान कहते हैं ॥६२८॥

अब गायकों के दोष कहते हैं- भीत यानी डरनेवाला, अव्यक्तपद यानी घर्घरध्वनियुक्त, शिरोविचलित यानी मस्तक हिलानेवाला, फूत्कारक यानी फूत्कार छोड़नेवाला, विस्वर यानी विरुद्ध स्वर, विसंवादी स्वर का प्रयोग करनेवाला, सन्दष्टरद यानी दाँत भीचकर गानेवाला, निमीलनयन्न यानी आँखें मूँदकर गानेवाला, ग्रामाव्यवस्थ यानी ग्राम-व्यवस्था बिगाड़नेवाला,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वक्रगल यानी गाते समय गला टेढा करनेवाला, स्वराल्पबहुल यानी स्वरों को अल्प बहुल करने या अल्प-बहुल प्रयोग को न जाननेवाला, रागसम्मिश्रक यानी रागों का मिश्रण करनेवाला, कंपांग यानी गाते समय अंग जिसका काँपता हो, अनवधानक यानी स्थायी प्रभृति में जिसका मनोयोग नहीं या स्थानवैपरीत्यकारी, विरसकृत् यानी रसभंग करनेवाला या नीरस, काकस्वर यानि क्रूर आवाजवाला, सत्वर यानी जल्दी करनेवाला; ऐसे सोलह दोष गायकों के माने गये हैं ।।६२९।।

और भी कहा गया है- विताल यानी ताल विच्युत, गीततनुप्रसारक यानी गीत को व्यर्थ में बढ़ानेवाला, करालक यानी भयानक आवाजवाला, छागगल यानी बकरी की तरह कण्ठध्वनिवाला, अव्यवस्थित यानी राग को व्यवस्थित न रखनेवाला या नियम भंग करनेवाला, उत्फुल्लगण्ड यानी गाल फुलानेवाला, अनुनासिक यानी नाकध्वनि से गानेवाला, ऐसे दोष होने पर गायक दोषयुक्त कहलाता है ।।६३०।।

वितालस्तालविच्युतः। करालो घटिताननः।
गायन्नासिकया गीतं गायकस्त्वनुनासिकः।
सन्त्यन्ये बहवो दोषा नोक्ता विस्तरशंकया।
ग्रन्थान्तरेभ्यस्ते ज्ञेया अनुक्ता गुण (गान) दोषकाः ।।६३१।।

अथ वाग्गेयकार लक्षणम्--
वाड्.मातुरुच्यते गेयं धातुरित्यभिधीयते।
वाचं गेयं च कुरुते यः स वाग्गेयकारकः ।।६३२।।
व्याकारकाव्यालंकाराशेषकोषविचक्षणः।
स्मृत्यागमपुराणादिच्छन्दःशास्त्रप्रभेदवित् ।।६३३।।
अशेषदेशभाषाज्ञः सर्वप्राकृतकोविदः।
नीतिशास्त्र कलाशास्त्र शिक्षाशास्त्र विशारदः ।।६३४।।
नानाधातुविवेकज्ञोलयतालादितत्त्ववित्।
इति गीतनिर्णयः।

विताल यानी तालविच्युति, कराल यानी बड़ा मुँह खोलने से भयंकर दिखनेवाला, नाक से गानेवाले को अनुनासिक कहते हैं। इनके अलावा और भी कई दोष हैं, विस्तार भय से उनके बारे में यहाँ नहीं कहा गया है। इस ग्रन्थ में नहीं कहे गये गुण-दोषों के बारे में अन्य ग्रन्थों से जान लेना चाहिए ।।६३१।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अब वाग्गेयकार के लक्षण कहते हैं- वाणी को मातु कहा जाता है और गाने योग्य विषय अथवा गाने के अवयव को धातु कहा जाता है। जो वाणी या काव्य की रचना करे और उसे गाने योग्य बनाये, वह वाग्गेयकार कहलाता है।।६३२।।

जो वाग्गेयकार होता है, उसे व्याकरणशास्त्र, काव्य, अलंकारशास्त्र, सभी शब्दकोषों का अच्छा ज्ञान होना चाहिए, उसे धर्मशास्त्र, अनेक प्रकार के आगमों, तंत्र, पुराण, छन्दशास्त्र के प्रभेदों, सभी देशभाषाओं, प्राकृतभाषाओं, नीतिशास्त्र, कलाशास्त्र, अध्यापनशास्त्र, विविध धातुओं के विज्ञान, लय, ताल आदि विषयों का यथार्थ ज्ञान होना चाहिए ।।६३३-६३४।।

यह गीत निर्णय समाप्त हुआ।

अथ क्रमप्राप्तं वाद्यमाह–

न वाद्येन विना यस्माद् गीतं तालश्च शोभते।
तस्मान्मांगल्यमस्माभिर्वाद्यमत्र निगद्यते ।।६३५।।
ततमानद्धसुषिरघनानीति चतुर्विधम्।
ततं वीणादिकं वाद्यमानद्धं मुरजादिकम्।
वंश्यादिकं तु सुषिरं कांस्यतालादिकं घनम् ।।६३६।।

तत्र ततं यथा दामोदरे–

अलावनी ब्रह्मवीणा किन्नरी लघुकिन्नरी।
विपंची वल्लकी ज्येष्ठा चित्रा घोषवती जया ।।६३७।।
हस्तिका कुब्जिका कूर्मी सारंगी परिवादिनी।
त्रिशरी शततंत्री च नकुलौष्ठी च कंसरी ।।६३८।।
औदुम्बरी पिनाकी च निबन्धः पुष्कलस्तथा।
गदा वारणहस्तश्च (रावणहस्तश्च) रुद्रोऽथ स्वरमण्डलः ।।६३९।।
कविलासो (कपिलासो) मधुस्यन्दी घोणेत्यादि ततं भवेत्।
सिद्धैषां घटना लोके पारम्पर्योपदेशतः।
तथापि वक्ष्ये द्वित्रीणां लक्षणं ग्रन्थरीतितः ।।६४०।।

अब क्रम से आये हुए वाद्यों का विवेचन करते हैं- वाद्य के बिना किसी भी गीत या ताल की शोभा प्रकट नहीं होती। वाद्य मंगलस्वरूप भी है, इसलिए अब हम वाद्यों का निरूपण करते हैं ।।६३५।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वाद्य के चार भेद हैं- यथा तत, आनद्ध, सुषिर और घन। वीणादि वाद्यों को 'तत', मुरज आदि चर्माच्छादित वाद्यों को 'आनद्ध', वंशी आदि छिद्रवाले वाद्यों को 'सुषिर और कांस्य आदि धातुनिर्मित वाद्यों को 'घन' कहते है ॥६३६॥

दामोदर में 'तत' वाद्यों का वर्णन इस प्रकार है- अलावनी, ब्रह्मवीणा, किन्नरी, लघुकिन्नरी, विपंची, वल्लकी, ज्येष्ठा, चित्रा, घोषवती, जया, हस्तिका, कुब्जिका, कूर्मी, सारंगी, परिवादिनी, त्रिशरी, शततन्त्री, नकुलौष्ठी, कंसरी, औदुम्बरी, पिनाकी, निबन्ध, पुष्कल, गदा, वारणहस्त (रावणहस्त), रुद्र, स्वरमण्डल, कविलास (कपिलास), मधुस्यन्दी, घोणा आदि ततवाद्य हैं। इनकी सिद्धि की पद्धति, बनाने की पद्धति गुरु परंपरा से प्रसिद्ध है, फिर भी दो-तीन प्रकार के विषय में हम ग्रन्थरीति से कहते हैं। ॥६३७, ६३८, ६३९, ६४०॥

अलावनी यथा–
कनिष्ठिकापरिध्यर्धमध्यच्छिद्रेण संयुतः।
दशमुष्टिमितो दण्डः खादिरो वैणवस्तथा॥६४१॥
अधः करभवानूर्ध्वे छत्रावल्यभिशोभितः।
नवांगुलादधश्छिद्रोपरि चन्द्रार्धसन्निभाम् ॥६४२॥
निवेश्य चुम्बिकां तत्रालाबुखण्डं निवेशयेत्।
द्वादशांगुलविस्तारं दृढपर्वमनोहरम् ॥६४३॥
चुम्बिकावेधमध्येन दण्डच्छिद्रेण निर्मिताम्।
अलाबुमध्यगां डोरीं कृत्वा स्वल्पांच काष्ठिकाम् ॥६४४॥
तथा संवेष्ट्य तन्मध्ये काष्ठिकां भ्रामयेत्ततः।
यथा स्यान्निश्चलालाबुर्बन्धश्च करभोपरि (करतोपरि) ॥६४५॥
पंचागुलानि संत्यज्यालाबुं स्वल्पा च बन्धयेत्।
केशान्तनिर्मिता पट्टमयी सूत्रकृताऽथवा ॥६४६॥
समाश्लक्ष्णा (सूक्ष्मा) दृढा तत्रादेया तन्त्री विचक्षणैः।
तारे मन्द्रे च घोरे च त्रिस्थाने बिन्दुरिष्यते ॥६४७॥

खदिर अथवा वेणुकाष्ठ से तैयार दशमुष्ठि माप का, कनिष्ठा के अर्धपरिमाण की परिधिवाला मध्य छिद्र समन्वित दण्ड होगा। उसका निम्नभाग करभ युक्त और उसका ऊर्ध्वदेश छत्रावली की आकृति का होने से शोभायमान होता है। उसका नौ अंगुलि परिमाण नीचे के छिद्र के ऊपर अर्धचन्द्र के समान आकृति की चुम्बिका पर अलाबुखण्ड (तुमड़ी) लगाना होगा। यह अलाबु उसके बारह अंगुल माप तक विस्तृत, दृढपर्व एवं मनोहर होगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चुम्बिका के मध्य छिद्र से दण्ड छिद्र द्वारा अलाबु के मध्यांचल में डोरी बाँध कर उसमें क्षुद्र काष्ठखण्ड को प्रवेश करा कर उसकी काष्ठिका को घुमाना होगा, जिससे अलाबु निश्चल होकर करभ के ऊपर अटका रहता है। पाँच अंगुल छोड़कर अलाबु का स्वल्प बंधन करिये। विलक्षण बुद्धिमान व्यक्ति मसृण एवं सुदृढ केशान्तनिर्मित अथवा रेशम की डोरी के प्रयोग का उपदेश देते हैं। तार, मन्द्र एवं घोर (मध्य)- इन तीन स्थानों पर बिन्दु हैं। (बिन्दु के तीन अर्थ हैं- (१) नाद, (२) वीणा-हस्तक्रिया में बिन्दु एक प्रकार की प्रक्रिया एवं (३) वीणा बजाने के समय सभी अंगुलियाँ मिलाकर एक प्रकार का स्ट्रोक-आघात। यहाँ तृतीय अर्थ ले सकते हैं।) ।।६४१, ६४२, ६४३, ६४४, ६४५, ६४६, ६४७।।

बिन्दुनाद (नाल) समोपेतां तुम्बीं निक्षिप्य वक्षसि।
मध्यमानामिकाभ्यां च वाद्या दक्षिण पाणिना ।।६४८।।
तुम्बीमूलं समुत्पत्य वामांगुष्ठेन धारयेत्।
ततस्ताभिस्तु सर्वाभिः स्वरव्यक्तिर्विधीयते ।।६४९।।
त्रिस्वरो दक्षिणः पाणिर्वामस्तत्र चतुःस्वरः।
अलावन्यां स्थिता ज्ञेयाः सप्त षड्जादयः स्वराः ।।६५०।।
इयमलावनी प्रोक्ता मनः श्रवणरंजनी।
प्रत्यक्षा शारदा देवी वीणारूपेण संस्थिता ।।६५१।।
इत्यलावनी।
अन्यासां लक्षणं नोक्तं ग्रन्थबाहुल्यभीतिना।
तज्ज्ञानग्रहिनैर्ज्ञेयं तत्तद्ग्रन्थेभ्य एव हि ।।६५२।।

अथ आनद्धं यथा–
मर्दलो मुरजश्चैव ढक्का पटह चांगवः।
पणवः कुण्डली भेरी घंटावाद्यं च झर्झरः ।।६५३।।
डमरुष्टमकिर्मण्ठो हुडक्का मड्डुडिण्डिमौ।
उपांग दर्दुरावित्यादिकमानद्धमीरितम्।

बिन्दु नाद लेकर तंत्री को वक्षस्थल पर स्थापन कर मध्यमा एवं अनामिका के द्वारा दक्षिणहस्त से बजाना होगा। तुम्बी मूल को उठाकर वामांगुलि द्वारा धारण करना होगा। उस समूह द्वारा सभी स्वरों की सृष्टि होगी। दक्षिण में त्रिस्वर, वामहस्त में चतुःस्वर – इस प्रकार अलावनी पर षड्जादि सात स्वर हैं, ऐसा पता चलता है। इस अलावनी को मनःश्रवणरंजनी कहा जाता है। स्वयं सरस्वती देवी वीणा रूप में संस्थित है ।।६४८, ६४९, ६५०, ६५१।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

-इति अलावनी-

अन्य अनेक वाद्यों के लक्षण ग्रन्थ के विस्तार भय से नहीं कहे गये हैं। ज्ञानग्राही संबंधित ग्रन्थों से इस विषय में जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।।६५२।।

आनद्ध वाद्यों के प्रकार- मर्दल, मुरज, ढक्का, पटह, अंगव, पणव, कुण्डली, भेरी, घंटावाद्य, झर्झर, डमरु, टमकी, मण्ठ, हुडक्का, मड्डु, डिण्डिम, उपांग, दर्दुर ।।६५३।।

आनद्धे मर्दलः श्रेष्ठस्तस्मात्तल्लक्षणं ब्रुवे ।।६५४।।

(तदुक्तं संगीत दामोदरे)
मर्दलः खादिरः श्रेष्ठो हीनः स्यादन्यदारुजः।
(तल्लक्षणानि)
रक्तचन्दनजो रम्यो गंभीरध्वनिरुच्चकैः ।।६५५।।
सार्धहस्त प्रमाणं तु दैर्घ्यमस्य विधीयते।
त्रयोदशांगुलं वाममथवा द्वादशांगुलम् ।।६५६।।
दक्षिणं च भवेद्धीनमेकेनार्द्धांगुलेन वा।
करणानद्धवदनो मध्ये चैव पृथुर्भवेत् ।।६५७।।
करणं नाम षण्मासमृतवत्सचर्म।

तदुक्तम्-
षाण्मासिको (षण्मासीयो) मृतोवत्सस्तच्चर्म करणं मतम् ।इति।
मृत्तिकानिर्मितश्चैष मृदंगः परिकीर्तितः।
पातयेत् खरलिं वाद्यवादनार्थं च मर्दले ।।६५८।।
खरलिर्नाम लेप विशेषः।

खरलिलक्षणम्- तदुक्तम्-
विभूतिं गैरिकं भक्तं केन्दुकेन च संयुतम्।
यद्वा चिपिटकं देयं जीवनी सत्त्वमिश्रितम् ।।६५९।।

जीवनी=हरीतकी
सर्वमेकत्र पिष्टं तल्लेपः खरलिरुच्यते।
लेपस्तु दक्षिणपुटे देयः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आनद्ध वाद्यों में मर्दल श्रेष्ठ है, अतः उसका लक्षण कहते हैं।

संगीत दामोदर में कहा गया है– मर्दल खदिर की लकड़ी का सबसे अच्छा होता है, अन्य लकड़ी का बना मर्दल हीन माना जाता है। रक्तचंदन से बना सुंदर दिखायी देता है, उसमें आवाज गहरी और ऊँची होती है। यह डेढ हाथ लम्बा बनाया जाता है। बायाँ भाग बारह या तेरह अंगुल का होता है और दक्षिण भाग उससे एक या आधा अंगुल कम। करण से उसका मुख बाँधा हुआ रहता है। बीच में स्थूल होता है ॥६५४, ६५५, ६५६, ६५७॥

करण-- छ महीने का बछड़ा मर जाय तो उसके चमड़े को करण कहते हैं। मिट्टी से बनाया हुआ हो, तो उसे मृदंग कहते हैं। मर्दल बजाने के लिए खरलि लेप देना चाहिए। खरलि का लक्षण इस प्रकार है-- भस्म, गौरिक (गिरिमाटी), भात, और केन्दुक (तिन्दुक) वृक्ष का रस और उसमें हरीतकी (हरडे) का चूर्ण मिलाकर खरलि तैयार की जाती है। भात के बदले चिपिटक (पोहा) का चूर्ण लिया जाता है। इसका लेप दक्षिण भाग में लगाया जाता है ॥६५८-६५९॥

यदुक्तम्–
वामास्ये पूरिकां दत्त्वा लेपं दद्याच्च दक्षिणे ।इति।
पूरिकानाम भक्तलाजचिपिटकानामन्यतमेन
जलपिष्टं भस्म।

आधुनिकास्तु–
ओदनं छागविड् भस्म चापि भस्म पुरातनम्।
लोहविण्मूषयोश्चूर्णं समभागं सुपेषयेत्।
लेपयेद्दक्षिणपुटे लेपोऽयं वज्र ईरितः ॥६६०॥
पुरातनं भस्मेति बहुदिनमेकत्र स्थितं यत्किंचिद्भस्म।
भूषा-इति, रीतिताम्राद्यावर्तनपात्रम्।
तत्र मर्दलमुरजयोर्भेदमाह विश्वकर्मा–
त्रयोदशांगुलो वामे मुखे स्याद् द्वादशांगुलः।
दक्षिणे तु मुखे, धीरैर्मर्दलः परिकीर्तितः ॥६६१॥
मुरजोऽष्टांगुलो वामे दक्षे सप्तांगुलो मुखे।
अंक्योर्ध्वकालिंग्यभेदात् स त्रिधा परिकीर्तितः ॥६६२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तदुक्तं भरतेन–
हरीतक्याकृतिस्त्वंक्यो यवमध्यस्तथोर्ध्वकः (अर्धकः)।
आलिंग्यश्चैव गोपुच्छ सदृशः परिकीर्तितः ।।६६३।।

ऐसा कहा है– वाम मुख पर पूरिका देकर दक्षिण मुख पर लेप लगाना चाहिए। भात, लाही अथवा पोहा पानी में पीसकर तैयार किये हुए भस्म को लेकर पूरिका बनायी जाती है।।

आधुनिक लोग भात, बकरे की विष्ठा, भस्म, बहुत दिनों तक एक जगह पड़ा हुआ पुराना भस्म, सड़ा हुआ लोह, ताम्र-पितल भस्म, –– इन सबको समभाग में लेकर अच्छी तरह मर्दन करें (पीसें) और उसका लेप दक्षिण पुट पर लगा दें। इस लेप को 'वज्र' कहते हैं। ।।६६०।।

विश्वकर्मा ने मर्दल और मुरज का भेद इस प्रकार बताया है– तेरह अंगुल का वाममुख और बारह अंगुल का दक्षिण मुख हो, तो विद्वज्जन उसे मर्दल कहते हैं ।।६६१।।

आठ अंगुल का वाममुख हो और सात अंगुल का दक्षिण मुख हो, तो उसे मुरज कहा जाता है। इसके तीन प्रकार हैं, यथा अंक्य, आलिंग्य और ऊर्ध्वक ।।६६२।।

भरत ने कहा है– अंक्य हरीतकी के आकार का होता है, ऊर्ध्वक यवमध्य (जव, चावल) के आकार का होता है, और आलिंग्य गोपुच्छ के आकार का होता है ।।६६३।।

अथ वादनमार्गः
वादनस्य चतुर्मार्गा ईरिताश्चन्द्रमौलिना।
घष्टिख्या (घट्टिता) विप्रकृष्टा च गोमुख्यालप्तिका तथा ।।६६४।।

उद्देशक्रमेण लक्षणमाह–
घट्टिता करमूलस्य विकृष्टांगुलमूलतः।
गोमुखी चाग्रहस्तस्य चालनेन प्रदर्शिता ।।६६५।।
करमूलस्य चालनेन घट्टिता प्रदर्शितेत्याद्यन्वयः।
कनिष्ठांगुलिसंयोगे सर्वांगुलिविवर्तनात्।
आलप्तिका समाख्याता नन्दिने चन्द्रमौलिना ।।६६६।।

अथ त्रिप्रकारं प्रहारमाह–
निगृहीतार्द्धनिगृहीतामुक्ताख्यं मृदंगकम्।
प्रहारत्रितयं प्रोक्तं नन्दिने चन्द्रमौलिना ।।६६७।।
निगृहीताख्यमर्द्धनिगृहीताख्यं चेत्यर्थः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रत्येकलक्षणमाह—
करयोः पुटयोगेन निगृहीतमुदाहृतम्।
स्यादर्द्धनिगृहीतं तु करस्यैकस्य मोक्षणात् ।।६६८।।

अब बजाने की पद्धति का वर्णन करते हैं- वादन के चार मार्ग चन्द्रमौलि ने कहे हैं, यथा घट्टिता (घष्टिख्या), विप्रकृष्टा, गोमुखी और आलप्तिका ।।६६४।।

उद्देश के क्रमानुसार लक्षण कहते हैं- हाथ के मूल का चालन करने पर घट्टिता होती है। अंगुलिमूल भाग के चालन से विप्रकृष्टा होती है। हस्त के अग्रभाग के चालन से गोमुखी होती है ।।६६५।।

सब अंगुलियाँ अलग करके कनिष्ठिका का संयोग हो तो उसे आलप्तिका कहते हैं। ऐसा शिवजी ने नन्दिकेश्वर को कहा है ।।६६६।।

बजाते समय जो प्रहार या आघात किया जाता है, उसके तीन प्रकारों का वर्णन करते हैं- मृदग के प्रहार के तीन प्रकार हैं, यथा निगृहीत, अर्द्धनिगृहीत और मुक्त। महादेव ने नन्दिकेश्वर को ऐसा बताया ।६६७।।

प्रत्येक के लक्षण इस प्रकार हैं- दोनों हाथों के पुट से (अंगुलियाँ अलग न करते हुए) जो प्रहार होता है, वह निगृहीत है। एक हाथ छोड़ने से अर्द्धनिगृहीत होता है ।।६६८।।

उभयोश्च परित्यागात्तथैवान्तरघाततः।
क्षणे क्षणे कलासश्च मुक्ताख्यः स उदाहृतः ।।६६९।।
कलासो वादन विशेषः।
स च कलासोर्द्धकलासश्च टीकिनीत्यादि भरतोक्तः।
अन्ये च भरतोक्ता ये प्रकारा वाद्य पाठयोः।
सन्त्येवात्र न बाहुल्यात् भीत्यानेन मयोदिता ।।६७०।।
स्त्री पुंनपुंसकत्वं चान्यैरुक्तं मर्दलध्वनेः।
तदप्यलेखि न मया प्रायो बाहुल्य भीतितः ।।६७१।।

अथ मार्दंगिक लक्षणम्—
धीरो वाद्यविशारदः प्रवचनः पाठाक्षरव्यंजकः।
तालाभ्यासरतः समस्तगमक प्रौढ प्रकाशक्षमः।
नानावाद्यविवर्त्तनर्त्तनपटुः स्वभ्यस्तगीतक्रमः।
सन्तुष्टो मुखवादको द्रुतकरो मार्दंगिकः कीर्तितः ।।६७२।।
अन्येषां लक्षणं विस्तरभयान्नोक्तम्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बीच में आघात करके दोनों हाथ छोड़ दें और क्षण-क्षण पर कलास बजायें, तो वह मुक्त कहलाता है। कलास एक वादन विशेष है। भरत ने कलास, अर्द्धकलास, टीकिनी आदि कहे हैं ॥६६९॥

भरत द्वारा कहे गये वाद्य और पाठों (पाटाक्षर) के प्रकार और भी बहुत हैं, विस्तार भय से मैंने उनका यहाँ वर्णन नहीं किया है ॥६७०॥

अन्य आचार्यों ने मर्दल की ध्वनि में स्त्री, पुरुष, नपुंसक जैसे अन्य प्रकार भी कहे हैं, विस्तारभय से मैंने उनका भी वर्णन नहीं किया है ॥६७१॥

अब मृदंगवादक के लक्षण कहते हैं- धीर, विद्वान्, वाद्य-निष्णात, तत्संबधी विषयों का उपपत्तिसह व्याख्या करनेवाला, पाटाक्षरों (बजाने के बोलों) को यथार्थ रूप में प्रकट करनेवाला, ताल के अभ्यास में रत, सभी गमकों को प्रौढता के साथ प्रदर्शित करने में सक्षम, नाना प्रकार के वाद्यों व उनके सब प्रकारों में निष्णात, नर्तन पटु, गीत गायन की पद्धति का अच्छी तरह अभ्यास किया हुआ, संतुष्ट-प्रसन्न, हस्तलाघव जिसमें है, वह मार्दंगिक प्रकीर्तित है ॥६७२॥

अन्य आनद्ध वाद्य- वादकों के लक्षण विस्तारभय से नहीं कहे हैं।

तथाहि पाटाक्षराणि–

ता धिक् ता धिक् धिक् द्रिमि द्रिमि धो धो इत्यादि पाटाक्षराणि।

यथा श्रीगोविन्दलीलामृते–

ताधिक् ताधिक् धिगि तिनि ना दं कुर्वन् रासे वरमुरजोऽयम्।
लास्यैरासामतिशयतुष्टो निन्दत्यन्याः सुरवनिताः किम् ॥६७३॥

अथ सुषिरम्

दामोदरे

वंशोऽथपारी मधुरी त्तित्तिरीशंखकाहलाः।
डोडही (तोहड़ी) मुरली बुक्का शृंगिका स्वरनाभयः ॥६७४॥
शृंगं कापालिकं वंशश्चर्मवंशस्तथापरः।
एते सुषिरभेदास्तु कथिताः पूर्वसूरिभिः॥६७५॥

वंश लक्षणमाह–

मंजुलः (वर्तुलः) सरलश्चैवपर्व (श्चैकपर्वा) दोषविवर्जितः।
वैणवः खादिरोऽपि स्याद्रक्तचन्दन जोऽथवा ॥६७६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीखण्डजोऽथ सौवर्णो दन्तिदन्तमयोऽथवा।
(राजतस्ताम्रजो वापि लौहजः स्फटिकोऽथवा (पैत्तलोरंगजोऽथवा)
।।६७७।।

पाटाक्षर इस प्रकार हैं– ता धिक् धिक् ता धिक् द्रिमि द्रिमि धो धो इत्यादि। जैसे गोविन्दलीलामृत में है– रस के समय श्रेष्ठ मुरज से "ता धिक् ता धिक् धिगि तिनि" ऐसा नाद निकलता है, उसे सुनकर ऐसा लगता है मानो वह मुरज गोपियों के लास्य से अतिशय सन्तुष्ट होकर उनके सामने देवस्त्रियों की निन्दा व धिक्कार कर रहा है। इसीलिए "ताः+धिक्, ताः+धिक्" – उन देवस्त्रियों को धिक्कार है, ऐसा द्विरुक्ति से कहता है ।।६७३।।

अब सुषिर वाद्य का निरूपण करते हैं–

संगीत दामोदर में है– वंशी, पारी, मधुरी, तित्तिरि, शंख, काहल, डोडही, मुरली, बुक्का, शृंगिका, स्वरनाभि, शृंग, कापालिक, वंश, चर्मवंश,– ये सुषिर (छिद्रयुकत वाद्य) के प्रकार हैं, ऐसा पूर्वाचार्यों ने कहा है ।।६७४, ६७५।।

वंश का लक्षण इस प्रकार है– सुंदर, वर्तुल, एक ही पर्ववाली, वेणु (बाँस) निर्मित अथवा खैर या रक्तचंदन या चंदन का, सुवर्ण का या हाथी दाँत का (चाँदी, तांबा, लोह अथवा पीतल, कथील (रांगा), स्फटिक आदि का) हो ।।६७६-६७७।।

कनिष्ठांगुलितुल्येन गर्भरन्ध्रेण शोधितः।
शिल्पविद्याप्रवीणेन वंशः कार्यो मनोहरः ।।६७८।।
(वंशेनैव मतोऽपीति मतंगमुनिनोदितम्।
ततोऽन्येऽपि तदाकारा वंशा एव प्रकीर्तिताः)।।६७९।।
तत्र त्यक्त्वा शिरोदेशादधो द्विमितमंगुलम्।
फूत्काररन्ध्रं कुर्वीत मितमंगुलिपर्वणा ।।६८०।।
पंचांगुलानि सन्त्यज्य तार (तावद्) रन्ध्राणि कारयेत्।
कुर्यात्तथा अन्यरन्ध्राणि सप्तसंख्यानि कौशलात् ।।६८१।।
बदरी बीज तुल्यानि सन्त्यज्यार्द्धार्द्धमंगुलम्।
प्रान्तयोर्बन्धनं कार्यं स्वर्णाद्यैर्नाद हेतवे।
सिक्थकेन कला देया तेन सुस्वरता भवेत् ।।६८२।।

कला-कलना, स्वर्णादिमुखबन्धस्थिरीकरणं सिक्थकेन सम्पादनीयम् इति भावः। अयमुक्त प्रकारो वंशो नाम्ना पंचांगुलः। एवं फूत्कार रन्ध्राद् यावन्त्यंगुलानि परित्यज्य ताररन्ध्राणि कारयेत्, तानि तन्नामानि भवन्ति। यथा षडंगुलत्यागे षडंगुलनामा वंश इत्यष्टादश पर्यंतम्।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उसमें कनिष्ठांगुलि के तुल्य बीच में छिद्र हो। जो शिल्पविद्या में प्रवीण है, वही चित्ताकर्षक वंश बनाये ॥६७८॥

(मतंग मुनि ने कहा है कि बांस से ही वंश बनाया जाय, लेकिन अन्य लकड़ी से भी बनाया जाय तो वह उसी आकार का होने के कारण वंश ही कहा जाता है।) ॥६७९॥

उसमें ऊपर के भाग में दो अंगुल छोड़कर एक अंगुलि के पर्व जितना फूत्कार रन्ध्र बनायें ॥६८०॥

उसके बाद पाँच अंगुल छोड़कर तार स्वर के लिए रन्ध्र (छिद्र) बनायें। ये रन्ध्र बड़ी कुशलता से बनाये जायं और इनकी संख्या सात हो ॥६८१॥

प्रत्येक में आधा अंगुल का अंतर हो, छिद्र बेर के बीज जितना बड़ा हो। नाद (ध्वनि) माधुर्य के लिए दोनों ओर सुवर्ण वगैरह से बाँधना चाहिए। स्वर-माधुर्य के लिए सिक्थक (मोम) से कलापूर्ण ढंग से मुख का बंधन करना चाहिए ॥६८२॥

कला यानी कलना, स्वर्णादि से मुख का बंधन मोम की सहायता से स्थिर करना चाहिए। उपर्युक्त वर्णित वंश पंचागुल कहलाता है। फूत्कार रन्ध्र से जितने अंगुलों को छोड़करताररन्ध्र बनाये जाते हैं, उस संख्या से ही उस वंश का नाम होता है। जैसे छः अंगुल छोड़कर ताररन्ध्र बनाया जाय, तो वह वंश षडंगुल कहलाता है। इस प्रकार अठारह अंगुल तक उसके नाम होते हैं।।

तदुक्तम्—

पंचांगुलोऽयं वंशः स्यादेकैकांगुल वर्धितः।
षडंगुलादि नाम्ना स्याद्यावदण्टादशांगुलम्।
फूत्कारात्तार रन्ध्रस्य यावदंगुलमन्तरम्।
तदेव नाम वंशस्य वांशिकैः परिकीर्त्यते ॥६८३॥

अथ त्याज्यांगुलमाह—

एकांगुलो द्वयंगुलश्च त्र्यंगुलश्चतुरंगुलः।
अतितारतरत्त्वेन वांशिकैः परिकीर्त्यते (समुपेक्षितः) ॥६८४॥
त्रयोदशांगुलो वंशोऽपरः पंचदशांगुलः।
निन्दितो वंशतत्त्वज्ञैस्तथा सप्तदशांगुलः ॥६८५॥
फूत्काररन्ध्रादेतावदंगुलत्यागेन ताररन्ध्रं न कार्यमित्यर्थः।
तत्राप्यंगुलविशेषत्यागेन श्रेष्ठ्यमाह (दामोदरे)
(सुषिर संज्ञाः) महानन्दस्तथा नन्दो विजयोऽथ जयस्तथा।
चत्वार उत्तमा वंश्या मतंगमुनि सम्मताः ॥६८६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तत्र कथमेषां महानन्दादि संज्ञा इत्याह–
दशांगुलो महानन्दो नन्द एकादशांगुलः।
द्वादशांगुलमानस्तु विजयः परिकीर्तितः ।।६८७।।

ऐसा कहा है – पंचांगुल वंश होता है और उसके बाद एक-एक अंगुल बढाते जाते हैं। छः अंगुल से लेकर अष्टादश (१८) अंगुल तक नाम के वंश होते हैं। फूत्कार के रन्ध्र से जितने अंगुल अंतर पर तार रन्ध्र बनाया जाता है, वही नाम उस वंश का होता है, ऐसा वंशकलाभिज्ञों का कहना है ।।६८३।।

अब कितने अंगुलों का अंतर त्याज्य है, उसका वर्णन करते हैं– एक, दो, तीन और चार अंगुल छोड़कर ताररन्ध्र बनाया हुआ वंश अति उच्च स्वर का होने से वंशशास्त्रज्ञ उसका त्याग करते हैं ।।६८४।।

तेरह, पन्द्रह और सप्तदश अंगुल छोड़कर ताररन्ध्रवाले वंश को तत्त्वज्ञों ने निन्दित अथवा त्याज्य कहा है।।६८५।।

फूत्कार रन्ध्र से इतने रन्ध्र छोड़कर ताररन्ध्र बनाये जाते हैं, उनमें १३, १५ एवं १७ अंगुल छोड़कर तारछिद्र नहीं बनाने चाहिए। उनमें भी विशेष अंगुलों के त्याग से श्रेष्ठता का वर्णन दामोदर में किया गया है।

मुनि मतंगने कहा है कि महानन्द, नन्द, विजय और जय– ये चार उत्तम वंश कहे जाते हैं ।।६८६।।

इसकी महानन्दादि संज्ञा का विवरण इस प्रकार है– दश अंगुल छोड़कर बनाया हुआ वंश महानन्द कहलाता है, ग्यारह अंगुल छोड़कर बनाया हुआ वंश नन्द कहलाता है, और बारह अंगुल प्रमाण का वंश विजय नाम से प्रसिद्ध है ।।६८७।।

चतुर्दशांगुलमितो जय इत्यभिधीयते ।।६८८।।
एतेन दशैकादश द्वादशचतुर्दशांगुलाः श्रेष्ठाः।
पंचादि नवांगुलान्ता मध्याः। एक द्वि त्रि चतुस्त्रयोदश–
पंचदशांगुलाः निन्दिताः इत्यर्थः।

अथ वांशिकगुणाः (दामोदरे)–
सुस्थानत्वं सुस्वरत्वमंगुल्यत्सारणक्रिया।
समस्तगमकज्ञानं रागरागांगवेदिता ।।६८९।।
क्रिया भाषाविभाषासु दक्षता गीतवेदने (वादने)।
सुस्थाने चापि दुःस्थाने नादनिर्माण कौशलम् ।।६९०।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गातॄणां स्थानदातृत्वं तद्दोषाच्छादनं तथा
वांशिकस्य गुणा एते मया संक्षिप्य दर्शिताः ।।६९१।।
गातॄणां स्थानदातृत्वं- गायकानां नादविरतौतत्पूरकत्वम्।
अथास्य दोषाः
बहुकृत्वः शिरः कम्पः स्वस्थानाप्राप्तिरेव च।
वृथा प्रयोग बाहुल्यमल्पता गीतवादने।
एभिर्दोषैर्युतोऽतीव निन्दितो वांशिको मतः ।।६९२।।

चौदह अंगुल छोड़कर बनाये गये वंश को जय कहा जाता है ।।६८८।।

इससे यह सिद्ध हुआ कि दस, ग्यारह, बारह और चौदह अंगुल का सर्वश्रेष्ठ है। पाँच से नौ अंगुल तक का मध्यम है। एक, दो, तीन, चार, तेरह एवं पन्द्रह अंगुल का निन्द्य है।

दामोदर में वंश बजानेवालों के गुणों का वर्णन इस प्रकार है। सुस्थान का ज्ञान, सुस्वर उत्पत्ति की शक्ति, योग्य रूप से अंगुलियों का संचालन, सभी गमकों का ज्ञान, राग एवं उसके अंगों का ज्ञान, क्रिया, भाषा, विभाषा में दक्षता, गीत जानने व बजाने में चातुर्य, अच्छे स्थान या विरुद्ध स्थान पर योग्य नाद-निर्माण का कौशल, गानेवालों को गाने अथवा गुणप्रदर्शन का अवसर देना, उनके दोषों को ढंकना, बांसुरी बजानेवालों के ये गुण मैंने संक्षेप में कहे हैं ।।६८९, ६९०, ६९१।।

गानेवालों को स्थान देने का अर्थ है- गायक का नाद बंद होने पर उसे पूरा करना।

अब उनके दोष कहते हैं- बार-बार मस्तक हिलाना, अपने-अपने सम-स्थल की प्राप्ति न होना, व्यर्थ में गीत-वादन प्रयोग का बाहुल्य प्रदर्शित करना या अल्पत्व दिखाना। इन दोषों के कारण वंशीवादक निन्दास्पद होता है ।।६९२।।

अथ रक्तवांशिक लक्षणम्—
स्थानकादिलयाभिज्ञो गमकाढ्यः स्फुटाक्षरः।
शीघ्रहस्तः कलाभिज्ञो वांशिको रक्त उच्यते ।।६९३।।

(अथ अंगुलिगुणाः)
प्रयुक्तिरर्धयुक्तिश्च युक्तिश्चेत्यंगुलेर्गुणाः ।।६९४।।

अथ फूत्कृतिगुणाः
नैबिड्यं प्रौढ़ता वापि सुस्वरत्वं च शीघ्रता।
माधुर्यमपि पंचामी फूत्कृतेषु गुणाः स्मृताः ।।६९५।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

फूत्कारेषु दोषमाह–
सीत्कारबहुलः स्तब्धो विस्वरः स्फुरितो लघुः।
अमाधुर्यं च विज्ञेयाः षट्दोषाः फूत्कृतेः क्रमात्।
नोक्तं लक्षणमन्येषां बाहुल्याच्च प्रसिद्धितः ।।६९६।।

अथ घनम् (दामोदरे)
(अनुरक्तं विरक्तं च द्विविधं घनवाद्यकम्।
गीतानुगमनुरक्तं विरक्तं तालसंश्रयम्।) ।।६९७।।

बंशी बजाने की कला में निष्णात वांशिक के लक्षण बताते हैं– स्थानक आदि लय को जो जाननेवाला है, गमक ज्ञान से जो समृद्ध है, स्पष्ट अक्षरों को जो व्यक्त करनेवाला है, जिसके हाथ की जलद (द्रुत) गति है और जिसे वादनकला का पूर्ण ज्ञान है, ऐसे वांशिक को 'रक्त' कहते हैं ।।६९३।।

अब वादक की अंगुलियों के गुण कहते हैं – प्रयुक्ति (जोर से दबाना), अर्धयुक्ति (आधा दबाना), युक्ति (सामान्य दबाना)– ये तीन गुण हैं ।।६९४।।

अब फूत्कार (फूंकने) के गुण कहते हैं–

नैबिद्र्य (जोर से), प्रौढ़ता (गंभीरता से), सुस्वरत्व, शीघ्रता और माधुर्य– ये पाँच गुण फूत्कार के हैं ।।६९५।।

फूत्कार के दोष हैं– बीच में अधिक सीत्कार होना, स्तब्धता (ठहरना), विस्वरता, स्फुरितत्व (कम्पितत्व), जल्दीबाजी, मधुरता का अभाव,– फूत्कार के ये छः दोष हैं। औरों के लक्षण बहुत हैं और प्रसिद्ध भी हैं, अतः यहाँ नहीं कहे गये हैं ।।६९६।।

अब घनवाद्य का निरूपण करते हैं– ('दामोदर' के अनुसार अनुरक्त और विरक्त– ये दो प्रकार के घन हैं। गाने का अनुसरण करनेवाला अनुरक्त है और ताल का अनुसरण करनेवाला विरक्त है। ।।६९७।।

करतालः कांस्यबलो जयघण्टोऽथ शुक्तिका।
कम्पका घटवाद्यं च घण्टातोद्यं च घर्घरम् ।।६९८।।
झंझातालश्च मंजीरः कर्तर्यंकुर एव च।
द्वादशैते मुनीन्द्रेण कथिता घनसंज्ञकाः ।।६९९।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अथ करताल लक्षणमाह–
त्रयोदशांगुलन्यासौ शुद्धकांस्यविनिर्मितौ।
मध्ये मुखौ स्तनाकारौ तन्मध्ये रज्जुगुम्फितौ ।।७००।।
पद्मिनीपत्रसदृशौ कराभ्यां रज्जुयन्त्रितौ।
करतालावुमौ वाच्यौ पाटैर्झमकटैरिति ।।७०१।।

प्रकारान्तरमप्याहुः तद्यथा–
त्रयोदशयवव्यासं वक्त्रपिण्डं (वक्रपिष्टे) यवोन्मितम्।
यवपंचकगंभीरं मध्ये च यवसप्तकम् ।।७०२।।
विस्तृतं वर्तुलं निम्नं यवत्रयमितं ततः।
पृष्ठतो मध्यदेशे च शिवलिंग समाकृतिः ।।७०३।।
मध्ये गुंजासमच्छिद्रं पट्टसूत्रादि गुम्फितम्।
अत्यम्ल पैष्टिनिर्दग्ध शुद्धकांस्य विनिर्मितम् ।।७०४।।
काश्मीरादिसमुद्भूतं तालमाहुर्मनीषिणः।

घनवाद्य बारह प्रकार के होते हैं। करताल, कांस्यबल, जयघण्टा, शुक्तिका, कम्पका (कम्पिका, कम्बिका, कण्ठिका), घटवाद्य, घण्टातोद्य, घर्घर, झंझाताल, मंजीर, कर्तरी, अंकुर ये बारह घनवाद्य ऋषिश्रेष्ठ ने बताये हैं ।।६९८-६९९।।

करताल के लक्षण कहते हैं– तेरह अंगुल व्यास के (दो) शुद्ध कांस्य धातु से बनाये जाते हैं। उनके मध्य में छिद्र होता है। उसमें रस्सी डाली जाती है। उनका आकार स्तन के सदृश होता है। वे कमलिनी के पत्ते की तरह होते हैं। दोनों हाथों में रज्जु से बाँधे जाते हैं। उन्हें करताल कहते हैं। झमकट आदि इसके पाटाक्षर हैं ।।७००-७०१।।

अन्य प्रकार से भी इसका वर्णन किया गया है– तेरह जव जितना व्यास, एक जव जितना मोटा, बीच में पाँच यव(जव) जितना गहरा, सात जव जितना विस्तृत, वर्तुलाकार, गहरा, पिछले भाग में, मध्य में शिवलिंग के आकार का, बीच में एक गुंज जितना छिद्र, रेशमी रस्सी से गुम्फित (बँधा हुआ), अतिशय आम्ल द्रव्य में जलाकर शुद्ध किये हुए कांस्य से कश्मीर में बनाया हुआ हो, तो उसे विद्वान लोग ताल कहते हैं ।।७०२, ७०३, ७०४।।

सुनादं दक्षिणं तालं ततो हीनं च वामकम् ।।७०५।।
कुर्वीत तद्द्वयं धार्यं तर्जन्यंगुष्ठयोगतः।
वामहस्तस्य तालस्य मध्यमीषच्च नामितम् ।।७०६।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तिर्यग् दक्षिणतालस्य परिध्यंशेन ताडयेत् (तालयेत्)
तालांगैर्वादयेच्चैव प्लुतदीर्घलघुद्रुतैः ।।७०७।।
इति करताल:।
इतरेषां लक्षणं विस्तरभयादुपेक्षितम्।

किंच–
(वाद्य निर्णयः)
ततं वाद्यं च देवानां गन्धर्वाणां च सौषिरम्।
आनद्धं राक्षसानांच मानवानां घनं विदुः ।।७०८।।

इति वाद्यनिर्णयः।
इति श्रीकृष्णरससंगीतसंग्रहे तालनाट्यादि–निरूपणनाम चतुर्थ प्रकरणम्।।

दक्षिण ताल सुंदर नादवाला हो और बाँया उससे कुछ कम हो। उन दोनों को तर्जनी (अंगुष्ठ के पास की) और अंगुष्ठ से पकड़ें। बायें हाथ के ताल का मध्यभाग कुछ नवाँकर पकड़ें और उस पर दक्षिण हस्त के ताल (ताल की परिधि के भाग) से ताड़न करें और ताल के जो प्लुत, दीर्घ, लघु, द्रुत आदि अंग हैं, उनके अनुसार बजायें ।।७०५, ७०६, ७०७।।

यहाँ करताल का लक्षण समाप्त हुआ।

अन्यों के लक्षण विस्तारभय से नहीं कहे गये हैं।

वाद्यों का निर्णय इस प्रकार है– ततवाद्य (तन्तुवाद्य) देवों का है। सुविरवाद्य (छिद्रयुक्त) गन्धर्वों का है। आनद्ध वाद्य (चर्मवाद्य) राक्षसों का है। घनवाद्य (ताल आदि) मानवों का है। इस प्रकार वाद्यों का निर्णय है ।।७०८।।

यहाँ श्रीकृष्णरस संगीत संग्रह का तालनाट्यादि निरूपण नामक चतुर्थ प्रकरण समाप्त हुआ।।

इति शम्

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

–पंचमं प्रकरणम्–

।।श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः।।

वन्दे वृन्दावनाधीशौ प्रियवर्गसमीहितौ (समन्वितौ)।
तल्लीलाकृष्टचित्तेभ्यस्तद्भक्तेभ्यो नमोनमः ।।७०९।।
प्राचीनवाचः सुविचार्य सोहमज्ञोऽपि गीतामृतलेशलिप्सुः।
तदेव लक्ष्यं पुनरेव वक्तुं सन्तः क्षमध्वं शरणागतोऽस्मि।।७१०।।
गीत वेदार्थ विस्तारे प्रवृत्तो यत् कृपावशात्।
तमीशं परमा भक्त्या प्रणमामि महाशयम्।।७११।।
अथ पूर्वोक्त लक्षणस्य गीतस्य भेदानाह–
अनिबद्धं निबद्धं च द्विधा गीतमुदीरितम्।
आलप्तिरनिबद्धं स्याद्रागालापनरूपिणी।
आलाप्तिर्बन्धहीनत्वादनिबद्धमितीरितम् ।इति। ।।७१२।।
रागस्यालपनं प्रकटीकरणमित्यर्थः।

हरिनायकस्तु–
वर्णालंकारसंयुक्ता गमकस्थानचित्रिता।
आलाप्तिरुच्यते तज्ज्ञैर्भूरिभंगिमनोहरा ।इति। ।।७१३।।

श्रीराधाकृष्ण को प्रणाम।

श्रीवृन्दावन के स्वामी को, जो अपने प्रिय सहचरों के साथ विराजमान हैं, जो परस्पर को चाहते हैं, और उनकी लीला से जिनका चित्त आकृष्ट होता है, ऐसे उनके भक्तों को बारबार प्रणाम है ।।७०९।।

अज्ञ होते हुए भी मैं गीतरूपी अमृत के बिन्दु के लाभ की इच्छा से प्राचीन आचार्यों की वाणी, अच्छी तरह सोचकर, उसी लक्ष्य को पुनरपि संपादन करने के लिए, बोलना आरंभ करता हूँ। मैं सज्जन विद्वानों का शरणार्थी हूँ, वे मुझे क्षमा करें ।।७१०।।

गीतरूपी वेद का अर्थ विस्तार करने के लिए जिनकी कृपा से मैं प्रवृत्त हुआ, उस उदार हृदयवाले परमेश्वर का मैं परम भक्तिभाव से वंदन करता हूँ।।७११।।

अब पहले वर्णन किये गये गीतों के प्रकार बताते हैं–

गीत के दो प्रकार हैं– अनिबद्ध और निबद्ध। आलप्ति अंश को अनिबद्ध कहते हैं, इसमें रागों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का केवल आलाप होता है। आलप्ति या आलाप में वर्णरचना का बंधन न रहने से इसे अनिबद्ध कहा जाता है ।।७१२।।

राग का आलापन यानी राग को प्रकट करना।

हरिनायक ने इस प्रकार कहा है– जो वर्णालंकारों से संयुक्त है, गमकस्थानों से परिपूर्ण, आश्चर्यपूर्ण है, अनेक प्रकार की रचनाओं (स्वरसंगतियों) के कारण जो मन को हरण करता है, उसे तज्ज्ञजन आलाप्ति या आलाप कहते हैं ।।७१३।।

एतेनातालानां सर्वेषामालापे प्रवेशः।
वर्णालंकारस्तु निरर्थकहुंकारादिशब्दः।
संगीतोक्त स रि गमेत्यादि वर्णालंकारश्च।
आलप्तेर्बहुधा भेदा न प्रपंचभियेरिताः।

निबद्धमाह–
बद्धं धातुभिरंगश्च निबद्धमभिधीयते।
शुद्धं छायालगं क्षुद्रमिति तच्च त्रिधा मतम् ।।७१४।।
तत् निबद्धम्।

तत्र शुद्धमाह–
आलापैर्धातुभिश्चांगैः संयुक्तं शुद्धमुच्यते ।।७१५।।
आलापोऽत्र सार्थकपदैरेवेति सांप्रदायिकाः।

हरिनायकस्तु–
आलापो गमकालप्तिरक्षरैर्वर्जिता मता। इत्याह।

संगीतसारे तु–
शुद्ध सालगसंकीर्णभेदाद् गीतं त्रिधा मतम् ।।७१६।।
तत्र शुत्रगीतमेव संकीर्णशब्देनोच्यते।
तच्च स्यात् त्रिविधं तु शुद्धकमिदं छायालगं क्षुद्रकम्।
इति तेनैवोक्तत्वात्। दामोदरोक्तं कथमिष्यते।

संगीतदर्पणे च–
अन्योपजीविताशून्यः शुद्धोऽन्यस्य तु जीवनात्।
सालगः स तु विज्ञेयः संकीर्णो द्वय जीवनात् ।।७१७।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इससे यह सिद्ध होता है कि जिसमें ताल नहीं है, ऐसे सब अतालों का समावेश आलाप में किया जाता है। अर्थहीन हुंकारादि शब्दों और संगीत के सा, रि, ग, म आदि को वर्णालंकार कहते हैं। आलप्ति के अनेक प्रकारों का निरूपण विस्तार भय से मैंने यहाँ नहीं किया है।।

निबद्ध गीत का वर्णन करते हैं- धातु और अंगों से जिसकी रचना की जाती है, उसे निबद्ध कहते हैं। उसके तीन प्रकार हैं, यथा शुद्ध, छायालग और क्षुद्र ।।७१४।।

शुद्ध गीत इस प्रकार होता है- आलाप, धातु और अंगों से जो युक्त है, वह शुद्ध है। सांप्रदायिक लोगों का कहना है कि इसमें आलाप सार्थक पदों से ही होता है ।।७१५।।

लेकिन हरिनायक ने कहा है कि आलाप गमक से ही होता है, इसमें अक्षर वर्जित हैं।

संगीतसार में कहा गया है कि गीत के तीन प्रकार हैं- शुद्ध, सालग और संकीर्ण।।७१६।। वहाँ संकीर्ण में ही क्षुद्र गीत का अन्तर्भाव है, क्योंकि आगे उसमें कहा गया है कि गीत तीन प्रकार का है- शुद्ध, छायालग और क्षुद्रकम्। दामोदर का मत आगे कहेंगे।

संगीत दर्पण में है- अन्य का जो उपजीवी, घटक नहीं होता वह शुद्ध है; अन्य का जो उपजीवी, घटक है, वह सालग है और जो दूसरे का घटक हो और स्वयं भी दूसरे से घटित हो, वह संकीर्ण है ।।७१७।।

हरिनायकस्तु-
संज्ञात्रयं निबद्धस्य प्रबन्धो वस्तु रूपकम्।
चतुर्भिर्धातुभिर्बद्धस्त्वंगैः षड्भिश्च कल्पितः ।।७१८।।
प्रकृष्टो यश्च बन्धः स्यात् स प्रबन्धो निगद्यते।
एतेन शुद्धगीतमेव प्रबन्ध इत्युच्यते।
त्र्यात्मकै (त्र्यादिभिः) र्धातुभिश्चांगैः पंचभिर्वस्तु कथ्यते।
(आदिरिति पाठे आदिशब्दः स्वरूपार्थः। तेन त्रिसंख्यारूपैरित्यर्थः।)
द्विधातुकं तथा द्व्यंगं रूपकं परिकीर्तितम् ।इति। ।।७१९।।

अथ धातुमाह- हरिनायकस्तु-
प्रबन्धावयवो धातुः स चतुर्धा प्रकीर्तितः।
उद्ग्राहक मेलापक ध्रुवाभोगा इति क्रमात् ।।७२०।।
उद्ग्राहः प्रथमो भागस्ततो मेलापकः स्मृतः।
ध्रुवत्वाच्च ध्रुवः पश्चादाभोगस्त्वन्तिमो मतः ।।७२१।।
प्रबन्धावयवो धातुः स त्रिधेति गीतप्रकाशकारेणोक्तम्।
उद्ग्राहध्रुवाभोगरूपेण त्रिधेति भावः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तदुक्तं शिरोमणौ—
उद्ग्राहः प्रथमः पादः कथितः पूर्वसूरिभिः।
ध्रुवत्वाच्च ध्रुवो मध्य आभोगस्त्वन्तिमः स्मृतः ।।७२२।।
ध्रुवत्वान्निश्चलत्वात्पुनः पुनरुपादानादित्यर्थः।

हरिनायक ने निबद्ध के तीन प्रकार कहे हैं– प्रबन्ध, वस्तु और रूपक। चार धातुओं और छः अंगों से विशेष रूप से जो निबद्ध होता है अथवा बनाया जाता है, वह प्रबन्ध है ।।७१८।।

इससे यह सिद्ध हुआ कि शुद्ध गीत ही प्रबन्ध है। तीन धातुओं और पाँच अंगों से जो बनता है, वह वस्तु है। "त्र्यादिभिः" पाठ में आदि शब्द स्वरूप वाचक समझना चाहिए, इससे तीन ही धातु रहते हैं।

जिसमें दो धातु और दो अंग हैं, उसे रूपक कहते हैं ।।७१९।।

हरिनायक ने धातु का वर्णन इस प्रकार किया है– प्रबन्ध के अवयव को धातु कहते हैं। उसके चार प्रकार हैं– उद्ग्राह, मेलापक, ध्रुव, आभोग– ये क्रम से होते हैं ।।७२०।।

गीत का प्रथम भाग उद्ग्राह है, दूसरा भाग है मेलापक, तीसरा ध्रुव है और अंतिम भाग है आभोग ।।७२१।।

गीत–प्रकाशकार ने कहा है कि प्रबन्ध का अवयव धातु है। उसके तीन नाम बताये हैं– उद्ग्राह, ध्रुव और आभोग। शिरोमणि में इसी प्रकार कहा गया है– पूर्वाचार्यों ने उद्ग्राह को प्रथम पाद, मध्य में होने से ध्रुव को द्वितीय और अंतिम भाग को आभोग कहा है ।।७२२।।

ध्रुव का अर्थ है निश्चल, पुनः–पुनः आनेवाला उपादान होने से उसे ध्रुव कहते हैं।

तदुक्तं संगीतदर्पणे—
धातुः प्रबन्धावयवः स चोद्ग्राहादिभेदतः।
चतुर्धा कथितो भागस्तु आद्य उद्ग्राहसंज्ञकः ।।७२३।।
आदावुद्गृह्यते गीतं येनोद्ग्राहस्तदा भवेत्।
मेलापको द्वितीयस्तूद्ग्राहध्रुवकमेलनात् ।।७२४।।
ध्रुवत्वाद् ध्रुव संज्ञस्तु तृतीयो भाग उच्यते।
आभोगस्त्वन्तिमो भागो गीतपूर्णत्वसूचकः ।।७२५।।
यत्तु हरिनायकेनोक्तम्—
ध्रुवाभोगान्तरे जातो धातुरन्योऽन्तराभिधः।
स तु सालगसूडस्थो रूपकेष्वेव दृश्यते।
मेलापकान्तराख्यौ तु न भवेतां क्वचित् क्वचित् ।।इति।। ७२६।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दामोदरे तु–

उद्ग्राहं प्रथमं गीत्वा ध्रुवं गायेत्ततः परम्।
ततोऽन्तरा ध्रुवस्तस्मादाभोगो ध्रुवकस्ततः ।।७२७।।
उद्ग्राहः प्रथमः पादः कथितः पूर्वसूरिभिः।
गीत्वा पूर्वपदं न्यासो यत्र स ध्रुवको मतः ।।७२८।।

संगीतदर्पण में इस प्रकार कहा गया है– प्रबन्ध के अवयव को धातु कहते हैं। वे उद्ग्राहादि चार प्रकार के हैं। इसका आद्य (प्रथम) भाग उद्ग्राह है ।।७२३।।

गीत का ग्रहण (स्वीकार, आरंभ) जिससे होता है, उसे उद्ग्राह कहते हैं। तृतीय ध्रुव और प्रथम उद्ग्राह को मिलानेवाला द्वितीय धातु मेलापक कहा जाता है। निश्चित, पुनः – पुनः गाया जानेवाला तृतीय ध्रुव है और अंतिम भाग, जो गीत की समाप्ति का सूचक या बोधक है, आभोग कहा जाता है ।।७२४-७२५।।

हरिनायक ने इस प्रकार कहा है– ध्रुव और आभोग अवयवों के बीच में अन्तरा नामक और एक धातु होता है, वह सालगसूड; रूपक में ही दिखायी देता है। लेकिन मेलापक और अन्तरा अवयव कहीं-कहीं नहीं भी होते हैं ।।७२६।।

दामोदर में इस प्रकार कहा गया है– पहले उद्ग्राह गाकर, उसके बाद ध्रुव गाना चाहिए, फिर अन्तरा, पुनः ध्रुव, उसके बाद आभोग, फिर ध्रुव ।।७२७।।

पूर्वाचार्यों ने कहा है कि उद्ग्राह प्रथम पाद है। पूर्वपद गाने पर जहाँ न्यास होता है, उसे ध्रुव कहते हैं ।।७२८।।

यत्रैव कविनाम स्यात् स्यात् स आभोग ईरितः ।इति।
अत आभोगे कविनाम दातव्यम्। न तु यत्र कविनाम स आभोग इति।

तदुक्तम्–

आभोगे कविनाम स्यात्तथा नायकनाम च ।इति। ।।७२९।।

अथांगान्याह–

प्रबन्धस्य षडंगानि स्वरश्च बिरुदं पदम्।
तेनकः पाटतालौ च स्वराः सरिगमादयः ।।७३०।।
गुणोल्लेखतया यत्तद् बिरुदं परिकीर्तितम्।
अतोऽन्यवाचिकं यत्तु तत् पदं समुदाहृतम् ।।७३१।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तेनेतिशब्दस्तेनः स्यान्मंगलार्थेऽवधारितः।
धां धां धुग् धुग् धुगेत्याद्याः पाटा वाद्याक्षरोत्कराः।
आदियत्यादिकास्तालास्तालः स कथयिष्यते ।।७३२।।
दामोदरस्तु अंगमध्ये पदपरित्यागेन गमकमाह।
किन्तु गीतगुणमध्ये गमकः पूर्वाचार्यैर्लिखितः।
नत्वंगतया तस्माद् गमकशब्दोऽत्र पदवाचक
इत्यवधेयम् (अवज्ञेयम्)।

जिसमें कवि का नाम होता है, उस भाग को आभोग कहते हैं। इससे यह समझना चाहिए कि गीत के 'आभोग' नामक अवयव में कवि को अपना नाम ग्रथित करना चाहिए। ऐसा नहीं है कि कहीं भी, किसी भाग में कवि का नाम हो, तो उसे आभोग कहा जाता है। इसलिए कहा गया है कि आभोग में कवि का नाम होना चाहिए और नायक का नाम भी ।।७२९।।

अब प्रबन्ध के अंगों का वर्णन करते हैं- प्रबन्ध के छः अंग हैं- स्वर, बिरुद, पद, तेनक, पाट और ताल। स, रि, ग, म इत्यादि स्वर हैं। जिसमें गुणों का वर्णन है वह बिरुद है। इससे अधिक जो वर्णन है वह पद है। 'तेन' शब्द तेनक है, वह मंगलस्वरूप है। वाद्य के अक्षर धां धां धुक् धुक् धुक् आदि के समूह को 'पाट' कहते हैं। आदि, यति इत्यादि नाम से 'ताल' प्रसिद्ध हैं, उनका निरूपण आगे किया जायगा। ।।७३०, ७३१, ७३२।।

दामोदर ने अंगों के निरूपण में 'पद' न कहकर 'गमक' नाम से एक अंग कहा है, लेकिन पूर्वाचार्यों ने गीत के गुणों में गमक लिया है (अंग रूप में नहीं), इसलिए अंगों में 'गमक' शब्द से पद ही समझना चाहिए।

(संगीत पारिजाते)—
पदतालस्वराः पाटास्तेनो बिरुदनामकः।
इति गीते षडंगानि कथितानि मनीषिभिः ।।७३३।।
पदानि वाचकाः शब्दास्तालाश्चंचत्पुटादयः।
स्वराः षड्जादयस्ते स्युः पाटो वाद्योद्भवाक्षरम्।
तेनः स्यान्मंगलः शब्दो बिरुदं गुणानामयुक् ।इति। ।।७३४।।

अथ जातिमाह—
जातयः स्युः प्रबन्धानां पंचैव मुनिसम्मताः।
मेदिनी नन्दिनी दीपन्यथ स्यात् पावनी तथा ।।७३५।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तारावली तथैतासां लक्षणं प्रतिपाद्यते।
षडंगा मेदिनी प्रोक्ता पंचागा नन्दिनी तथा ।।७३६।।
दीपिनी चतुरंगा स्यात् पावनी त्र्यंगिका मता।
द्व्यंगा तारावली प्रोक्ता पुराणैर्गीतवेदिभिः ।।७३७।।
एतेनैकांगः प्रबन्धो न भवतीति प्रतिपादितम्।

संगीत पारिजात में है- मनीषियों ने कहा है कि पद, ताल, स्वर, पाट, तेन, बिरुद- ऐसे छः अंग गीत में होते हैं ।।७३३।।

गीत में जो अर्थबोधक शब्द हैं वे ही पद हैं। चंचत्पुट आदि नाम से ताल प्रसिद्ध हैं। षड्जादि स्वर हैं। वाद्य से उत्पन्न होनेवाले अक्षर पाट हैं। तेन मंगलवाचक शब्द है, जिसका प्रयोग पद्य (गीत) में किया जाता है। बिरुद वह है जिसमें गुणसमुच्चय इत्यादि का वर्णन है। इस प्रकार कहा गया है ।।७३४।।

अब जातियों का वर्णन करते हैं- प्राचीन आचार्यों को मान्य प्रबन्ध की पाँच ही जातियाँ कही गयी हैं। ये जातियाँ हैं- मेदिनी, नन्दिनी, दीपनी, पावनी, तारावली। अब उनके लक्षण बतलाते हैं। जिसमें छः अंग है वह मेदिनी है। पाँच अंगों से नन्दिनी होती है। चार अंगों से दीपिनी होती है। तीन अंगों से पावनी होती है। दो अंग जिसमें है वह तारावली कही जाती है। प्राचीन गीतशास्त्रज्ञों ने ऐसा कहा है। इससे यह प्रतिपादित होता है कि एक अंग का प्रबन्ध नहीं होता ।।७३५, ७३६, ७३७।।

पारिजाते—
प्रबन्धजातयः पंच वर्तन्ते ताः क्रमेण च।
षड्भिरंगैर्मेदिनी स्यान्नन्दिनी पंचभिर्भवेत् ।।७३८।।
चतुर्भिर्दीपनी प्रोक्ता त्रिभिरंगैस्तु पावनी।
द्वाभ्यां तारावली जातिरंगाभ्यामुपजायते ।।७३९।।
भेदः शुद्ध प्रबन्धानामानन्त्यादेक एव हि।
तत्रापि—
तालेनैकेन वा द्वाभ्यां त्रिभिर्वा बहुभिस्तथा।
प्रबन्धान् सुकविर्नूनं यथेच्छमुपकल्पयेत् ।।७४०।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किंच—
बहुतालाः प्रबन्धास्तु रागैर्बहुभिरेव च।
एकरागेण वा कल्प्याः पाटादीनां विधानतः।
आदि मध्यन्त विन्यासां पाटादीनां विधानतः।
भेदा बहुतरास्तेषां कस्तान् कात्स्न्र्यैन वक्ष्यति ।।७४१।।

तदुक्तम्—
न रागाणां न तालानां च वाद्यानां विशेषतः।
नापि प्रबन्धगीतानामन्तो जगति विद्यते ।इति ।।७४२।।

तत् प्रकारमाह—
अत्राभोगे कवेर्नाम तथा नायकनाम च।
एकतालीं निबध्नीयादालापानन्तरे तथा ।।७४३।।
इदानीन्तनास्तु आलापाभोगयोरेकत्र कविनायकयोर्नामकुर्वन्ति।
तत्र मूलं न पश्यामः।

पारिजात में कहा गया है– प्रबन्ध की पाँच जातियाँ हैं, क्रम से वे इस प्रकार हैं– छः अंगों से पूर्ण गीत की मेदिनी जाति है। पाँच अंगों से नन्दिनी जाति होती है। चार अंगों से दीपनी होती है। तीन अंगों से पावनी होती है। दो अंगों से तारावली जाति होती है। शुद्ध प्रबन्ध के भेद देखने पर वे अनन्त होंगे, अतः उतना विस्तार न कर शुद्ध प्रबन्ध का एक प्रकार ही कहा जाता है। ।।७३८, ७३९।।

अच्छे कवि प्रबन्धों की रचना अपनी इच्छानुसार एक, दो, तीन या बहुत तालों से गाने योग्य करें ।।७४०।।

बहुत तालों से युक्त या बहुत रागों से अन्वित अथवा एक राग से ही युक्त, अपनी इच्छा, कल्पना के अनुसार पाटादि की रचना के वैचित्र्य (आदि, मध्य या अन्त में विन्यास के वैचित्र्य) से उनके (प्रबन्धों के) अनन्त प्रकार होंगे, उनका संपूर्ण रूप से वर्णन कौन कर सकता है ।।७४१।।

शास्त्र में कहा गया है कि राग, ताल, वाद्य और प्रबन्ध गीतों का जगत् में अन्त नहीं है ।।७४२।।

अब अंगों के प्रकार कहते हैं– आभोग में कवि का नाम और नायक का नाम रहना चाहिए। आलाप के बाद एकताली की नियुक्ति करनी चाहिए ।।७४३।।

आधुनिक गुणी आलाप या आभोग में से किसी एक में कवि और नायक का नाम रखते हैं। उसमें मूल प्रमाण नहीं दिखता।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किंच–
अत्र प्रथमतस्तालो गीयते यैस्तु तैर्नरैः।
गीतावसाने दातव्यं मानं गानसमाप्तये।
शक्तिवर्ण्य विशेषेण नामान्येषां च कारयेत् ।।७४४।।

शक्तिविशेषेण यथा–
अकारादिक्षकारान्ताक्षर विन्यासान्मातृका प्रबन्धः।

किंच–
स रि ग मेत्यादि स्वरनामाक्षर विन्यासविशेषवशात्।
वांछितार्थप्रकाशनेन स्वरार्थप्रबन्ध इति।

वर्ण्य विशेषेण यथा–
विष्णुवर्णने विष्णुप्रकाश प्रबन्ध इति।

किंच–
आदियत्यादिकैस्तालैर्दशभिर्नवभिःपुनः।
सप्तभिर्वाऽपि कल्प्यन्ते प्रबन्धा रागरंजिताः ।।७४५।।
अत्र बाहुल्यभयादुदाहरणानि नोपन्यस्तानि।
किंच– (हरिनायक मतेन प्रबन्धनामानि)
एलाद्याः दुष्कराः सन्ति प्रबंधा मुनिभाषिताः।
तेभ्यः षड्विंशतिः प्रोक्ता हरिनायकसूरिणा ।।७४६।।
कथ्यन्ते क्रमशस्ते च नाममात्रेण केवलम्।
पंचतालेश्वरो वर्णः स्वरश्चैवांकचारिणी (तारिणी) ।।७४७।।
स्वरार्थ मातृका चैव तथा रागकदम्बकः।
स्वराद्यकरणं वर्त्मन्यथ तालार्णवस्तथा ।।७४८।।
श्रीरंगः श्रीविलासश्च पंचभंगिस्ततः परम्।

जो लोग प्रथम ताल गाते हैं, उन्हें गीत के अंत में 'मान' गीत-समाप्ति के लिए देना चाहिए। शक्ति (प्रतिभा) और वर्णनीय विषय के अनुसार उनके नाम देने चाहिए ।।७४४।।

शक्ति विशेष से नामों के उदाहरण – 'अ' से लेकर 'क्ष' तक के अक्षरों का क्रम से विन्यास हो, तो उसे 'मातृका प्रबन्ध' नाम देना चाहिए और स रि ग म आदि स्वरों के नामाक्षरों से विशेष

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रचना की गयी हो और उससे इच्छित अर्थ की सूचना होती हो, तो उसे 'स्वरार्थ प्रबन्ध' नाम देना चाहिए। वर्ण्य विशेष से नाम प्रदान का अर्थ है कि वर्णनीय विषय के नाम से, जैसे विष्णु का वंर्णन हो, तो 'विष्णुप्रकार्शी प्रबन्ध' नाम देना चाहिए।

आदि, यति इत्यादि दस, नौ या सात तालों से प्रबन्ध की रचना रागरंजित रहती है। विस्तारभय से यहाँ उदाहरण नहीं दिये गये हैं ।।७४५।।

हरिनायक के मत से प्रबन्धों के नाम इस प्रकार हैं– मुनियों ने एलादि प्रबन्ध कहे हैं, जो दुष्कर हैं। हरिनायक ने इनमें से छब्बीस (२६) कहे हैं। क्रम से उनके नाम इस प्रकार हैं– पंचतालेश्वर, वर्णस्वर, अंकचारिणी, स्वरार्थ, मातृका, रागकदम्बक, तालार्णव, श्रीरंग, श्रीविलास, पंचभंगि। ।।७४६, ७४७, ७४८।।

पंचाननोमातिलकौ सिंहलीलस्तथापरः ।।७४९।।
त्रिभंगिर्हंसलीलश्च तथा हरिविलासकः।
सुदर्शनः स्वरांगः श्रीवर्द्धनो हर्षवर्धनः ।।७५०।।
वीरः श्रीमंगलश्चैव लाहड़ी च प्रकीर्तिता।
नवरत्नाभिधः प्रोक्तस्तथा शरभलीलकः ।।७५१।।
कण्ठाभरणनामाचेत्येते षड्विंशतिर्मताः।
चन्द्रप्रकाशकाद्याश्च विद्यन्ते षट् तथापरे ।।७५२।।
संप्रत्येते तु सुकराः कविभिर्न भवन्ति हि।
एषु ये सुकराः पंचषास्तानेव प्रचक्ष्महे ।।७५३।।

कायबालः—
एभ्योऽन्यो कायबालाख्यः स एवादौ निरुच्यते।
यतस्तालाः प्रकाशन्ते पाटमात्रेण केवलम्।
पदानां कल्पनाभोगे कायबालः स ईर्य्यते ।।७५४।।
उदाहरणं तु गीतप्रकाशे मृग्यम्।

स्वरार्थः
स्वरैः पाटैः पदैस्तालै रचना वांछितक्रमात्।
यस्य स्यात्तेनकैर्न्यासः स वर्णस्वर उच्यते।
स्वरादेवादिविन्यासभेदादेष चतुर्विधः ।।७५५।।
स्वरादिवर्णस्वरः, पाटादिवर्णस्वरः, पदादिवर्णस्वरः,
तेनादिवर्णस्वरश्च।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पंचानन, उमातिलक, सिंहलील, त्रिभंगि, हंसलील, हरिविलास, सुदर्शन, स्वरांग, श्रीवर्धन, हर्षवर्धन, वीर, श्रीमंगल, लाहड़ी, नवरत्न, शरभलील, कण्ठाभरण। चन्द्रप्रकाश आदि और छः हैं, लेकिन वे इस युग में कवियों को सुकर नहीं लगते यानी दुष्कर लगते हैं। उनमें जो पाँच – छः सुकर लगते हैं, उनके नाम कहते हैं ।।७४९, ७५०, ७५१, ७५२, ७५३।।

इनसे अलग और एक है कायबाल, उसे प्रथम कहते हैं। जिसमें केवल पाटाक्षरों से ताल प्रकट किये जाते हैं और पदों की रचना आभोग रहती है, वह कायबाल है ।।७५४।।

इसका उदाहरण गीतप्रकाश में देखें।

स्वरार्थ– स्वर, पाट, पद, ताल से जिसकी रचना इच्छानुकूल क्रम से हो, और जिसमें तेनकों से न्यास हो, उसे 'वर्णस्वर' कहते हैं। स्वरादि में से प्रत्येक को आदि में यानी प्रथम रखने से उसके चार प्रकार होते हैं– स्वरादिवर्णस्वर, पाटादिवर्णस्वर, पदादिवर्णस्वर, तेनादिवर्णस्वर ।।७५५।।

यत्र स्वल्पाक्षरैरेव वांच्छितार्थोऽभिधीयते।
स स्वरार्थो भवेद् द्वेधा शुद्धमिश्रप्रभेदतः ।।७५६।।
स्वराक्षरैः सरिगमपधनिभिर्यथेच्छं वांच्छितार्थोऽभिधीयते चेत्तदा स्वरार्थ इति।

(मातृका)–
एकैक मातृकावर्णपूर्वकाणि पदानि चेत्।
क्रमेण यत्र गीयन्ते मातृका सा त्रिधा मता ।।७५७।।
दिव्या च मानुषी दिव्यमानुषी चेति तत्र तु।
दिव्या संस्कृतया वाचा मार्गतालैश्च गीयते ।।७५८।।
मानुषी प्राकृतगिरा देशी तालेन निर्मिता।
द्वयोर्मिश्रयणादुक्ता मातृका दिव्यमानुषी ।।७५९।।
तालेनैकेन रागेण बहुभिर्वा प्रयोगतः।
सर्वमन्त्रमयी ह्येषा सर्वसिद्धिप्रदायिनी ।।७६०।।
मार्गदेशीतालौ वक्ष्येते। तयोर्मध्ये येनकेनचिन्निर्मिता इत्यर्थः। इति मातृका।

(स्वल्परागकदम्बः) –
अल्पो रागकदम्बोऽस्ति रागाणामेव दर्शनात्।
अस्य रागकदम्बस्य भाषादेर्नियमो नहि ।।७६१।।
अन्यस्तु दुष्करत्वान्न लिखितः।
इति स्वल्परागकदम्बकः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जिसमें थोड़े अक्षरों से ही इच्छित अर्थ कहा जाता है, उसे स्वरार्थ कहते हैं। उसके दो प्रकार हैं- शुद्ध और मिश्र ।।७५६।।

यहाँ अक्षर शब्द का अर्थ 'सरिगमपधनि' स्वराक्षर है, उनसे ही इच्छित अर्थ प्रकट हो, तो वह 'स्वरार्थ' है।

मातृका- अ-कारादि, क-कारादि मूलाक्षरों के क्रम से पदों की रचना हो, तो उस प्रबन्ध को मातृका कहते हैं। उसके तीन प्रकार हैं- दिव्या, मानुषी और दिव्यमानुषी। संस्कृत भाषा में रचित और मार्गताल में गीत प्रबन्ध दिव्या है ।।७५७-७५८।।

प्राकृत भाषा में रचित एवं देशीताल में गीत मानुषी है। दोनों के मिश्रण से दिव्यमानुषी नामक मातृका प्रबन्ध होता है ।।७५९।।

एक ताल और एक राग से, अनेक राग-तालों से, प्रयोगानुसार इसका गान होता है। यह सर्वमन्त्रमयी और सर्वसिद्धिप्रदायिनी है ।।७६०।।

मार्ग-देशी तालों का वर्णन आगे किया जायगा, इनमें से किसी एक में निर्मित, रचित हो।

रागकदम्ब नामक प्रबन्ध बहुत कम हैं। उनमें सिर्फ राग ही रहते हैं। इसमें भाषा अथवा अन्य कोई नियम नहीं होता। इसके और भी अन्य प्रकार दुष्कर होने के कारण लिखे नहीं हैं। इति स्वल्परागकदम्बक ।।७६१।।

(तालार्णवः)—
तालार्णवे भूरितालो भवेत् संस्कृतभाषया।
योगाद् गद्यस्य पद्यस्य स द्वेधा परिकीर्तितः ।।७६२।।
इति तालार्णवः।

(श्रीरंगः)—
तालैरागैश्चतुर्भिः स्यात् श्रीरंगोऽन्ते पदान्वितः ।।७६३।।
पदैः सुप्तिङ्.न्तैरन्ते प्रान्ते घटिन।
इति श्रीरंगः।

(श्रीविलासः)—
स्वरान्तः श्रीविलासः स्यात्तालै रागैश्च पंचभिः ।।७६४।।
स्वराः सरिगमाद्या अन्ते देया इत्यर्थः।
इति श्रीविलासः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(पंचभंगी)–
तेनकान्तः पंचभंगी।
श्रीविलास एव तेनाशब्दान्तः स्याच्चेत् तदा पंचभंगी भवति।
इति पंचभंगी।

(पंचाननः)–
पाटैः पंचाननोऽन्तगैः।।७६५।।
अस्यैवान्ते पाटाश्चेद्दीयन्ते तदा पंचाननः।
इति पंचाननः।

तालार्णव में रचना संस्कृत भाषा में होती है और अनेक ताल होते हैं। उसके दो प्रकार हैं– गद्य और पद्य। यह तालार्णव है ।।७६२।।

चार तालों और चार रागों से रचना हो और अन्त में संस्कृत पद हों, तो उसे श्रीरंग कहते हैं ।।७६३।।

पाँच रागों और पाँच तालों के अनुकूल रचना हो, और अंत में 'सरिगम' आदि स्वरों का संयोजन हो, तो उसे श्रीविलास कहते हैं ।।७६४।।

श्रीविलास के ही अंत में तेनक शब्द हो तो वह पंचभंगी प्रबंध है। और इसी के अंत में पाटाक्षरों का संयोजन हो, तो पंचानन-प्रबध होता है ।।७६५।।

(सिंहलीलः)–
स्वरैः पाटैश्च बिरुदैस्तेनकैर्योविरच्यते।
सिंहलीलेन तालेन सिंहलीलःस उच्यते ।।७६६।।
इति सिंहलीलः।

(तालस्तु चूड़ामणौ)–
सिंहलीलो लघोरन्ते दत्रयं परिकीर्तितः।
इति सिंहलीलः।

(हंसलीलः)–
स्वनाममतालको हंसलीलोऽङ्घ्रिपदपाटजौ ।।७६७।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वनामतालकः= हंसलील तालेन घटितः।
अंध्रिपदपाटजौ कोऽर्थः। एकपादः पदैर्निर्मितः।
एकस्तु पाटैद्धित्यर्थ।
तालस्तु रत्नमालायाम्। हंसलीलो विरामान्तं लघुद्वयमुदाहृतम् ।।७६८।।
इति हंसलीलः।

(लाहड़ी)–
यत्र वीररसेन स्यात् संग्रामचरितस्तुतिः।
बहुभिश्च बलैश्चैव (चरणैश्चैव) लाहड़ी परिकीर्तिता ।।७६९।।
नात्रोक्ता दुष्कराः केचित् पंचतालेश्वरादयः।
ईषद्भेदान्न सुकरा अप्युमातिलकादयः ।।७७०।।
अतो गीतप्रकाशकारेणोक्तमेतेषां लक्षणादिकं नात्र वर्णितम्
उक्त प्रकार निर्विशेषात् ।इति।

किंच–
सूडप्रबंधोऽपि शुद्धगीत मध्ये बहुभिर्लिखितः । तल्लक्षणन्तु।

स्वर, पाट, बिरुद, तेनक– इन चारों से जिसकी रचना हो और सिंहलील ताल से युक्त हो, तो वह प्रबंध सिंहलील है ।।७६६।। एक लघु और तीन द्रुत से सिंहलील ताल होता है, उसका ऐसा लक्षण चूड़ामणि में है।

हंसलील ताल से घटित हो और पद पाटों से चरण बने हों, तो हसंलील है। – एक चरण पदों से बना हो और दूसरा पाटों से।।७६७।।

रत्नमाला के अनुसार विराम के बाद दो लघु होने से हंसलील होता है ।।७६८।।

जिसमें वीररस से युद्ध के पराक्रम का वर्णन हो, अनेक प्रकार की सेनाओं का वर्णन हो और अनेक चरण हों, तो वह लाहड़ी प्रबन्ध होता है ।।७६९।।

इसके अतिरिक्त पंचतालेश्वर आदि प्रबन्ध हैं, जिनकी रचना कठिन है। और उमातिलक आदि प्रबन्ध हैं जो थोड़े भेद से भी कठिन हैं ।।७७०।। अतः गीतप्रकाशकार द्वारा वर्णित लक्षणों का यहाँ वर्णन नहीं किया है। उपरोक्त प्रकारों से कोई विशेष उनमें नहीं है। कितने ही आचार्यों ने सूड प्रबन्ध की भी गणना शुद्ध गीत में ही की है। उसका लक्षण इस प्रकार है–।

ताला न वादिका यत्र पाटादिरहिता यदि।
सूडप्रबन्धः कथित एकरागनिषेवितः ।।इति।। ।।७७१।।
इति लाहड़ी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(अथ छायलगमाह)–
शुद्धस्य लगतिच्छायां यत्तच्छायालगं विदुः।
रंजकं तद्भवेत्तालैर्वाद्याद्यैः (वाद्यैर्यः) सूडकल्पतम् ।।७७२।।
बहुनां तालानामेकत्र गुम्फनं सूडं, छायां लगति
इत्यनेन शुद्धस्य यत्किंचिल्लक्षणेनेदं भवतीत्युक्तम्।

तदुक्तम्–
उक्तानामेव भावानां छायामात्रं भवेद्यदि।
छायालगः स विज्ञेयो मुनिभिर्भरतादिभिः ।।७७३।।
अस्य सालगमिति नामान्तरमपि।

तदुक्तं हरिनायकेन–
अथच्छायालगो यस्तु सूडः स एव सालगः इति ।।७७४।।
अस्य तु मतभेदाद् बहुत्वम्।
तथा च दामोदर – पंचमसारसंहितयोः
ध्रुवको मण्ठकश्चैव प्रतिमण्ठो निःसारुकः।
रासकः प्रतितालश्च तथान्या चैकतालिका।
यतिश्च झुमरी चेति सालगः सूड ईरितः ।।७७५।।

जिसमें नौ (९) से लेकर अधिक ताल हों और पाट आदि न हों और वह एक ही राग से बना हो, तो उसे सूड प्रबन्ध कहते हैं ।।७७१।। यहाँ लाहड़ी समाप्त।

अब छायालग का निरूपण करते हैं– शुद्ध प्रबन्ध की छाया (कुछ लक्षण) जिसमें है, वह छायालग है। सूड से उसकी रचना की जाती है। बहुत तालों और वाद्यों के कारण वह मनोहर लगता है। बहुत तालों की एक में योजना, गुम्फन हो, तो उसे सूड कहते हैं। 'छायां लगति' का अर्थ है– शुद्ध की थोड़ी छाया (लक्षण) उसमें रहती है ।।७७२।।

इस प्रकार कहा गया है– ऊपर कहे गये लक्षणों की सिर्फ छाया हो, तो भरतादि मुनियों ने उसे छायालग कहा है ।।७७३।। इसी का दूसरा नाम सालग है।

हरिनायक ने कहा है कि जिसे छायालग सूड कहते हैं, वही सालग है ।।७७४।। मतभेद से इसके बहुत प्रकार हैं।

दामोदर और पंचमसारसंहिता में इसके भेद इस प्रकार हैं– ध्रुव, मण्ठ, प्रतिमण्ठ, निःसारुक, रासक, प्रतिताल, एकतालिका, यति, झुमरी– ये सालग सूड हैं ।।७७५।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ध्रुवकादीनां भेदमाह—

ध्रुवकाः षोडष प्रोक्ता मण्ठकाः षट् प्रकारकाः।
प्रतिमण्ठाश्च पंचैव सप्तख्याता निःसारुकाः ।।७७६।।
चत्वारो रासकाः प्रोक्ताश्चत्वारः प्रतितालकाः।
एकताली च त्रिविधा चतस्रो यतयो मताः ।।७७७।।
एकैव झुमरी चेति सालगाः कथिता इमे।
केऽप्याहुश्चच्च (श्चंचः) रीकाद्याः सन्त्यन्ये दश सालगाः।
ऊनविंशतिरेवं ते भवन्ति भुवि सालगाः ।।७७८।।

हरिनायकेऽपि—

आद्यो ध्रुवस्ततो मण्ठः प्रतिमण्ठक एव च।
अड्डतालः प्रतिवासः एकतालीत्यसौ मतः ।।७७९।।
अयं तु सूडः प्राक्सिद्धः शाड्.र्गदिवस्य सम्मतः।
इत्यादिसालगानांतु लोके सिद्धिर्यतो नहि ।।७८०।।
दुष्करत्वात्तन्न मया लक्षणैस्तैः प्रकीर्तिताः।
प्रयुज्यते सम्प्रति यः सूडो रम्यः कवीश्वरैः।
स एव संप्रत्यस्माभिर्लिख्यते लोकसिद्धितः ।।७८१।।

तत्र च—

आदि यतिर्निःसारुश्चाड्ड (ड्ड) तालस्त्रिपुटस्तथा।
रूपको झंपको मण्ठः एकतालीति कीर्तिताः ।।७८२।।

ध्रुवकादि के प्रकार कहते हैं— ध्रुवक सोलह कहे गये हैं, मण्ठक छः प्रकार के हैं, प्रतिमण्ठ पाँच प्रकार के हैं, निःसारुक सात प्रकार के हैं, रासक चार प्रकार के हैं, प्रतितालक चार प्रकार के हैं, एकताली तीन प्रकार के हैं, यति चार प्रकार के हैं, झुमरी एक ही है। इस प्रकार ये सालग कहे गये हैं। कुछ गुणियों ने चच्चरीका (चंचरीका) आदि अन्य दस सालग कहे हैं। वे सालग उन्नीस (१९)ही होते हैं। ।।७७६, ७७७, ७७८।।

हरिनायक ने भी पहले ध्रुव, बाद में मण्ठ, प्रतिमण्ठ, अड्डताल, प्रतिवास, एकताली कहे हैं। ये सूड पहले से सिद्ध हैं और शाड्.र्गदिव को मान्य हैं। इन सालगों की प्रसिद्धि लोगों में नहीं है, क्योंकि इनकी रचना दुष्कर है, इसीलिए मैंने सम्बंधित लक्षणों से उनका वर्णन नहीं किया है। इस समय श्रेष्ठ कवि जिस सुंदर सूड का प्रयोग करते हैं, लोकसिद्धि के कारण उसी का मैं वर्णन करता हूँ ।।७७९, ७८०, ७८१।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वहाँ इस प्रकार कहा गया है- आदि, यति, निःसारु, अज्ञ (अड्ड), त्रिपुट, रूपक, झंपक, मण्ठ, एकताली ये नौ (९) ताल हैं ।।७८२।।

एभिस्तु नवभिस्तालैः कल्पितः सूड उच्यते ।।७८३।।
इत्येष रंजकः सूडो गाने वाद्ये च नर्तने ।इति ।।७८४।।
न स्यात् प्रायोऽड्डतालोऽत्रेत्याह दामोदरः स्वयम्।
केचित् कुड़क्कोपाड्डौ चात्राहुस्तेन भवेदयम् ।।७८५।।
अप्येकादश तालात्मा स इदानीं विविच्यते।
प्रागादि यतिर्निःसारु मण्ठादीनां यथाक्रमम्।
गानमन्ते चैकताल्याह इत्येष नियमः क्वचित् ।।७८६।।

किंच–
आदितालो भवेदादावन्ते स्यादेकतालिका।
अन्येषां नियमाभाव एवमाहुश्च केचन ।।७८७।।

अथैतेषां ध्रुवमण्ठलक्षणत्वमाह–
अथैतेण्वेव तालेषु केचित् स्युर्ध्रुव लक्षणाः।
मण्ठलक्षणकाः केचित् केचिच्चोभय लक्षणाः ।।७८८।।

(तदुक्तं) –
ध्रुवाद्यौ यति निःसारुमण्ठानन्त्यो मण्ठलक्षणः।
अन्त्य एकताली

इन नौ (९) तालों से जिसकी रचना की गयी है, वह 'सूड' कहा जाता है। यह सूड ही गाने, बजाने और नर्तन में बड़ा मनोरंजक होता है ।।७८३-७८४।।

दामोदर में कहा गया हैं कि इसमें प्रायः अड्डताल नहीं होता। कुछ लोगों ने कहा है कि इसमें कुडक्क, उपाड्ड ताल भी होते है। इससे यह ग्यारह (११) ताल का एकादश ताल स्वरूप भी होता है। इसका विवेचन करते हैं। पहले आदि, यति, निःसारु, मण्ठ आदि क्रम से गाने के बाद अन्त में एकताली का गान होता है। कहीं-कहीं इस प्रकार का नियम है ।।७८५-७८६।।

कुछ लोगों ने ऐसा भी कहा है कि पहले आदिताल, अन्त में एकताली तथा बीच में अन्य; कोई नियम नहीं है ।।७८७।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अब इनमें ध्रुव और मण्ठ के लक्षण कहते हैं- इन्हीं तालों में कुछ ध्रुव लक्षण और कुछ मण्ठलक्षण हैं और कुछ उभय लक्षण भी हैं। ध्रुवलक्षण = यति, निःसारु। मण्ठ और अंतिम एकताली – ये मण्ठलक्षण हैं। ध्रुवलक्षण = ध्रुव यति निःसारु) ॥७८८॥

आदि रूपक झम्पाड्ड त्रिपुटाः स्युर्द्विलक्षणाः ॥७८९॥
द्विलक्षणा= ध्रुवलक्षणा मण्ठलक्षणाश्च।
कुडक्को मण्ठलक्ष्मा स्याद् विलक्ष्मोपाड्डतालकाः ॥७९०॥

सारे तु–
चंचत्पुटश्चाचपुटः सिंहविक्रीड़ितस्तथा।
सिंहनन्दनमुख्याये तेऽपि स्युर्मण्ठलक्षणाः ॥७९१॥

तत्र ध्रुवलक्षणमाह–
ज्ञेयः स ध्रुवलक्षणो यदि भवेदुद्ग्राह एव ध्रुवः।
तूर्ध्वः खण्डमिह द्विधातु गदितं द्विर्गेयमेवोच्चकैः ॥७९२॥
द्विधातु= द्व्यवयवम्– प्रथमखण्डापेक्षया द्वितीयखण्ड उच्चैर्गेयः।
द्वित्रिमात्राधिकः प्रथमखण्डसममात्रो वा इति केचित्।
उदाहरणं यथा– आदितालेन मल्लाररागेण=
जय जय सुंदर नन्द तनुज दयितांजननिभ जनरंजन आ रे।
कमलदलेक्षण गोकुलवल्लभ गोपसुताधृति भंजन आ रे ।
इति प्रथमः खण्डः।

आदि, रूपक, झम्प, अड्ड, त्रिपुट– ये उभयलक्षण हैं। इसमें ध्रुवलक्षण और मण्ठलक्षण भी हैं। कुडक्क मण्ठलक्षण है और उपाड्ड उसके विरुद्ध लक्षणवाला है ॥७८९-७९०॥

संगीतसार में है– चंचत्पुट, चाचपुट, सिंहविक्रीड़ित और सिंहनन्दन– ये मण्ठलक्षण हैं ॥७९१॥

उनमें से ध्रुवलक्षण का वर्णन करते हैं– ध्रुवलक्षण उसे कहते हैं जिसमें उद्ग्राह अवयव ही ध्रुव हो जाता है यानी उद्ग्राह में ही ध्रुव (पुनः पुनः आनेवाला) है। उसके बाद दो धातुओं का एक खण्ड उच्च हो, जोर से गेय हो ॥७९२॥ द्विधातु का अर्थ है– प्रथम खण्ड से दूसरे में दो - तीन मात्राएं अधिक हों अथवा प्रथम खाड की जितनी ही मात्राएं हों, लेकिन उच्च गेय हों। उदाहरण– आदि ताल, मल्लार राग–

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे नन्द के पुत्र, सुंदर-सुंदर स्त्रियों के कज्जल जैसा स्निग्ध, नीलवर्णवाले, लोगों के मन को रंजित करनेवाले, हे कमल के पत्ते की तरह नेत्रयुक्त, गोकुलवासियों के प्रियतम, गोपालकन्यकाओं का धैर्य खण्डित करनेवाले, हे भगवम्!

यहाँ प्रथम खण्ड समाप्त हुआ।

यमुनापुलिनविभूषण रसमय वेणुवाद्यरत नृत्यगुरो।
मुरहर गोवर्धनधर अभ्रमुपति मदमर्दन ति आइ आइ आरे।
इत्युच्च खण्डः। अत्र खण्डद्वयमपि द्विर्गेयम्। प्रथमखण्डोपेक्षया द्वितीयखण्ड उच्चैर्गेय।

अथ ध्रुव–
मधुरानन मानद मुदवर्धन मधुसूदन भववन्द्य विभो
शरणागतरक्षक वर करुणामय नरहरि इति गायति आ रे।
ततस्तिः आई आई आरे आरे इत्यादयो निरर्थकाः।
सतालगीतलालित्यार्थं प्रयुज्यन्ते गायकैः, नेदं लक्षणं प्रविष्टम्।
केचित्तु ध्रुवलक्षणस्य चातुर्विध्यमाहुः। तदुक्तम्–
ध्रुवलक्ष्मा चतुर्धाऽयं विनोदो वरदस्तथा।
नन्दकः कंचुकश्चेति इति .... ।।७९३।।

स च संगीतसारे–
आलापादि ध्रुवोऽयं मत इह करुणे गीयते कंचुकाख्ये।
आलापान्ते ध्रुवो यो वरद इति मतो देवतानां स्तुतौ सः।
उद्ग्राहादिद्विखण्डो यदि भवति तथालापकादिः स नन्दो।
गायेत्तं चोत्सवेषु स्फुटमर्थ कुतुके स्याद् विनोदोऽपि तद्वत् ।।७९४।।
लक्षण व्यतिक्रमस्तु छन्दोऽनुरोधात्।

यमुना के पुलिन (वालुकामय प्रदेश) के भूषण हे कृष्ण, रसस्वरूप, वेणु बजाने में रत, और नृत्य के गुरु स्वरूप! मुर नामक असुर को मारनेवाले, गोवर्द्धनधर, अभ्रमु (एक दिशा के रक्षक हाथी की स्त्री-हथिनी) के पति बड़े दिग्गज के मद का मर्दन करनेवाले! ति आइ आइ आरे से राग-पूर्ति के लिए रचना है। यह उच्च खण्ड है यानी पहले की अपेक्षा ऊँचा गाया जाता है। दोनों खण्ड दो बार गाये जाने चाहिए।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अब ध्रुव- हे माधुर्यपूर्ण मुख वाले, दूसरों को मान देनेवाले, आनंद बढानेवाले, मधु नामक दैत्य को मारनेवाले, संसार के वंदनीय, भव्य-व्यापक देव, शरणागत के रक्षकवर, दयापूर्ण, नरसिंहरूप- इस प्रकार तुम्हारे गान भक्तजन करते हैं। इसके पश्चात् ति, आई, आइ, आरे आरे, ऐसे निरर्थक शब्दों का पाठ होता है। इसका संयोजन ताल के लिए और गाने का सौंदर्य बढाने के लिए होता है, लक्षण में इसका समावेश नहीं है। कुछ लोगों ने ध्रुवलक्षण के चार प्रकार बताये हैं- विनोद, वरद, नन्दक और कंचुक ।।७९३।।

संगीतसार में है- प्रथम ध्रुव और बाद में आलाप हो, तो उसे कंचुक ध्रुव कहते हैं, यह करुण रस में गेय है। आलाप के बाद ध्रुव हो, तो वरद ध्रुव होता है, यह देवस्तुति में प्रयोज्य है। पहले ध्रुव एवं बाद में आलाप हो तथा उद्ग्राहादि द्विखण्ड हो, तो वह नन्द ध्रुव होता है, उत्सवों में इसका विनियोजन है। विनोद ध्रुव भी वैसा ही है, वह कौतुक में प्रयोज्य है।।७९४।। छन्द के अनुसार लक्षण का व्यतिक्रम भी होता है।

अथ मण्ठलक्षणमाह–

स स्यान्मण्ठकलक्षणो यदि समावुद्ग्राहकाभोगकावुद्ग्राहाद्।
द्विगुणोऽथ सार्धगुणको वा स्याद् ध्रुवस्तत्र च ।।७९५।।
उद्ग्राहाभोगयोरपेक्षया ध्रुवौ द्विगुणमात्रावित्यर्थः।
सार्धगुणकमात्रौवेत्यर्थः समौ सममातृकौ।

तदुक्तं हरिनायकेन–
साम्यं यत्र तु मात्राया उद्ग्राहाभोगयोरथ।।इति।।७९६।।
उदाहरणमादितालो मल्लार रागेण–
कृष्णकृपामय मंगलविग्रह विश्वभयापह देवहरे।
गोपकुलोत्सववर्धन माधव गोवर्धनधर ति आइ आइ आरे ।
इत्युद्ग्राहः।
श्रीवृन्दावनभूपति आ आ
राधामुख सरसीरुह मधुकर नन्दतनुज रसकंन्द ति आरे।
इति सार्धैकगुणमात्रो ध्रुवः।
पीताम्बर सुर वन्द्य गदाग्रज सुंदर नटवर शौरे।
कंसारिपो मुरमर्दन माधव घनश्याम इति गायति आयारे।
इत्याभोगः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अथ मण्ठलक्षण कहते हैं- उद्ग्राह और आभोग दोनों अंग समान हों, तथा उद्ग्राह से डेढा या दुगुना ध्रुव हो, तो वह मण्ठलक्षण होता है। उद्ग्राह आभोग की अपेक्षा ध्रुव द्विगुण मात्रा का, सार्ध मात्रा का हो। आभोग, उद्ग्राह सम हो- इसका अर्थ है उनकी मात्राएं सम हों।

हरिनायक ने कहा है- उद्ग्राह - आभोग की मात्राएं जहाँ सम होती हैं, वह मण्ठलक्षण है ॥७९५-७९६॥

उदाहरण - आदिताल- मल्लार राग-

हे करुणामय कृष्ण। हे मंगलमय शरीरधारिन्। हे विश्वभीति को नष्ट करनेवाले। हे प्रकाशस्वरूप। हे हरे। गोकुल के गोपालों का आनंद बढानेवाले। लक्ष्मीपते। गोवर्धन धारण करने, उठानेवाले। ति आइ आइ आरे - स्वरपूर्ति। यह उद्ग्राह है।

हे श्रीवृन्दावन भूपति।

हे राधा के मुखकमल के भ्रमर। हे नन्दकुमार। हे रसकन्द - यह सार्धैकगुण (डेढा) ध्रुव है।

हे पीतवस्त्र धारण करनेवाले। देवों की वन्दना करने योग्य। गद के बड़े भाई, हे सुंदर। हे नटश्रेष्ठ। हे शूरसेन के पुत्र। हे कंस को मारनेवाले। हे मुर नामक दैत्य का मर्दन करनेवाले। हे लक्ष्मीपते। हे मेघ की तरह नीलवर्ण। ऐसे तुम्हारे स्वरूप का गान करते हैं।

यह आभोग हुआ।

एतेषां सालगादन्यत्र प्रायिकत्वमित्येके।
तदुक्तं कौमुद्याम्-
अमी उक्त प्रबन्धेषु बाहुल्येन स्थिताः पुनः।
सालगे नियता एभिर्विना तत्संभवो नहि ॥७९७॥
उदाहरणानि तु ग्रन्थान्तरे द्रष्टव्यानि मया तु प्रपंचभियानोक्तानि।

ननु-
उक्तो द्विखण्डो उद्ग्राह आभोगोऽपि द्विखण्डकः।
मण्ठलक्ष्मानुसारेण ध्रुवके खण्डकल्पना।
इत्युक्त त्वात् (तत्र विचारः) ॥७९८॥
उद्ग्राहाभोगयोर्द्विद्विखण्डात्मके सिद्धे उक्तोदाहरणे कथं बहवः खण्डादृश्यन्ते? उच्यते उद्ग्राहादीनां द्विखण्डत्वेऽपि प्रतिखण्डमवान्तर खण्डकल्पनैरेव निर्मेयम्। अतो याविद्भिरवांतरखण्डै रंजकता भवति तावन्त एव खण्डा उद्ग्राहादि खण्डे निवेशनीयाः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तदुक्तम्—
एकद्वित्रिचतुः खण्डैस्तालेषु विविधेषु च।
उद्ग्राहादेः कल्पनीन्तु यथा लालित्यमाचरेत् ।इति। ।।७९९।।
अत्र खण्डादिलक्षणं बाहुल्यभयान्नोक्तम्।

ये सब नियम सालग में ही होते हैं, अन्य गीतों में इनका नियम नहीं है।

कौमुदी में कहा गया है– ऊपर कहे गये प्रबन्धों में ज्यादातर रहते हैं, किन्तु सालग में निश्चित रूप में रहते हैं। इनके बिना सालग का होना संभव नहीं है ।।७९७।।

इनके उदाहरण अन्य ग्रन्थों में देखने चाहिए। विस्तारभय से मैंने यहाँ नहीं दिये हैं।

यहाँ इस प्रकार की शंका होती है कि उद्ग्राह के दो खण्ड बताये हैं और आभोग के भी दो खण्ड कहे हैं। मण्ठलक्षण के अनुसार ध्रुव में खण्डों की कल्पना की गयी है; ऐसा ग्रन्थों में कहा गया है ।।७९८।।

इस प्रकार यह बात सिद्ध है कि उद्ग्राह और आभोग प्रत्येक दो-दो खण्ड का है, तब फिर उक्त उदाहरण में बहुत खण्ड क्यों दिखायी देते हैं? इसका उत्तर इस प्रकार है– उद्ग्राहादि प्रबंध के अवयव दो-दो खण्ड के होते हैं, यह बात सिद्ध है, फिर भी प्रत्येक खण्ड में अवान्तर उपखण्डों की रचना, कल्पना करनी चाहिए। इसलिए जितने अवान्तर खण्डों से रोचकता होगी, उतने ही खण्ड (उपखण्ड) उद्ग्राहादि में भी रखने चाहिए।

इस विषय में इस प्रकार कहा गया है– एक, दो, तीन, या चार खण्डों से और नाना प्रकार के तालों में उद्ग्राहादि की रचना करनी चाहिए, जिससे कि लालित्य, माधुर्य, रोचकता की सृष्टि हो ।।७९९।।

विस्तारभय से खण्डादि का वर्णन नहीं किया है।

अथ तालांगपरिभाषा (गीतप्रकरणान्तर्गत)

अत्र छन्दोरत्नाकरे—
मस्त्रिगुरुस्त्रिलघुश्च नकारोभादिगुरुः पुनरादिलघुर्यः
जो गुरुमध्यगतोरलमध्यः सोन्त्यगुरुः कथितोन्त्तलघुस्तः ।।८००।।
गुरुरेको गकारश्च लकारो लघुरेककः।
प्लुतः पकार इत्येवं भो भूतश्च प्रकीर्तितः ।।८०१।।
अनुद्रुतो द्रुतश्चैव लघुर्गुरुस्ततः परम्।
प्लुतश्चैवं क्रमेणैवं तालांगानि तु पंचधा।
अनुद्रुतं विनान्येषां संज्ञा दलगपात्मिकाः ।।८०२।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अथ मात्रानियममाह—
लघ्वेकमात्रं तु गुरुर्द्विमात्रः।
प्लुतस्त्रिमात्रो द्रुतमर्द्धमात्रम्।
अनुद्रुतं तु द्रुतकार्द्धमात्रम्।
विराम इत्यस्य भवेच्च नाम।।८०३।।

अथैषां विन्यास प्रकारमाह—
तिर्यग्रेखानुद्रुतांगं शून्याकारं द्रुतं स्मृतम्।
लघुर्ऋज्वल्पिका रेखा रेखाधो वक्रिता गुरुः।
प्लुतं गुरोर्मूर्द्धरेखा तिर्यक् चेदक्षपार्श्वगा।।८०४।।
एतेषां घातस्थानादिकमत्र नोक्तम्।

ताल के अंगों के पारिभाषिक शब्दों का वर्णन करते हैं– छन्दोरत्नाकर में इस प्रकार है– मगण में तीनों गुरु हैं, नगण में तीनों वर्ण लघु हैं, भगण में प्रथम गुरु और दो लघु हैं, यगण में आदिवर्ण लघु है, जगण में मध्यगुरु है, रगण में मध्यलघु है, सगण में अन्त्य गुरु है और तगण में अन्त्य लघु है। एक गकार से गुरु, एक लकार से लघु समझना चाहिए। प्लुत के लिए प लिखा जाता है ।।८००-८०१।।

ताल के क्रम से पाँच अंग इस प्रकार हैं– अनुद्रुत, द्रुत, लघु, गुरु, प्लुत। अनुद्रुत को छोड़कर इनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं– द, ल, ग, प।।८०२।।

अब मात्राओं के नियम कहते हैं– लघु की एक मात्रा, गुरु की दो, प्लुत की तीन, द्रुत की आधी, अनुद्रुत की पाव मात्रा होती है। इसका (अनुद्रुत) नाम विराम ऐसा है। ।।८०३।।

इनके चिह्नों का विन्यास प्रकार बताते हैं– अनुद्रुत की तिरछी रेखा होती है। द्रुत शून्य से दिखाया जाता है। लघु के लिए छोटी सरल (खड़ी) रेखा है। गुरु के लिए नीचे वक्र रेखा है। गुरुचिह्न के ऊपर पार्श्व में वक्र रेखा प्लुत का चिह्न है ।।८०४।।

इनके घात स्थान आदि का वर्णन यहाँ नहीं किया गया है।

अथ सूडांगतालानाह यतः
तौर्यत्रिकं तु मत्तेभस्तालं तस्यांकुशं विदुः।
न्यूनाधिकं प्रमाणं तु प्रमाणं क्रियते यतः ।।८०५।।
विना तालेन गीतादेर्गीतशुद्धिर्न जायते।
कर्णधारं विना नाद इवातस्तान् प्रवक्ष्महे ।इति ।।८०६।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्थितेष्वप्यन्यतालेषु प्रबन्धांगतया पुनः।
आद्याद्येकादशानां च तालानां लक्षणं ब्रुवे।
आदिरेकेन लघुना रासो यः कैश्चिदुच्यते ।।८०७।।
तालानां ध्रुवलक्षणादिकमुक्तम्।
जय सुनायक वांछितदायक इति।

अथ यति–
लघुद्वन्द्वाद् द्रुतद्वन्द्वं यतिरित्युच्यते बुधैः।
साचारद्विविधा प्रोक्ता शुद्धा सत्रिपुटान्तरा ।।८०८।।
त्रिपुटस्तालविशेषोऽन्तरे पदमध्ये यस्याः।
अयं गीतमध्ये न प्रविशति।

तत् शुद्धा यथा–
जय जय नरकशासन (नाशन) दुष्टसंचय विहितशासन रे।

अब सूड के अंगभूत तालों का वर्णन करते हैं– तौर्यत्रिक (वाद्य, नृत्य, गीत=नाट्य) एक उन्मत्त हाथी है। उसे काबू में रखनेवाले अंकुश की तरह ताल है। न्यूनाधिक प्रमाण को नापने का साधन ताल है ।।८०५।।

ताल के बिना गीत की शुद्धि नहीं होती, जैसे कर्णधार के बिना नौका बेकार है, अतः तालों का निरूपण करते हैं। ताल बहुत हैं, फिर भी प्रबन्ध के अंगभूत होने के कारण आदिताल से लेकर ग्यारह (११) तालों के लक्षण बताते हैं। आदि ताल एक लघु से होता है, कुछ लोग इसे 'रास' कहते हैं ।।८०६-८०७।।

तालों के ध्रुवलक्षण आदि भेद पहले कह चुके हैं।

हे श्रेष्ठ नायक, शासक, स्वामिन्, इच्छित वस्तु देनेवाले। तुम्हारी जय जयकार हो।

अब यतिताल– दो लघु और दो द्रुत से यति कहा जाता है। संप्रदाय के अनुसार वह दो प्रकार का है– शुद्ध और सत्रिपुटान्तरा ।।८०८।।

त्रिपुट नामक ताल, अन्तरे यानी पदों के बीच में जिसके है वह सत्रिपुटान्तरा है। इसका गीत में प्रवेश नहीं है।

शुद्ध जैसे– जय जय हे नरकासुर को मारनेवाले और दुष्टों के संघ को दण्ड देनेवाले भगवन्!

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

त्रिपुटान्तरा यथा-
नौमि कौशिकयागहिंसकताड़कासुतनाशकम्।
त्रिपुटः
सा, सूसा, सा, रि, ग, म, रि, गृम, पध, पम, ध, नि, धनि, सा,
सूसा, सा।

अथ यतिः
दण्डकान्तरचारि मुनिपर देवराक्षसशासकम्।
यतिः- शारदाम्बुजमंजुमुखमखिलामरेश्वरवन्दितम्।
त्रिपुटः
त्रा ता था रि कुकुदि मिकि झेंकृण थोंकिट नांकिट ता त्ता ता।

अथ यतिः
अखिल जनहृदिमोदवर्द्धन देवकीसुत पाहिमाम्।

अथ निःसारुः
सविरामद्रुतद्वन्द्वान्निःसारे तु लघुद्वयम् ।।८०९।।

यथाः
विबुधाधिप भयभंजन पाहि निखिलजनरंजन रे।
निःसारुः षड्विधेत्ययं कुन्द नामा।

अथ अड्डतालः
षड्विधोऽड्डस्तत्र शंकुशीलौ ख्यातौ ब्रवीमि तौ।
लघोर्द्रुतद्वयेन स्यात् शंकुः शृंगारवीरयोः ।।(१००) ८१०।।

त्रिपुटान्तर का उदाहरण- नौमि. इत्यादि। विश्वामित्र का यज्ञ ध्वंस करनेवाले ताड़काराक्षसी के पुत्र सुबाहु को मारनेवाले राम, मैं तुम्हारी स्तुति करता हूँ। उसके बाद त्रिपुट के तालानुसार पाटाक्षर - सा, सूसा, सा, रि, ग, म, रि, गम, पध, पम, ध, नि, धनि, सा, सूसा, सा।।

अब यति - दण्डकारण्य में संचार करने वाले, मुनिगण जिसके वंदनीय है; हे राक्षसों का शासन करने वाले देव। शरद् ऋतु के कमल की तरह सुन्दर मुखवाले, सर्वदेवों के राजा इन्द्र ने जिसको वन्दन किया, मैं तुम्हारी स्तुति करता हूँ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

फिर त्रिपुट–पाटाक्षर–त्रा ता था रि कुकुदि मिकि झेंकृण थोंकिट नांकिट ता त्ता ता।

यति– सर्वजन के अन्तःकरण में आनन्द बढानेवाले, देवकी के पुत्र श्रीकृष्ण मेरी रक्षा करो।

निःसारु– विरामसहित दो द्रुत और दो लघु ॥८०९॥

यथा– हे देवों के स्वामी! भय का नाश करनेवाले, सर्वजन का मनोरंजन करनेवाले! निःसारु छः– प्रकार का है, (अतः) इसका नाम कुन्द है।

अड्डताल– अड्डताल छः प्रकार का है। उनमें शंकु और शील प्रसिद्ध हैं। उनका मैं वर्णन करता हूँ। एक लघु, उसके बाद दो द्रुत होने से शंकु होता है। यह शृंगार और वीर रस में अनुकूल है ॥(१००) ८१०॥

तदुदाहरणम्–
शान्ते शीलो विरामान्तद्रुतद्वन्द्वाल्लघुर्मतः ॥८११॥

यथा–
जय जनार्दन विभो भवभयापह (देव) हरे।
इदं द्वयोरप्युदाहरणम्।

अथ त्रिपुटः
द्रुतद्वयं विरामान्तं त्रिपुटः परिकीर्तितः ॥८१२॥

यथा–
कृष्णकेशव कंसमर्दन पाहि गोकुलचन्द्र हे।

अथ रूपकः
रूपकं तु विरामान्तं द्रुतद्वन्द्वमुदाहृतम् ॥८१३॥

यथा–
नन्दतनुज मंजुलमुख मंगलमय पाहिमाम्।

अथ झम्पः
झम्पः कोलो द्रुतद्वन्द्वात् सविरामादितीतरे ॥८१४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यथा–
गोपेन्द्रतनुजवर पाहि मां मोदकर।

अथ मण्ठकः
सगणाल्लघवोऽशब्दाश्चत्वारो मण्ठके स्मृताः ॥८१५॥
अशब्दाः= शब्दरहिताः।

शान्त रस में शील नामक अड्डताल का प्रयोग होता है। उसका स्वरूप है– दो द्रुत, द्रुत विराम और एक लघु (00◡1)॥८११॥

दोनों का उदाहरण– लोगों का संहार करनेवाले व्यापक देव, संसार की भीति को नष्ट करनेवाले, हे श्रीहरि।

त्रिपुट– तीन द्रुत और आगे द्रुतविराम। (000◡)॥८१२॥

उदाहरण– हे कृष्ण, हे केशव, कंस को मारनेवाले, गोकुल के चन्द्र।

रूपक– दो द्रुत, एक द्रुत विराम। (00◡)॥८१३॥

उदाहरण – नन्दतनुज, हे सुंदर मुखवाले, मंगलस्वरूप, मेरा रक्षण करो।

झम्प– दो द्रुत, बाद में द्रुतविराम (इसे कोल भी कहते हैं।) (00◡)॥८१४॥

उदाहरण– गोपराजा नन्द के श्रेष्ठपुत्र! हे आनंद उत्पन्न करनेवाले! मेरी रक्षा करो।

मण्ठक– सगण और चार शब्दरहित लघु। (।। SLLLL)॥८१५॥

(संगीतरत्नाकर – श्लोक २७७- प्रथम प्रकार– (।। SLLLL)

यथा–
गोपीकुलदुकूलचोर नन्दतनय जयकिशोर।

अथ एकताली–
(द्रुतेनैकेनैकताली) सा त्रिधा परिकीर्तिता।
विपुला चन्द्रिका रामा तत्रापि विपुलोच्यते ॥८१६॥
ध्रुवमात्रेण भिन्नत्वान्नोक्ते तत्र तथोत्तरे।
आलापपूर्वकोद्ग्राह्य विपुलानन्ददायिनी ॥८१७॥
आलापं गीत्वा तत्रोद्ग्राहं गायेदित्यर्थः।
अतएव एकतालीतः पूर्वमालापगानमेतन्मूलकमेव।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(उदाहरणं) यथा–
गोवर्धनघर माधव मुरहर।
मतान्तरे तथोच्यते कुड़क्कोपाड्डतालकौ।
द्रुतद्वन्द्वाल्लघुद्वन्द्वं कुडक्के परिकीर्तितम् ।।८१८।।

यथा–
गोपोत्सवकर रक्ष सुरेश्वर।

उपाड्डमाह–
उपाड्डतालमेकेन द्रुतेन परिकीर्तितम् ।।८१९।।

यथा–
नमः कमलनाभ ते (कमलाभ ते)।
लय वशादेकताली तो भिन्नम्।

उदाहरण– गोपियों के समुदाय के वस्त्र चुरानेवाले, हे नन्द के पुत्र किशोररूप! तुम्हारी जय हो।

एकताली– एकद्रुत से एकताली होती है (०), वह तीन प्रकार की कही गयी है। विपुला, चन्द्रिका, रामा, उनमें से विपुला इस प्रकार है।।८१६।।

जिसमें आलापपूर्वक उद्ग्राह है, वह विपुला आनन्द देनेवाली है। पहले आलाप गाकर बाद में उद्ग्राह गाया जाता है। इसी से यह प्रसिद्ध है कि एकताली के पहले आलाप गान किया जाता है।।८१७।।

उदाहरण– हे गोवर्धन पर्वत धारण करनेवाले! लक्ष्मीपते! मुरनामक असुर को मारनेवाले!

मतान्तर से कुडक्क और उपाड्ड तालों का वर्णन करते हैं। दो द्रुत और दो लघु (०० । ।) कुडक्क में होते हैं ।।८१८।।

उदाहरण– हे गोपालों को आनंद देनेवाले! देवों के स्वामी मेरी रक्षा करो।

उपाड्ड– एकद्रुत (०) से उपाड्ड होता है ।।८१९।।

उदाहरण– कमल की तरह कान्तिवाले! हे देव! तुम्हें प्रणाम।

एकताली भी एक द्रुत से ही होती है, लेकिन लय में फर्क है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एवं तु नवतिः सूडाः क्वचिदेकादशैरपि (दशापि च इति युक्तम्?) ।।८२०।।
अनयोरुदाहरणं तु संगीतकौमुदी गीतप्रकाशादौ द्रष्टव्यम्।
मया तु प्रपंचभयान्न लिखितम्।
(अथ तालस्य प्रयोगो यथा)
तालप्रयोगानर्हा ये नोक्ताः सैकं शतं बुधैः।
तेऽप्यत्र तद्विद्वां प्रीत्यैर्लिख्यन्ते लक्ष्य लक्षणैः ।।८२१।।
चंचत्पुटे तप्लुतौ च भगौ चाचपुटे स्मृतौ।
पलगा गलपाश्चैव षट्पितापुत्रके मताः ।।८२२।।
गत्रयं स्यात् प्लुताद्यन्तं सम्पक्वेष्टाकनामनि।
ताले गत्रयमुद्घट्टे आदौ (आदिताले) तु लघुरेककम् ।।८२३।।
रासोऽयमुच्यते कैश्चिद्दर्पणे दद्वयाद् गुरुः।
एकान्तरविरामाद्यश्चर्चरी षोडष द्रुतै ।।८२४।।
नो दो दौ लं सिंहलीले कन्दर्पे दौ लघू गुरुः।
गुरुत्रयाल्लपगलप्लुताः स्यात् सिंहविक्रमः ।।८२५।।
सलौ प्लुतौ च श्रीरंगः रंगलीले तु लौ गुरु।
रंगताले द्रुतौ गश्च द्वौ द्रुतौ मः परिक्रमे ।।८२६।।
प्रत्यंगसंज्ञके ताले मगणात् स्याल्लघुद्वयम्।
गजलीले विरामान्तं ज्ञेयं लघुचतुष्टयम् ।।८२७।।

इस प्रकार सूड ९० हैं। कहीं- कहीं ११ भी हैं? इनके उदाहरण संगीत कौमुदी, गीतप्रकाश आदि में द्रष्टव्य। विस्तारभय से मैंने यहाँ नहीं कहे हैं ।।८२०।।

अब तालों के प्रयोगों का वर्णन करते हैं- तालों के प्रयोग में कठिन जो १०१ ताल विद्वानों ने कहे हैं, ताल जाननेवालों की प्रसन्नता के लिए उनका वर्णन स्वरूप के साथ करते हैं ।।८२१।।

चंचत्पुट ताल में तगण और प्लुत। चाचपुट में भगण, गुरु। षट्पितापुत्रक में प्लुत, लघु, गुरु, गुरु, लघु, प्लुत। सम्पक्वेष्टाक में प्लुत, तीन गुरु, प्लुत। उद्धट्ट में तीन गुरु। आदिताल में एक लघु। कुछ गुणी इसे 'रास' कहते हैं। दर्पण में दो द्रुत, एक गुरु। चर्चरी में द्रुत, और द्रुतविराम, इस क्रम से आठ द्रुत, आठ द्रुतविराम मिलकर सोलह होते हैं। सिंहलील में नगण, द्रुत, द्रुत, द्रुत, लघु। कन्दर्प में दो द्रुत, दो लघु, गुरु। सिंहविक्रम में तीन गुरु, ल, प, ग, ल, प। श्रीरंग में सगण, ल, प, प। रंगलील में दो लघु, दो गुरु। रंगताल में दो द्रुत, गुरु। परिक्रम में दो द्रुत और मगण। प्रत्यंग में मगण, दो लघु। गजलील में चार लघु, लविराम ।।८२२, ८२३, ८२४, ८२५, ८२६, ८२७।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ताले त्रिभिन्ने नपदाः (लपदाः) लो दौ गो वीरविक्रमे।
विरामे लौ हंसलीले वर्णनीले तु दौ लगौ ॥८२८॥
राजचूड़ामणौ ताले द्रुतौ लश्च द्रुतौ लगौ।
रंगद्योते मोलपौ च राज्ञि गौ दौ गुरुर्लपौ ॥८२९॥

राज्ञि राजतालः।
ललपा गो ल गौलश्च सिंह विक्रीड़िते लगौ।
चतुर्द्रुतानि लौ दौ च गुरुः स्याद् वनमालिनि ॥८३०॥
वर्णताले गलौ दौ गः मिश्रताले दलौ गपौ।
रंगप्रदीपे तगपाः हंसनादे लपौ ददपाः (दपौ) ॥८३१॥
लतौ गः सिंहनादे स्यात् लौ दौ दौ मल्लिकादिके (मल्लिकामोद इति केचित्)।
लश्च दश्च लघुः स्यातां ताले शरभलीलके ॥८३२॥
ताल्लपौ रंगभरणे दौ लस्तुरगलीलके ॥८३३॥
अयमेव हयलील इति केचित्।
तन्न हयलीले विरामान्तद्रुतद्वन्द्वाद् द्रुतद्वयमिति
हरिनायकोक्तेस्तालान्तरमेतन्।
गुरुद्वयं लः प्लुतो लो गुरुर्दौ तः प्लुतो लघुः।
प्लुतो गुरुर्लौ निःशब्दाश्चतुर्णां सिंहनन्दने ॥८३४॥

त्रिभिन्न में नगण, प्लुत, द्रुत। वीरविक्रम में लघु, दो द्रुत, गुरु। हंसलील में लघु, लघुविराम। वर्णनील में दो द्रुत, लघु, गुरु। राजचूड़ामणि में दो द्रुत, लघु, दो द्रुत, लघु, गुरु। रंगद्योत में मगण, लघु, प्लुत। राजताल (राज्ञि)में दो गुरु, दो द्रुत, गुरु, लघु, प्लुत, दो लघु, प्लुत, गुरु, लघु, दो गुरु, लघु। सिंहविक्रीड़ित में लघु, गुरु। वनमाली में चार द्रुत, दो लघु, दो.द्रुत, गुरु। वर्णताल में गुरु, लघु, दो द्रुत, गुरु। मिश्रताल में द्रुत, लघु, गुरु, प्लुत। रंगप्रदीप में तगण, गुरु, प्लुत। हंसनाद में लघु, प्लुत, द्रुत, द्रुत, प्लुत (द्रुत, प्लुत) ॥८२८, ८२९, ८३०, ८३१॥

सिंहनाद में लघु, तगण, गुरु। मल्लिकादि (मल्लिकामोद) में दो लघु, चार द्रुत। शरभलील में लघु, द्रुत, लघु। रंगाभरण में तगण, लघु, प्लुत। तुरगलील में दो द्रुत, एक लघु- कुछ गुणी इसी को हयलील कहते हैं, लेकिन यह ठीक नहीं है क्योंकि हयलील में द्रुत, द्रुत विराम, दो द्रुत होते हैं; ऐसा हरिनायक ने कहा है; इससे यह सिद्ध होता है कि तुरगलील और हयलील दो भिन्न ताल हैं। सिंहनंदन में दो गुरु, लघु, प्लुत, लघु, गुरु, दो द्रुत, तगण (SSI) प्लुत, लघु, प्लुत, गुरु, लघु, लघु और चार निःशब्द ॥८३२, ८३३, ८३४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जो लगौ च जयश्रीर्विजयानन्दे लघुर्यगौ।
लौ द्रुतौ प्रतिताले च द्रुतौ लश्च द्वितीयके ।।८३५।।
मकरन्दे द्रुत द्वन्द्वं कीर्तौ लपगलप्लुताः।
प्लुताद्यन्तो गोविजयो ललभा जयमंगले ।।८३६।।
लघुर्गुरु द्रुतौ ताले राजविद्याधराभिधे।
सगणाल्लघवोऽशब्दाश्चत्वारो मण्ठके पुनः ।।८३७।।
जयताले तु भगणात् द्वौ लघू द्वौ द्रुतौ प्लुतौ।
सुदुर्बले दो (द्वौ) लघू च निःसारौ लाद् विरामिलः ।।८३८।।
द्रुताद्विरामिदं क्रीड़ा त्रिभंगिस्तु लघू गुरू।
कोकिलप्रिये गुरुलपाःश्रीकान्ते तगणाल्लघुः ।।८३९।।
चत्वारस्तु द्रुता गुर्वोर्मध्ये स्युर्बिन्दुमालिनि।
समे लौ दौ दं विरामि नन्दने लौ द्रुतौ प्लुतः ।।८४०।।
उदीक्षणे लौ गुरुश्च मल्लिका गद्वयात् प्लुतम्।
ढेंकिका रगणो वर्णमण्ठिका लदला द्रुतौ ।।८४१।।

जयश्री में जगण, लघु, गुरु। विजयानन्द में लघु, यगण, गुरु। प्रतिताल में दो लघु, दो द्रुत। द्वितीयक में दो द्रुत, लघु। मकरन्द में दो द्रुत। कीर्ति में लघु, प्लुत, गुरु, लघु, प्लुत। विजय में प्लुत, गुरु, प्लुत। जयमंगल में लघु, लघु, भगण। राजविद्याधर में लघु, गुरु, द्रुत, द्रुत। मण्ठक में सगण, चार लघु निःशब्द। जयताल में भगण, दो लघु, दो द्रुत, दो प्लुत। सुदुर्बल में दो द्रुत, दो लघु। निःसार में लघु, लघुविराम। क्रीड़ा में द्रुत, दविराम। त्रिभंगि में दो लघु, दो गुरु। कोकिलप्रिय में गुरु, लघु, प्लुत। श्रीकान्त में तगण, लघु। बिन्दुमाली में गुरु, चार द्रुत, गुरु। सम में दो लघु, दो द्रुत, द्रुत विराम। नन्दन में दो लघु, दो द्रुत, प्लुत। उदीक्षण में दो लघु, गुरु। मल्लिका में दो गुरु, प्लुत। ढेंकिका में रगण। वर्णमण्ठिका में लघु, द्रुत, लघु, दो द्रुत ।।८३५, ८३६, ८३७, ८३८, ८३९, ८४०, ८४१।।

लौ दौ गुरुश्चाभिनन्देऽन्तरक्रीड़ाविरामिदाः।
लघुताले चतुर्लाः स्युः दौ लौ गौ दीपके स्मृतौ ।।८४२।।
लघुः प्लुतो तः सगणो यत्र सोऽनंग ईर्य्यते।
विषमेऽष्टौ द्रुता मध्ये प्रान्ते च सविरामकाः ।।८४३।।
लदौ दलौ गुरुर्नान्दीतलोऽयं भरतोदितः।
लचतुष्काद् गुरुः कुन्दे मुकुन्दे लददा लघुः।।८४४।।
द्रुतनैके नैकताली कथिता पूर्वसूरिभिः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चतुर्विधस्तु कंकालः पूर्णः खण्डः समोऽसमः ।।८४५।।
त्रिद्रुतैर्दलगैः पूर्णः खण्डे द्वाभ्यां (दाभ्यां) गुरुद्वयम्।
समे लघुर्गुरुद्वन्द्वात् विषमे (असमे-पाठांतर) लाद् गुरुद्वयम् ।।८४६।।
चतुस्ताले दत्रयाल्लो केचिद् ग द चतुष्टयम्।
विरामादि विरामान्तं लचतुष्कं च खंखुडी ।।८४७।।
अभंगे लप्लुतौ राजझंकारे रगणाद् द्रुतौ।

अभिनन्द में दो लघु, दो द्रुत, गुरु। अन्तरक्रीड़ा में दो द्रुत, द विराम। लघुताल में चार लघु। दीपक में दो द्रुत, दो लघु, दो गुरु। अनंग में लघु, प्लुत, तगण, सगण। विषम में आठ द्रुत, मध्य, अंत में द्रुतविरामसहित (०००ℴ०००ℴ) नान्दी में लघु, द्रुत, द्रुत, लघु, गुरु– यह भरतमुनि ने कहा है। कुन्द में चार लघु, गुरु। मुकुंन्द में लघु, द्रुत, द्रुत, लघु। एकताली में एक द्रुत। पूर्वाचार्यों ने ऐसी एकताली कही है। कंकाल चार प्रकार का है– पूर्ण, खण्ड, सम, असम;– पूर्ण– तीन द्रुत, द्रुत, लघु, गुरु; खण्ड– दो द्रुत, दो गुरु; सम –गुरु, गुरु, लघु; विषम (असम)– लघु, दो गुरु। चतुस्ताल में तीन द्रुत, लघु; कुछ गुणी 'गुरु चार, द्रुत चार' कहते हैं। खंखुडी में लविराम, दो लघु, लविराम। अभंग में लघु, प्लुत। राजझंकार में रगण, दो द्रुत ।।८४२, ८४३, ८४४, ८४५, ८४६, ८४७।।

एकेन सविरामेण लघुना लघुशेखरः ।।८४८।।
प्लुतात् प्रतापशिखरे विरामान्तं द्रुतद्वयम्।
गजझम्पे गुरुस्त्वेको विरामान्तं द्रुतत्रयम् ।।८४९।। (मूले नास्ति)
चतुर्मुखाभिधे ताले जगणो लः प्लुतो भवेत्।
पौ लौ गौ लौ चतुर्व्योम प्लुतं तु यगणस्तथा ।।८५०।।
द्रुतद्वन्द्वं सुद्दिष्टं ताले झंकारके बुधैः।
प्रतिमण्ठे सभगणौ केश्चिन्माल्ल इतीर्यते ।।८५१।।
स्यात् तृतीयाभिधे ताले विरामान्तं द्रुतद्वयम्।
वसन्ते नगणान्मः स्याल्ललिते दद्वयाल्लगौ ।।८५२।।
शिवताले लाद् गुरुश्च करशाखा चतुर्द्रुताः।
षट्तालाख्ये बिन्दुषट्कं वर्द्धने दद्वयाल्लपौ ।।८५३।।
लौ दौ (चतुर्वर्गौ) वर्णयतौ राजनारायणे द्रुतौ जगौ।
द्रुतद्वन्द्वं लघुश्चैको मदने परिकीर्तितः ।।८५४।।
पार्वतीलोचने दौ द्वौ लददा भजजाः क्रमात्।
सारंगतालः कथितो विरामान्तं चतुर्द्रुतम् ।।८५५।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लघुशेखर में लघु, लविराम। प्रतापशिखर में प्लुत, द्रुत, द्रुतविराम। गजझम्प में गुरु, द्रुत, द्रुत, द्रुतविराम। चतुर्मुख में जगण, लघु, प्लुत। झंकार में दो प्लुत, दो लघु, दो गुरु, दो लघु, चार द्रुत, प्लुत, यगण, दो द्रुत। प्रतिमण्ठ में सगण, भगण। कुछ गुणी 'मगण और लघु' कहते हैं। तृतीय में द्रुत, द्रुतविराम। वसन्त में नगण, मगण। ललित में दो द्रुत, लघु, गुरु। शिवताल में लघु, गुरु। करशाखा में चार द्रुत। षट्ताल में छः द्रुत। वर्द्धन में दो द्रुत, लघु, प्लुत। वर्णयति में दो लघु, दो द्रुत। राजनारायण में दो द्रुत, जगण, गुरु। मदन में दो द्रुत, लघु। पार्वतीलोचन में दो द्रुत, लघु, दो द्रुत, भगण, जगण, जगण। सारंग में तीन द्रुत, एक द्रुत विराम ।।८४८, ८४९, ८५०, ८५१, ८५२, ८५३, ८५४, ८५५।।

श्रीनन्दीवर्द्धने भात् पः लीलाताले दलप्लुताः।
विलोकिते लो गौ दौ पः साल्लगौ ललितप्रिये ।।८५६।।
जनकाभिध ताले स्यान्नयसाश्च प्लुतो गुरुः।
द्रुतद्वयं विरामान्तं लक्ष्मीशो लौ प्लुतस्ततः ।।८५७।।
बिन्दुद्वयं विरामान्तं दप्लुतौ रागवर्द्धने।
उत्सवः कथितः प्राज्ञैर्लघोः पूर्वं प्लुतो यदि ।।८५८।।
एवमेकाधिकशतमुक्तास्ताला मनीषिभिः।
दामोदरादावेतेषां केषुचिद् दृश्यतेऽन्यथा।
ऋषीणां मतबाहुल्याद् विकल्पस्तेषु काङ्.क्षति ।इति ।।८५९।।

अथोदाहरणम्—

एवं चंचत्पुटः
तपौ चंचत्पुटः प्रोक्तः।

यथा—

नन्दतनुज कंजनयन मामव करुणानिधे।.
अयमष्टकलः।
भगौ चाचपुटे स्मृतौ।

यथा—

गोकुलरमणी समूहं भावये। अयं षट्कलः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीनन्दीवर्द्धन में भगण, प्लुत। लीलाताल में द्रुत, लघु,प्लुत। विलोकित में लघु, दो गुरु, दो द्रुत, प्लुत। ललितप्रिय में सगण, लघु, गुरु। जनक में नगण, यगण, सगण, प्लुत, गुरु। लक्ष्मीश में द्रुत, द्रुतविराम, दो लघु, प्लुत। रागवर्द्धन में द्रुत, द्रुतविराम, द्रुत, प्लुत। उत्सव में प्लुत, लघु (संगीत दर्पण में लघु, प्लुत है)। इस प्रकार विद्वानों ने १०१ ताल कहे है, दामोदर आदि ग्रंथों में कुछ तालों के नामरूप में भी भेद दिखायी देता है। ऋषियों के कई मत होने से ये विकल्प या भेद अपेक्षित ही है।।८५६, ८५७, ८५८, ८५९।।

उदाहरण – चंचत्पुट में तगण, प्लुत कहा गया है। हे नन्दकुमार, दयासागर, कमलनेत्र, मेरी रक्षा करो। यह अष्टकल है।।

चाचपुट में भगण, गुरु है। उदाहरण – गोकुल के सुन्दर युवतिवृन्द का मैं चिन्तन करता हूँ। यह षट्कल है।।

पलगा गलपाश्चैवं षट्पितापुत्रके मताः।।८६०।।

यथा –

कृष्णचैतन्यचन्द्रप्रभो दैववृन्दैकवन्द्य प्राणनाथ हे भो पाहि माम्।
अयं द्वादशकलः।
अपरेषां बाहुल्यभयोन्नोक्तम्।
अथ क्षुद्र (क्षुद्रादि) गीतामाह।
तालधातुयुतं वाक्यमात्रं क्षुद्रमितीर्य्यते।
बाहुल्येनेष्यते ह्यत्र ध्रुवमण्ठादिलक्षणम्।।८६१।।
न खण्डाक्षर मात्रादि बन्धोऽपि परिगण्यते।

किंच –

आदि निः सार मण्ठैश्च वर्जितं क्षुद्रगीतकम्। इति संगीतसारे ।।८६२।।
गीतप्रकाशेऽपि दृश्यते। तत्र मूलं न पश्यामः ।
सर्वो याज्योऽप्यनुप्रासस्तेष्वन्त्यस्यैव निश्चयः।।८६३।।
अन्त्यानुप्रासस्य।

तदुक्तं–

पञ्झटिकायां बिरुदावल्यां च क्षुद्रगीतादौ।
अन्त्यानुप्रासोऽयं निवेशनीयो विशेषज्ञैः। इति।।८६४।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

षट्पितापुत्रक में प्लुत, लघु, गुरु, गुरु, लघु, प्लुत होते है।।८६०।।

उदाहरण – हे स्वामिन्, श्रीकृष्ण चैतन्यरूप, चन्द्र की तरह आह्लाद देने वाले, देवसमुदाय के एकमेव वन्दनीय, प्राणों के नाथ, मेरी रक्षा करो। यह द्वादशकल है।

विस्तारभय से अन्यों के उदाहरण मैने नहीं दिये हैं।

अब क्षुद्रगीतों का निरूपण करते हैं – ताल से युक्त और धातु से घटित वाक्यरचना मात्र क्षुद्रगीत कही जाती है। इसमें अधिकतर ध्रुवमण्ठ का लक्षण अपेक्षित है।।८६१।।

खण्ड, अक्षरसंख्या, मात्रादि के नियम की रचना में अपेक्षा नही रहती। क्षुद्रगीत आदि, निःसार, मण्ठ से रहित होता है। ऐसा संगीतसार में कहा गया है। गीतप्रकाश में भी ऐसा ही मिलता है। उसमें मूल प्रमाण मालूम नहीं होता। इसमें सभी अनुप्रास संयोजन के योग्य है, किन्तु अन्त्यानुप्रास निश्चित है।।८६२-८६३।।

पज्झटिका में और बिरुदावली में इस प्रकार कहा गया है – विशेषज्ञों को अन्त्यानुप्रास का अभिनिवेश करना चाहिए।।८६४।।

स च यथा दर्पणे –

व्यंजनं चेद्यथावस्थं पूर्वस्वरसमन्वितम्।
आवर्ततेऽन्त्ययोज्यत्वादन्त्यानुप्रास उच्यते ।।८६५।।

प्रबन्धादौ शुद्ध(क्षुद्र) गीते बाहुल्येनास्य संस्थितिः।
अस्य अन्त्यानुप्रासस्य
एतेन शुद्धसालगयोरेवाक्षरमात्रादिनिर्णय इत्युक्तं भवति।

क्षुद्र गीतस्य भेदानाह –

तच्चतुर्विधमेव स्यात्तत्र चित्रपदाग्रिमा।।८६६।।
चित्रकला ध्रुवपदा पांचालीति प्रभेदतः।।८६७।।

अथ चित्रपदामाह –

केवलं पदमात्रेण वैचित्र्यं यत्र दृश्यते।
न धात्वादौ विचित्रत्वं ज्ञेया चित्रपदेति सा ।।८६८।।
पदवैचित्र्यं तु अकठोरानुप्रास प्रसादादिगुणयुक्तत्वमिति।
उदाहरणं श्रीजगन्नाथवल्लभे नाटके।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गुण्डकिरी रागेण –

कलयति नयनं दिशि दिशि वलितम्।
पंकजमिव मृदुमारुतचलितम्।
केलिविपिनं प्रविशति राधा।
प्रतिपदसमुदित मनसिज बाधा ।।ध्रु.।।
विनिदधती मृदुमन्थरपादम्।

संगीत दर्पण में अन्त्यानुप्रास के लक्षण इस प्रकार हैं – चरण के अन्त में व्यंजन यदि पूर्वस्वर के सहित जैसा का वैसा दूसरे चरण में रखा जाय तो वह अन्त की रचना होने के कारण अन्त्यानुप्रास कहा जाता है ।।८६५।।

प्रबन्ध आदि में शुद्ध(क्षुद्र) गीतों में विशेषतः इसकी योजना रहती है। इससे ऐसा सिद्ध हुआ कि शुद्ध, सालग में ही अक्षर और मात्रा आदि का नियम रहता है।

क्षुद्र गीतों के प्रकार कहते हैं। वह चार प्रकार का होता है – चित्रपदा, चित्रकला, ध्रुवपदा, पांचाली।।८६६- ८६७।।

उसमें चित्रपदा उस प्रकार है – केवल पदों में ही वैचित्र्य दिखायी देता हो, धातु आदि में विचित्रता, विस्मयकारकता न हो, तो उसे चित्रपदा कहते हैं।।८६८।।

पद का वैचित्र्य यानी कठोर वर्णों का अनुप्रास न हो और प्रसाद, ओज आदि गुण हों। इसका उदाहरण श्री जगन्नाथवल्लभ नाटक में।

गुण्डकिरी राग में – राधा क्रीडवन में प्रवेश करती है और सब दिशाओं में दृष्टि घुमाती है, उस समय उसके नयन मंद हवा से हिलने वाले कमल की तरह दिखायी देते हैं। प्रत्येक पद पर कामक्रीडा का उदय हो रहा है।।ध्रु.।। उसका पदक्षेप कोमल और मन्द हो रहा है।।

रचयति कुंजरगतिमनुवादम्।
जनयतु रुद्रगजाधिप मुदितम्।
रामानन्द राय कवि गदितम्(भणितम्) ।। आभोगः।
ध्रुवे सममात्रिकत्वान्मण्ठलक्षणायोगेन नेदं सालगगीतम्।
तत्र हि ध्रुवे तु द्विगुणा सार्धैकगुणा वा स इति लक्षणात्।

अथ चित्रकलामाह –

उद्ग्राहाभोगयोर्मात्रा समा न्यूना ध्रुवे यदि।
त्र्याद्याष्टावधि पादाढ्या ज्ञेया चित्रकलेति सा (ला हि सा)।।८६९।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

त्रिपदा चतुष्पदा यावदष्टपदा चित्रकलाया भेदाः।

यथा गीतगोविन्दे गुर्जरी रागेण –

हरिरभिसरति वहति मृदुपवने। (उद्ग्राह)
किमपरमधिकसुखं सखि भवने। (उद्ग्राह)
माधवे मा कुरु मानिनि मानम् अये।।ध्रु.।।
इत्याद्यनन्तरम् – श्रीजयदेव कवेरिदमुदितम्।
सुखयतु सुजनजनं हरिचरितम्। (आभोगः)

चलते समय मद से मत हाथी की झूमनेवाली गति का अनुकरण कर रही है। उसकी गति शिवजी के श्रेष्ठ हाथी को भी आनन्द प्रदान करे, तो आश्चर्य नहीं। कवि रामानन्द राय का कहना है। (आभोग)

ध्रुव समान मात्रा का होने से वह सालग गीत नहीं है; क्योंकि इसमें मण्ठलक्षण नहीं बैठता। मण्ठलक्षण में ध्रुव में दुगुनी या डेढी मात्राओं की संख्या होती है।

चित्रकला के लक्षण इस प्रकार हैं – उद्ग्राह और आभोग की मात्राएं समान हों, ध्रुव में कम हों, और तीन से लेकर आठ तक चरण हों, तो उसे चित्रकला कहा जाता है।।८६९।।

त्रिपदा, चतुष्पदा, आदि अष्टपदा तक चित्रकला के भेद होते हैं।

उदाहरण – गीतगोविन्द में – गुर्जरी राग में – राधा की सखी राधा से कहती है – मन्द-मन्द वायु बह रही है, श्रीहरि वृन्दावन में अभिसरण कर रहे हैं, ऐसे समय में घर में बैठकर तुम्हें अधिक आनन्द क्या आयेगा? हे मानशालिनी ! माधव के पास तुम मान मत करो ।।ध्रु.।। इसके बाद आभोग – श्री जयदेव कवि की यह उक्ति सज्जनों को सुख देने वाली हो, क्यों कि यह हरिचरित्र विषयक है।

अथ ध्रुवपदामाह –

ध्रुवं गीत्वा भिन्नधातुर्यत्राभोगस्तु गीयते।
उक्तयोर्लक्षणयुता सैका ध्रुवपदा मता।
भिन्न धातुभिरुद्ग्राह ध्रुवाभोगैः परा द्विधा।।८७०।।

ध्रुवपदा द्विधेति सम्बन्धः। उक्तयौः चित्रपदा चित्रकलयोः। तत्रेका ध्रुवेणाभोगेन च पदद्वयवती। ध्रुवगानानन्तरमेकाभोगगानमिति तात्पर्यम्। भिन्नधातुरत्र तालविशेष इति गीतप्रकाशे। एकस्मिन् भागे भंग्या अन्यथागानमिति केचित्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अथ प्रथमाया उदाहरणम् –

मारवीरागेण रूपक तालेन –

सुजन वद मधुरिपुनाम।
दुष्कृतमपहाय याहि दुर्लभ हरिधाम।।ध्रु.।।
पुत्रमित्रबान्धवगणमिह न कलय सत्यम्।
पुरुषोत्तम मिश्र गदितमनुभावय नित्यम्। आमोगः।।
इयमेव पाश्चात्यभाषायां छटिकिलेति वदन्ति। परा अन्ये ध्रुवपदेत्याहुः।

अब ध्रुवपद के लक्षण कहते है – ध्रुव गाकर दूसरा धातु जहाँ आमोग गाया जाता है और उक्त दोनों (चित्रपदा, चित्रकला) के लक्षण जिसमें हों, वह ध्रुवपद का एक प्रकार है। उद्‌ग्राह, ध्रुव, आभोग से युक्त भिन्न धातुओं से जो गाया जाय, वह दूसरा प्रकार है ।।८७०।।

ध्रुवपद दो प्रकार के हैं। ध्रुव और आमोग दो होने से पदद्वयवती एक है। उसमें ध्रुव का गान होने पर एक आमोग ही गाया जाता है। भिन्न धातु का अर्थ एक विशेष ताल है, ऐसा गीतप्रकाशकार ने कहा है। कुछ लोग ऐसा अर्थ करते है कि दूसरे भाग में रचना को भिन्न प्रकार से गाना।

प्रथम का उदाहरण – मारवी राग, रूपक ताल – हे सज्जन! तुम मधु नामक दैत्य को मारने वाले श्रीकृष्ण का नाम लो! जपो! और उससे पाप नाश कर बहुत कठिनता से प्राप्य हरिधाम जाओ ।।ध्रु.।।

संसार के पुत्र – मित्रादि बान्धव और उनके मोह को सत्य मत समझो। यह पुरूषोत्तम मिश्र का कहा हुआ उपदेश है, इसका नित्य चिन्तन करो ।।आभोग।।

इसी को पाश्चात्य भाषा में 'छटिकिला' कहते हैं।

परा = दूसरा ध्रुवपद दो प्रकार का है।

इयमुद्‌ग्राहध्रुवाभोगरूपेण पदत्रयवती।
अत्रोदाहरणम्। गुर्जरी रागेणादितालेन।
केशवकमलदलेक्षण कामदकान्त मुरान्तक कलितसुरेश।
नन्दतनुज जनरंजन भवभयभंजन कंजचरण कमलेश।
इति उद्‌ग्राहः।
जय जय गोपवधूवदनाम्बुजमत्तमधुप मकरध्वज भूप।
पीताम्बर नरनागर रसमय मंजुलभुज दलितांजन रूप ।।ध्रुवः।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परमानन्दकन्द मधुराधर मुरलीवाद्यधुरन्धरधीर।
नरहरिमव मधुसूदन माधव गोवर्धनधर गोकुलवीर। आमोगः।।
पदचतुष्टयोदाहरणं यथा गीतावल्याम्(६)
धानसी रागेण नन्दनतालेन।
न कुरु कदर्थनमत्र सरण्याम्।
मामवलोक्य सतीमशरण्याम्।
चंचल मुंच पटांचलभागम्।
करवाण्यधुना भास्कर यागम् ।।ध्रुव.।।

यह तीन पदों – उद्ग्राह, ध्रुव, आभोग से होता है।

उदाहरण – गुर्जरी राग और आदि ताल में – हे कमलपत्र की तरह नेत्रधारी कृष्ण, कामना पूर्ण करने वाले, सुन्दर, देवों के राजा इन्द्र को जिसने दास बनाया ऐसे हे देव! नन्द के पुत्र, लोगों के मन को रिझानेवाले, संसार की भीति दूर करने वाले, कमल की तरह मृदु चरण वाले, लक्ष्मीपते! यह उद्ग्राह।

गोपकन्याओं के मुखकमल के मत्त भ्रमर! हे मदन, हे राजन्, पीताम्बरधारी, श्रेष्ठ नगर पुरुष, रस से भरे हुए, सुन्दर बाहुशाली, मर्दन किये हुए कज्जल की तरह स्निग्ध श्यामल रूप ।।ध्रु.।।

हे परम आनन्द के कन्दरूप! अधर का माधुर्य जिसका अद्वितीय है! मुरली बजानेवालों में सर्वश्रेष्ठ, धीर! हे मधु मर्दन, लक्ष्मीपते, गोवर्द्धन धारण करनेवाले, गोकुल के वीर! नरहरि का रक्षण करो।।आमोग।।

पदचतुष्टय (चार पद यानी अवयव जिसमें है) का उदाहरण गीतावली में – धानसी राग, नन्दन ताल – हे चंचल स्वभाव के कृष्ण! मैं पतिव्रता हूँ, और यह देखकर कि यहाँ मेरा कोई रक्षक नहीं है, मुझे मार्ग में मत सताओ।मेरे आँचल को छोड़ दो, मुझे इस समय सूर्य की उपासना करनी है ।।ध्रु.।।

न रचय गोकुलवीर विलम्बम्।
विदधे विधुमुख विनतिकदम्बम्।
रहसि विभेमि विलोलदृगन्तम्।
वीक्ष्य सनातनदेव भवन्तम्। आमोगः।।
आसामन्योन्य सांकर्याद् भेदा बहुतरा मताः।
ग्रंथ बाहुल्यभीतेन मया ते नेह वर्णिताः।
तत्र चेदाग्रहो गीतगोविन्दे बहु वीक्ष्यताम् ।।८७१।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तथाच् –

श्री जगन्नाथवल्लभनाटकगीतावल्यादौ विशेषोऽपि द्रष्टव्यः।

अथ पांचालीमाह –

अति विस्तीर्णपदता पंच प्रोक्ता मनीषिभिः।

हरिनायकेनास्य निर्वचनं कृतम् –

पांचालैर्बहुभिः पादैर्द्विविधा सध्रुवा ध्रुवा ।।८७२।।

ध्रुवसहिता ध्रुवरहिता च।

उदाहरणं सुलभम् –

अस्या एव गौडपांचालीति प्रसिद्धिः।

एवं भाषान्तरे ज्ञेयं गीतं गीतविशारदैः।।८७३।।

हे गोकुल के वीर! चंद्र की तरह मुखवाले होकर तुम ऐसा कुछ मत करो जिससे मेरे काम में विलम्ब हो, मैं तुम्हारे समक्ष बार-बार प्रार्थना करती हूँ। एकान्त में तुम्हारे चंचल नयन देखकर मुझे बड़ा डर लगता है।। आमोग।।

इनका परस्पर सांकर्य(मिश्रण) होने से इसके बहुत प्रकार हो सकते हैं। ग्रंथ का आकार बढ जाने के भय से मैंने यहाँ उनका वर्णन नहीं किया है। उन्हे जानने का आग्रह रखनेवालों को गीतगोविंद देखना चाहिए। उसी प्रकार श्रीजगन्नाथवल्लभ नाटक और गीतावली में इसके विशेष प्रकार द्रष्टव्य।।८७१।।

अब पांचाली का वर्णन करते हैं – मनीषियों ने कहा है कि इसके लक्षण हैं अति विस्तीर्ण पद होना। पंच का अर्थ है विस्तार।

हरिनायक ने इसका वर्णन, व्याख्या की है। बहुत से विस्तृत पदों से युक्त, उसके दो भेद हैं – ध्रुवयुक्त और ध्रुवरहित ।।८७२।।

उदाहरण सुलभ है, (अतः नही दिया है)। इसी का दूसरा नाम गौड़पांचाली भी है। इसी प्रकार गीत विशारदों को जानना चाहिए कि अन्य भाषाओं में भी भेद हैं ।।८७३।।

तदुक्तम् –

दिव्यं च मानुषं चैव गीतं स्याद्दिव्यमानुषम्।

दिव्यं संस्कृतसम्पन्नं मानुषं प्राकृतोत्थितम्।।८७४।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संस्कृतप्राकृतोत्थं च दिव्यमानुषमुच्यते।
केचिद्देश विशेषोत्थ भाषया मानुषं विदुः ।।८७५।।
अंगबंगकलिंगाद्या देशभाषादि हेतवः।
येषु येषु च देशेषु या भाषाश्चैकवल्लभाः।
तास्तु त्तत्ज्जनालापादाहृत्य प्रतियोजयेत्।।८७६।।

कोहलीये तु कश्चन विशेष उक्तः। स यथा –
सममर्द्धसमं चेति विषमं गीतकं त्रिधा।
पादैः समानमात्रैस्तु चतुर्भिः सममुच्यते।।८७७।।
तृतीय प्रथमौ पादौ समौ तु द्विचतुर्थकौ।
जायेते यस्य गीतस्य तदर्द्धं समुदीरितम्।।८७८।
चत्वारोऽपि पृथक् पादा यस्य मात्रानुसंख्यया।
तद्गीतं विषमं प्राहुर्मुनयो भरतादयः ।।८७९।।
इदं संकरगीतविषयमिव प्रतिभाति। अपरेऽपि विशेषाः
हरिनायकादिभिर्लिखिताःसन्ति।
मया तु तेऽनातिप्रयोजनत्वादुपेक्षिताः।

ऐसा कहा गया है – गीत तीन प्रकार के है – दिव्य, मानुष, और दिव्यमानुष। जिसकी रचना संस्कृत में है वह दिव्य है। प्राकृत रचना का गीत मानुष कहलाता है। और संस्कृत – प्राकृत दोनों में रचित गीत दिव्यमानुष कहलाता है। कुछ गुणी किसी देश विशेष की भाषा में रचित गीत को दिव्यमानुष कहते है। अंग, बंग, कलिंग आदि देशों की जो देशभाषाएं सर्व प्रिय हैं, लोगों को बोली के व्यवहार के अनुसार गीत में उसकी योजना करनी चाहिए।।८७४, ८७५, ८७६।।

कोहलीय ग्रन्थ में कुछ और विशेष कहा गया है। जैसे, सम, अर्द्धसम और विषम, इस प्रकार गीत तीन प्रकार के हैं। समान मात्राओं से निर्मित चार पाद हों , तो वह सम कहलाता है। जिस गीत में पहला और तीसरा तथा दूसरा और चौथा पाद सम हो, तो वह अर्द्धसम है। मात्राओं की संख्या की दृष्टि से जिसके चारों के पाद पृथक हों, तो वह गीत विषम है। ऐसा भरतादि प्राचीन मुनियों ने कहा है।।८७७, ८७८,८७९।।

ऐसा लगता है कि यह बात संकर गीतों की है। हरिनायक आदि ने और भी विशेष बताये हैं, लेकिन इनका विशेष प्रयोजन, फल न होने के कारण मैंने यहाँ नहीं कहे हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अथ गीतगुणाः

गीतस्याथ गुणा ग्रहो लययती मानस्य वैचित्र्यकम्।
स्याद्धातोः पुनरुक्ततालबलवत्त्वं (नवनवत्वं) चेति नैकार्थता।
गीतौ रागसुरम्यताथ गमकश्चार्थस्य नैर्मल्यकम्।
तेन्नानां स्वरपाठयोश्च विविधाकारेण संयोजनम् ।।८८०।।

किंच–

एषु सर्वेष्वपि गुणेष्वावश्यकतमं त्विदम्।
गुणालंकाररसवद्वाक्यस्य ग्रहणं यतः ।।८८१।।

अथ ग्रहमाह–

तालो गीतगतेः साम्यकारी तस्य ग्रहास्त्रयः।
अनागत समातीतसंज्ञा सर्वत्र ते मताः ।।८८२।।

अनागतमाह–

गीतारंभाद् यदा पूर्वं समुच्चार्यक्षरद्वयम्ः।
तालस्य न्यसनादुक्तस्तदैवानागतग्रहः।।८८३।।
अत्र गीतादौ यदक्षरमधिकं गृह्यते तदनागतं तालाभ्यन्तरे न प्रविष्टम्।

यथा–

जय जय कमलाकुचचन्दन मण्डन वक्षःस्थल दुर्जनखण्डन
षण्डाननदण्डनपण्डित पुण्डरीक लोचनानु आ।
अत्र निःसारुताले 'जय जयेत्यक्षर चतुष्टयं तालबाह्यमेव।
कमलेत्यारभ्य तालः पतति।

अब गीत के गुणों का वर्णन करते हैं– वे इस प्रकार हैं– ग्रह, लय, यति, मान, वैचित्र्य (परिमाण की विविधता), धातुओं की पुनरुक्ति, ताल का नियमितत्व (प्रतिपद पर नवीनता प्रतिभासित हो), अनेकार्थत्व, राग की रमणीयता, गमक, अर्थ की प्रसन्नता (स्पष्टार्थ प्रतीति), तेन, स्वर और पाठाक्षर (पाटाक्षर) – इनकी अनेक प्रकार से रचना; इतने गीतगुण हैं ।।८८०।।

लेकिन इन सबमें अत्यावश्यक वे हैं, जिनसे काव्य लक्षण समन्वित हों, क्योंकि गुण, अलंकार, रस से युक्त जो वाक्य हैं, उन्हें ही गीतों में लिया जाता है ।।८८१।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अब ग्रह का वर्णन करते हैं– ताल गीत की गति को समान रखनेवाला है। उसके तीन ग्रह होते हैं– अनागत, सम और अतीत ॥८८२॥

अनागत–गीत के आरंभ के पूर्व दो अक्षरों का उच्चारण कर ताल रखा जाता है, तब वह अनागत ग्रह है ॥८८३॥

गीत के आरंभ में जो अक्षर अधिक लिये जाते हैं, वह अनागत है, उनका ताल में प्रवेश नहीं है। यथा– लक्ष्मी के स्तन के चन्दन के लेप से जिसका वक्षःस्थल सुशोभित हुआ, दुर्जनों को जो दण्ड देता है, दुष्टदण्डन में जो पण्डित है, ऐसे हे कमल की तरह नेत्रवाले भगवन्! यहाँ निःसारु ताल में 'जय जय'– ये चार अक्षर तालबाह्य हैं। 'कमलाकुच' से आरंभ करके ताल पड़ता है।

समग्रहमाह–

गीतोच्चारण मात्रेण यदा तालस्य संगतिः।
तदा समग्रहः प्रोक्तः समकाल समुद्भवात् ॥८८४॥
यथा उदाहरणादि मण्ठादौ।

अथातीतग्रहमाह–

कला या तु पतिष्यन्ती पश्चात् सा प्रथमे यदि।
विन्यस्य गीयते तालस्तदातीतग्रहः स्मृतः ॥८८५॥
लक्षणमतिक्रम्य गृह्यते इत्यतीतग्रहः।

यथा गोपगोविन्दे–

शिशिरशीतल मंजुवंजुल मृदुल किसलय संकुलम्।
इत्यादि यतितालेन गीयते।
अत्र हि प्रथमं लघुद्वयं पश्चाद् द्रुतद्वयम्। अत्र तु प्रथमं द्रुतद्वयं पतति।
प्रान्ते लघुद्वयमेव।
एवं सर्वेषु तालेषु त्रिविधो ग्रह इष्यते।
केचित्तु केषुचित्ताल विशेषेषु चिरग्रहम् ॥८८६॥

समग्रह का स्वरूप कहते हैं– गीत के उच्चारण के साथ ही ताल की संगति शुरू हो जाती है, उस समय एक ही काल में आरंभ होने से उसे समग्रह कहते हैं ॥८८४॥

इसका उदाहरण मण्ठ वगैरह में है।

अतीत ग्रह इस प्रकार है– जो कला बाद में आनेवाली है, उसे पहले गाया जाता है और बाद में ताल पड़ता है,. तो वह अतीत ग्रह है। लक्षण का अतिक्रमण कर ग्रहण किया जाता है, अतः वह अतीत ग्रह है ॥८८५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गोपगोविन्द में इसका उदाहरण– शिशिर ऋतु के कारण अतिशीतल, सुंदर पाणवेत है, जिसमें कोमल पल्लव भरे हुए हैं। यह यति ताल में गाया जाता है। यहाँ प्रथम दो लघु और बाद में दो द्रुत हैं, किन्तु प्रथम द्रुतद्वय छोड़ा जाता है, बाद में लघुद्वय रहता है।

इस प्रकार सब तालों में तीन प्रकार के ग्रह होते हैं। कुछ आचार्य कुछ तालों में चिरग्रह (अतीतग्रह?) रखते हैं ।।८८६।।

यथा संगीतसारे–

कुडक्कादितालेष्वतीतग्रहः स्यात्तथैवात्र यत्यादिकेऽनागतश्च।
समाख्य निःसारुकादौ च केचित् तथानागतातीतयोर्वैपरीत्यम् ।।८८७।।
तु अनागतग्रहेऽतीतग्रहलक्षणमतीतग्रहेऽनागतग्रहलक्षणमाहुरित्र्थः।

उक्तं च–

अतीताक्षरसंयुक्त तालः स न्यस्यते यदि।
तदातीतग्रहः प्रोक्तः..... इति ।।८८८।।

अथ लयः

गीतवाद्यपदन्यास क्रियाणां समता मिथः।
तथा क्रियातालयोर्वा लय इत्युच्यते बुधैः ।।८८९।।
इति वाचस्पतिः ।इति।

हरिनायकस्तु–

क्रियान्त्तरेण विश्रान्त्तिर्लय इत्यमिधीयते ।इति।
स त्रिधा कथितः प्राज्ञैः (द्रुतो मध्यो विलंबितः) इति ।।८९०।।

यतिमाह–

लयप्रवर्तनस्यैव नियमोऽसौ यतिर्भवेत्।
स त्रिधेति। (स्रोतोवहा समा गोपुच्छिकेति त्रिविधैव सा) ।।८९१।।

जैसे संगीतसार में है– कुडक्कादि तालों में अतीत ग्रह (ही) होता है, उसी प्रकार यतिताल इत्यादि में अनागत ग्रह होता है। सम और निःसारु आदि में कुछ गुणी अतीत और अनागत का उलटा, विपरीत लेते हैं– अनागत ग्रह के स्थान पर अतीत और अतीत के स्थान पर अनागत। कहा गया है– गीत के अक्षर बोलने के बाद ताल आरंभ हो, तो वह अतीत ग्रह कहलाता है।।८८७-८८८।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लय के लक्षण इस प्रकार हैं- गीत, वाद्य और पदन्यास, तथा क्रिया और ताल-इनका परस्पर साम्य हो, तो गुणीजन उसे लय कहते हैं। वाचस्पति ने ऐसा कहा है ।।८८९।।

हरिनायक ने इस प्रकार कहा है- क्रियाओं के बीच में जो विश्रान्ति (निष्क्रिय) काल है, वह लय है। वह त्रिविध है, यथा द्रुत, मध्य और विलंबित ।।८९०।।

यति का लक्षण कहते हैं- लय की प्रवृत्ति कहाँ होती है, उसके नियम को ही यति कहते हैं। यति तीन प्रकार की है- स्रोतोवहा, समा और गोपुच्छिका ।।८९१।।

मानमाह–

विश्रान्तिकारिणी ताल (काल) क्रिया मानमिहोच्यते।
तालविश्रामकारित्वान्मानं तालसमाप्तिकृत्। इति ।।८९२।।

तस्य भेदो द्विधेति

अथ धातोः पुनरुक्तता गीतावयवस्य पुनः पुनर्गानम्।
नवनवत्वं च– बारं बारं गीयमानमपि रंजनातिरेकेण
नवनवमिव प्रतीयमानत्वम्। मातोर्वाक्यस्य नैकार्थता।
एकार्थं वाक्यं भंग्यन्तरेण प्रयोज्यमित्यर्थः।
धातुमातुलक्षणमुक्तम्।

रागसुरम्यतामाह–

कर्णप्रियं यतिस्थं स्याद् भंग्युक्तं सुखावहम्।
मन्द्रमध्यमताराख्यं रागरम्यत्वमीरितम् ।।८९३।।

गमकमाह–

स्वरस्य कम्पो गमकः श्रोतृचित्तसुखावहः ।।८९४।।

तस्य प्रभेदाः पंचदश

(तस्य प्रभेदास्तिरीपः स्फुरितः कम्पितस्तथा।
नील आन्दोलित वलीत्रिभिन्न कुवलाहताः।
उन्नामितः प्लावितश्च हुंकृतो मुद्रितस्तथा।
नामितो मिश्रितः पंचदेशेति परिकीर्तिताः।
एतेषां लक्षणं संगीतसारसंग्रहे, ४६, ४७ पृष्ठे)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मान–विश्रान्ति निर्माण करनेवाली ताल (काल) क्रिया ही मान है। ताल की विश्रान्ति वहाँ होती है, इसलिए मान ताल की समाप्ति करनेवाला होता है ॥८९२॥

उसके दो प्रकार हैं– धातु की पुनरुक्तता, यानी गीत के अवयवों को पुनः पुनः गाना। नवनवत्व वह है जो बारंबार गाने पर भी अत्यंत मनोरंजक होता है और प्रत्येक बार अतिशय आनंद देता है और नया-नया सा लगता है। मातु का जो वाक्य है, उसकी एकार्थता न होना, यानी वाक्य एकार्थक होने पर भी रचना बदलकर गाना चाहिए। धातु-मातु के लक्षण कह चुके हैं।

रागसुरम्यता– यति समन्वित गीत कर्णप्रिय होता है, विशेष रचना से युक्त (अयुक्त) सुख देनेवाला होता है। मन्द्र, मध्य और तार स्थानों में संचरण कर गाना राग में रमणीयता उत्पन्न करता है ॥८९३॥

गमक– स्वर का कम्प गमक है, वह श्रोताओं के मन को आनंद देता है ॥८९४॥ इसके पंद्रह प्रकार हैं।

ये पंद्रह प्रकार इस प्रकार हैं– तिरिप, स्फुरित, कम्पित, नील, आंदोलित, वली, त्रिभिन्न, कुवल, आहत, उन्नामित, प्लावित, हुंकृत, मुद्रित, नामित, मिश्रित।

इनके लक्षण संगीत सार संग्रह में दिये गये हैं।

एतदभ्यासप्रकारस्तु–

माघपौषनिशायां तु शेष प्रहरमात्रके।
साधकः सलिले स्थित्वा गमकान् साधयेदिमान् ॥८९५॥

केचित्तु–

स्वरस्य कम्पो गमकः स्वरभेदात् स सप्तधा।
इति सप्तस्वरभेदेन सप्तप्रकारो भवति। इत्यर्थः।
इदं तु नारदसंहितायां दृश्यम्।

अथार्थनैर्मल्यम्–

उच्चारणेन वाक्यस्य सम्यगर्थावबोधनम्।
सुखतादोषरसयुगर्थ नैर्मल्यमेव तत् ॥८९६॥
तेन पाटस्वराणां च वैचित्र्येण निवेशनम्।
पाटस्वरान्ते तेनस्य प्रयोगो नादितः क्वचित् ॥८९७॥
कविसंप्रदायेन स्वरपाटानन्तरमेव तेनस्य प्रयोगो। न प्रबन्धादावित्यर्थः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किंच—

प्रस्तारनष्टोद्दिष्टादिवर्गग्रहगणांशकाः।
प्रकृतानुपकारित्वाद् बहुत्वान्न मयोदिताः।।८९८।।
गणाद्यभावे ये दोषा उक्तास्तेषामनित्यता।
नित्यदोषा बुधैरुक्ता य उच्यन्तेऽत्र मया ।।८९९।।

यथा—

तालहीने कायरोगो धातुहीने धनक्षयः।
धातुमातु पदं यत्र नास्ति तद् गीतकं रिपुः ।।९००।।

इसके अभ्यास की पद्धति – साधक पौष और माघ मास में एक प्रहर रात बचने पर पानी में खड़ा रहकर इसका अभ्यास कर इसे सिद्ध करे।।८९५।।

स्वर का कम्प गमक है और स्वर भेद से वे सात प्रकार की हैं। स्वर सात होने से इनके सात प्रकार होते हैं। यह नारद संहिता में देखना चाहिए।

अर्थनैर्मल्य– वाक्य का उच्चारण करते ही उसके अर्थ का अच्छी तरह बोध हो, उससे सुख हो, उसमें दोष न रहे, और उसमें रस हो, वही अर्थनैर्मल्य है ।।८९६।।

तेन, पाट, स्वर– इनकी अनेक प्रकार से वैचित्र्यपूर्ण रचना हो, पाटाक्षर और स्वर विन्यास के बाद ही तेन का प्रयोग हो, आरंभ में नहीं; ऐसा कविसंप्रदाय है। (आदि में– प्रबन्ध के आदि में) ।।८९७।।

प्रस्तार, नष्ट, उद्दिष्ट, वर्ग, ग्रह, गण, अंशक इत्यादि अनेक प्रकार हैं, किन्तु इस विषय में उनका उपयोग न होने के कारण मैंने यहाँ नहीं कहे हैं ।।८९८।।

गण वगैरह न रहने पर (कम - ज्यादा होने पर) जो दोष कहे गये हैं, वे अभिनय दोष माने गये हैं। विद्वानों ने जो नित्य दोष कहे हैं, उनका मैं यहाँ निरूपण करता हूँ ।।८९९।।

यथा– तालहीनता होने से शरीर - रोग होता है, धातु (अवयव) हीन होने से द्रव्य-हानि होती है, जहाँ धातु, मातु, पद नहीं रहते, वह गीत शत्रु की भाँति हानिप्रद होता है ।।९००।।

अथ गीतदोषानाह—

गीतेषु दोषाः स्खलनादिवाण्या।
तालाद्यभावेन निबन्धनंच।
स्याद्धातुमात्वादिहतिः कटूक्तिः।
रसादिहानिः श्रवणाप्रियत्वम् ।।९०१।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इत्यादि दोषा गीतेषु बहवो यदि सन्त्यपि।
नोक्तास्ते चेद् ग्रहस्तेषां गाने ते तु विलोक्यताम् ।।१०२।।

यद्यपि हरिनायकेन–
गीते दीर्घो भवेद् ह्रस्वो ह्रस्वो दीर्घः क्वचित् क्वचित्।
एकत्त्वे च क्वचिद् द्वित्वं द्वित्त्वे चैकत्वमेव च ।।१०३।।
श्लिष्टे विश्लिष्टता क्वापि क्वचिदेकस्य वैकृतम्।
क्वचित् कोमलता गाढे गाढता कोमले क्वचित् ।।१०४।।
इत्याद्यविशेषेणोक्तं तथापि भाषागीतविषयमेवेदम्।

अब गीत के दोषों का वर्णन करते हैं– गीत में प्रथम दोष वाणी का स्खलन (अशुद्ध, अस्पष्ट, त्रुटित) है; तालरहित (ताल में न बैठनेवाली) रचना; धातु, मातु इत्यादि अवयवों का अभाव; कटु उच्चारण; रस का अभाव, कानों को अच्छा न लगना आदि दोष हैं ।।१०१।।

ऐसे कई दोष हैं किन्तु उनका मैंने अलग-अलग वर्णन नहीं किया है, उन्हें गीत-श्रवण के समय ही जानना चाहिए ।।१०२।।

यद्यपि हरिनायक ने कुछ दोषों को गीत में अनुज्ञा का वर्णन किया है, (फिर भी वे दोष गीत में नहीं माने जाते)। जैसे– आलाप के अनुसार दीर्घ का ह्रस्वोच्चारण, ह्रस्व का दीर्घोच्चारण, कहीं-कहीं चलता है। एक के बदले द्विरुक्ति, दो के बदले एक से काम लेना, जोड़े हुए (संयुक्त) को तोड़कर गाना, कभी किसी का उच्चार ही विकृत करना, कहीं गाढ (जोरदार, ओजस्वी) में कोमलता, कहीं कोमलता में गाढ (तीक्ष्ण) उच्चारण करना इत्यादि विशेष दोषों का निर्दोषत्व कहा है। लेकिन वह भाषा विषयक (प्राकृत) गीतों में ही होता है ।।१०३,१०४।।

तदुक्तं गीतप्रकाशदामोदरयोः
पौनरुक्त्यं न भाषाढ्ये गीते दोषोऽभिजायते।
शीघ्रोच्चारे च वर्णानाम् तथा चैव प्रसारणे ।।१०५।।
लिंगान्यत्त्वे विसन्धौ च संयुक्ताक्षरमोक्षणे।
असंयुक्तेऽपि संयोगे ह्रस्वदीर्घव्यतिक्रमे ।।१०६।।
भवन्त्येते न दोषाय संस्कृते प्राकृतेऽपि च।
वारद्वयाधिकं गीते पौनरुक्त्ये तु दोषभाक् ।।१०७।।
संगीतसारेऽप्येवमेवोक्तम्– संस्कृतप्राकृतयोस्तु तत्तल्लक्षणहीनत्वं दोष एव।
दुष्टपदं श्रुतिकटु इत्यादिदोषाः काव्यप्रकाशादिभ्यो ज्ञातव्याः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सभ्यलक्षणम्–

गीतवादित्रनृत्यादेर्भद्राभद्रविवेचकाः।
सभामध्ये स्थिता ये तु सभ्यास्ते परिकीर्तिताः ।।९०८।।

इति श्रीकृष्णरससंगीत संग्रहे (इत्यादि) गीतभेदध्रुवमण्ठकान्तर्गत नानाताल किंचित्सोदाहरणाष्टोत्तरशतविशेष तालगीत निर्णयो नाम पंचम प्रकरणम्।

इस बारे में गीतप्रकाश और दामोदर में भी कहा गया है–

भाषागीतों में पुनरुक्ति दोषावह नहीं होती। विलंब से बोलने लायक भाग को जल्दी बोलना, इसी प्रकार विलंबित उच्चार को और बढाना, दीर्घ को प्लुत, न्हस्व को लम्बा बोलना, लिंग बदलना, संधि को तोड़ना, जोड़ाक्षर को तोड़कर बोलना, जहाँ संधि नहीं वहाँ संधि करना इत्यादि दोष संस्कृत और प्राकृत में भी दोषावह नहीं होते। दो से अधिक पुनरुक्ति की जाय तो दोष होता है ।।९०५, ९०६, ९०७।।

संगीतसार में भी ऐसा ही कहा गया है। फिर भी संस्कृत–प्राकृत में तत्तल्लक्षण न रहने से दोष ही माना जाता है। और भी पदपदार्थ दोष, श्रुतिकटुत्वादि बहुत हैं, जिन्हें काव्यप्रकाशादि ग्रन्थों में देखना चाहिए।

अब सभ्यों के लक्षण कहते हैं– जो गीत, वाद्य, नृत्य आदि की भद्रता एवं अभद्रता का प्रमाणपूर्वक विवेचन कर सकते हैं और सभा में उपस्थित रहते हैं, वे सभ्य हैं ।।९०८।।

यह श्रीकृष्णरस संगीत संग्रह का गीतभेद,ध्रुवमण्ठादिलक्षण, तदन्तर्गत नाना तालों का विश्लेषण, उदाहरण, १०८ विशेष तालों का निरूपण, गीत निरूपण, तालगीत निर्णय का पाँचवाँ प्रकरण समाप्त हुआ।

– श्री हरि विजयते –

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

– अथ षष्ठं प्रकरणम् –

एषां किंचिदुदाहरणत्त्वेन प्रबन्धगानादिज्ञानार्थं कविराज रसिकराज श्रीगोविन्ददाससकृत गीतेन श्रीकृष्णवन्दनं मंगलमाचरति।

श्रीराग: कन्दर्पताल:

ध्वजवज्रांकुशपंकजकलितम्। व्रजवनिताकुचकुंकुमललितम्।
वन्दे गिरिधरपदकमलम्। कमलाकर कमलांचितममलम्।
मंजुलमणिनूपुर रमणीयम्। अचपल कुलरमणीकमनीयम्।
अतिलोहितमतिरोहितभासम्। मधुमधुपीकृत गोविन्ददासम्।

नम: कुंजविहारिणे:

कुंजविहार्य्यष्टकम:

अविरतरतिवन्धुस्मेरता बन्धुरश्री:।
कवलित इव राधापांगभंगीतरंगै:।
मुदितवदनचन्द्रश्चन्द्रकापीड़धारी।
मुदिरमधुरकान्तिर्भाति कुंजे विहारी ।।१।।
ततसुषिरघनानां नादमानद्ध भाजाम्।
जनयति तरुणीनां मण्डनै (लै-ले)र्मण्डितानाम्।

प्रबन्धगान आदि के ज्ञानार्थ इनके कुछ उदाहरण देने के लिए कविश्रेष्ठ रसिकवर श्रीगोविन्ददास के गीतों से श्रीकृष्णवन्दन रूप मंगलाचरण करते हैं।

श्रीराग, कन्दर्पताल– ध्वज, वज्र, अंकुश, कमल इत्यादि चिह्न जिनके कर-चरणों पर हैं, गोकुल की स्त्रियों के स्तन का कुंकुमादि अंगराग लगने से जिनका वक्षःस्थल सुंदर लग रहा है, सरोवर के कमलों से जो शोभायमान है, निर्मल, रत्नखचित नूपुरों की मधुर ध्वनि से जो मन को लुभानेवाला है, चांचल्यरहित (अति चंचल भी) कुलस्त्रियों से जो सुशोभित है, अति लालवर्ण से जो वैसी ही कान्ति फैलानेवाला है और अपने चरणमधु से जिसने गोविन्ददास को भ्रमर बना दिया है, ऐसे गोवर्द्धनधारी श्रीकृष्ण के चरणकमल को मैं प्रणाम करता हूँ।

कुंजविहारी भगवान् श्रीकृष्ण को प्रणाम। कुंजविहार्य्यष्टक –

सतत रतिक्रीड़ाकालीन स्मेरता (हास्ययुक्त मुखश्री) से जो सुंदर शोभायुक्त है अथवा मदन से जो हास्ययुक्त है इसलिए सुंदर लगनेवाला है, राधा के कटाक्षरूपी तरंगों में डूबा हुआ जिसका

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुखचन्द्र आनंदमय है, जो मयूरपिच्छ का शेखर धारण करनेवाला है, जो मेघ की तरह स्निग्ध श्यामल कान्तिशाली है, ऐसे श्रीकृष्ण कुंज में कीड़ा करते समय शोभायमान हैं ।।१।।

तरुणस्त्रियों के मण्डलों से सुशोभित, चतुर्विध वाद्यों (तत, सुषिर, घन, आनद्ध) के नाद की सृष्टि करता हुआ –।।

तटभुवि नटराजक्रीड़या भानुपुत्र्या
विदधतुलचारी भाति कुंजे विहारी ।।२।।
शिखिनि कलितषड्जे कोकिले पंचमाढ्ये।
स्वयमपि नववंश्योद्दामयन् ग्राममुख्यम्।
धृतमृगमदगन्धः सुष्ठु गान्धार संज्ञम्।
त्रिभुवनधृतिहारी भाति कुंजे विहारी ।।३।।
अनुपमकरशाखः पातु राधांगुलीको।
लघु लघु कुसुमानां पर्यटन् वाटिकायाम्।
सरभसमनुगीतश्चित्रकांचीभिरुच्चैः।
व्रजनवयुवतीभिर्भाति कुंजे विहारी ।।४।।
अहिरिपुकृत लास्ये कीचकारब्धवाद्ये।
व्रजगिरितट रंगे भृंगसंगीतभाजि।
विरचितपरिचर्यैश्चित्र तौर्यत्रिकेण।
स्तिमितकरणवृत्तिर्भाति कुंजे विहारी ।।५।।

यमुना के तीर पर नटराज क्रीड़ा एवं अनुपम नर्तन से कुंज में विहार करनेवाला कृष्ण शोभायमान है ।।२।।

मयूर षड्ज स्वर में बोल रहा है, कोकिल पंचम स्वर में बोल रही है, ऐसे समय में स्वयं भी नवीन बाँस की बांसुरी से सुंदर मुख्य ग्राम गान्धार ग्राम की सृष्टि करता हुआ, कस्तूरिका की गन्ध लगाये हुए और त्रिभुवन का धैर्य हरण करता हुआ श्रीकृष्ण विहार के समय कुंज में शोभायमान है ।।३।।

जिसके नखों की कान्ति अतुलनीय है, राधा ने जिसकी अंगुली पकड़ ली है अथवा राधा को जिसने अंगुली से पकड़ा है, ऐसे श्रीकृष्ण मेरी रक्षा करें। बगीचे में फूलों के बीच जो जल्दी-जल्दी घूम रहा है, चित्र-विचित्र रत्नों से युकत मेखलाएं धारण करनेवाली गोकुल की नवीन तरुणियाँ आवेश में जिसका गान कर रही हैं, ऐसे भगवान् कुंज में विहरण करते हुए शोभायमान हो रहे हैं ।।४।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कालिया का मर्दन करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण का लास्य चल रहा है, जंगल के वेणु (बाँस) वायु से मानो वाद्य बजा रहे हैं, गोकुल के गिरितट की रंगभूमि पर भ्रमरों का संगीत हो रहा है, आश्चर्यकारक नृत्य-गीत-वाद्य से जिसकी सेवा की जा रही है और उस नर्तन के रंग में देखनेवालों की इन्द्रिय वृत्तियाँ मानो स्तब्ध, निश्चल हो रही हैं और उसकी भी वृत्ति लीन होने से इन्द्रियाँ स्तब्ध हैं, ऐसा कुंजविहारी सुशोभित हैं ।।५।।

दिशि दिशि शुकसारी मण्डलैर्गूढलील:।
प्रकटमनुपठद्भिनिर्मिताश्चर्यपूर:।
तदतिरहसि वृत्तं प्रेयसी कर्णमूले।
स्मितमुखमभिजल्पन् भाति कुंजे विहारी ।।६।।
तव चिकुरकदम्बं स्तम्भते प्रेक्ष्य केकी।
नयनकमल लक्ष्मी वदन्ते कृष्णसार:।
अविरलमलकान्तं नौमि पश्येति राधाम्।
सुमधुरमनुशंसन् भाति कुंजे विहारी ।।७।।
मदनतरलबाला चक्रवालेन विष्वक्।
विविधवरकलानां शिक्षया सेव्यमान:।
स्खलित चिकुरवेशे स्कन्धदेशे प्रियाया:।
प्रहित पृथुलबाहुर्भाति कुंजे विहारी ।।८।।
इदमनुपम लीला हारिकुंजेविहारी।
स्मरणपदमधीते तुष्टधीरष्टकं य:।
निजगणवृतया श्रीराधयाराधितस्तम्।
नयति निजपदाब्जं कुंजसद्माधिराज: ।।९।।
इति श्रीरूपगोस्वामिकृत कुंजविहार्य्यष्टकम्।

प्रत्येक दिशा में शुकसारिकाओं का समूह जिस गुप्तलीला करनेवाले भगवान् का स्पष्ट रूप से वर्णन कर रहा है, और उससे जिसके मन में आश्चर्य का महापूर निर्मित हो रहा है तथा यह अति एकांत की घटना अपनी प्रियतमा के कान में मुख पर हास्य लाकर बोल रहा है, वह कुंजविहारी विराजमान है ।।६।।

कुंज में कृष्ण राधा से कहते हैं, "तुम्हारे केशकलाप को देखकर मयूरी आश्चर्यचकित होती है, नेत्रकमल के सौंदर्य को कृष्णसार (हरिण) प्रणाम करता है, मैं भी तुम्हारे सुंदर बालों के अग्रभाग को प्रणाम करता हूँ, देखो," ऐसी मधुर वाणी से बोलनेवाला कुंजविहारी कृष्ण शोभा पा रहा है ।।७।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मदनावेश से चंचल बालस्त्री मण्डली अनेक कलाएं सीखने की इच्छा से चारों ओर जिसकी सेवा कर रही है, जिसका विशीर्ण केशकलाप जिसके स्कन्ध पर गिर गया है, ऐसी प्रियतमा के स्कन्ध पर अपना पुष्ट बाहु रखा है, ऐसा कुंजविहारी विराजमान है ।।८।।

ऐसी अतुलनीय लीला का वर्णन जिसमें है, ऐसे कुंजविहारी भगवान् का यह अष्टक जो आनंद से गाता है और उससे लीलाओं का स्मरण करता है, राधा अपनी सखियों सहित जिसकी आराधना कर रही है, कुंजगृह का ऐसा स्वामी कृष्ण उस भक्त को अपने चरणकमल के पास ले आता है। यह श्रीरूपगोस्वामी कृत कुंजविहार्य्यष्टक समाप्त हुआ ।।९।।

वृन्दावन विहारे तु कृष्णः कैशोर विग्रहः।
अन्यारण्येषु स्थानेषु बाल्यपौगण्डयौवनम्। इति ।।९०९।।

इति श्रीवराहसंहितोक्तेर्गीतमालास्त्रिधा प्रोक्ताश्चित्रिका मालिका परेति गीतप्रकाशकारोक्तेः गीतमालिकाया दिग्दर्शनार्थमष्टकालीयां हरेर्दैनन्दिनलीलास्मरण सनत्कुमार तन्त्रोक्तं पद्यमेकं लिखामि कुंजाद् गोष्ठं निशान्ते प्रविशति कुरुते दोहनान्नाशनाद्यम्।
प्रातः सायं च लीलां विहरति सखिभिः षंगवे चारयन् गाः।।
मध्याह्ने चाथ नक्तं विलसति विपिने राधयाद्धापराह्ने।
गोष्ठं याति प्रदोषे रमयति सुहृदो यःस कृष्णोऽवतान्नः ।।९१०।।

अथ नायिकाभेदाः

अथाभिसारिका वासकसज्जाप्युत्कण्ठिता तथा।
विप्रलब्धा खण्डिता च कलहान्तरिता परा ।।९११।।
प्रोषित प्रेयसी प्रोक्ता तथा स्वाधीनभर्तृका।
इत्यष्टौनायिका भेदा रसतन्त्रे प्रकीर्तिताः ।।९१२।।

वृदावन के विहार के समय कृष्ण किशोरावस्था में, इतर अरण्यों के स्थानों में बाल्य, पौगण्ड और तारुण्य अवस्था में था ।।९०९।।

श्रीवराहसंहिता में गीतमालाओं का वर्णन किया गया है, (गीत प्रकाशकार ने लिखा है कि गीतमाला तीन प्रकार की है- चित्रिका, मालिका, परा) उसके दिग्दर्शन के लिए अष्टकाल की श्रीहरि भी दैनंदिन लीला का वर्णन सनत्कुमार तन्त्र के अनुसार एक पद्य में देते हैं-

श्रीकृष्ण रात्रि के अंत में कुंज से गोष्ठ में प्रवेश करते हैं और दुग्ध-दोहन, भोजन आदि करते हैं, सायंकाल और प्रातःकाल सखियों के साथ लीलाविहार करते हैं; षंगव (प्रातःकाल के बाद

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का समय) काल में गायों को चराते हैं; मध्याह्न, अपराह्न और नक्त (दीप का समय) में राधा के साथ अरण्य में विहार करते हैं, रात्रि के प्रथम प्रहर में मित्रों का रंजन आदि करनेवाले श्रीकृष्ण हम लोगों की रक्षा करें ।।९१०।।

अब नायिकाओं के भेद बताते हैं– रसतन्त्र में नायिकाओं के आठ भेद कहे गये हैं; यथा – अभिसारिका, वासकसज्जा, उत्कण्ठिता, विप्रलब्धा, खण्डिता, कलहान्तरिता, प्रोषितप्रेयसी, स्वाधीनभर्तृका ।।९११-९१२।।

अथ शृंगारभेदा:

पूर्वरागस्तथा मान: प्रेमवैचित्त्यमित्यपि।
प्रवासश्चेति कथितो विप्रलंभश्चतुर्विध: ।।९१३।।
चतुर्विधाद्विप्रलम्भात् सम्भोगोऽपि चतुर्विध:।
तस्मात् संक्षिप्त: संकीर्ण: सम्पन्नाख्य: समृद्धिमान् ।।९१४।।
यद्यप्ययं बहुविधो विभर्त्यंगं तथापि यत्।
व्रजलीला स्यादनार्थमुट्टंकेनैव कीर्तितम् ।।९१५।।
तद्विशेषजिज्ञासा चेत्– श्रीविदग्धमाधवोज्ज्वलनीलमण्यादिकं द्रष्टव्यम्।
अथ महानिशायां कुंजरास:।

श्रीगोविन्दलीलामृते–

अथ प्रबन्धगानं स नानाताल: पृथग्विधम्।
कर्त्तुमारभते ताभिर्विदग्धाभि: सनर्तनम् ।।९१६।।
श्रीराधया नृत्यति कृष्णचन्द्रे गायन्त्य आसन् ललितादयस्तदा।
चित्रादयोऽन्या: किल तालधारिका वृन्दादय: सभ्यतया व्यवस्थिता: ।।९१७।।
कृष्णे गायत्येकले राधिकाद्या गायन्तिस्माश्चर्यतालैर्दुरूहै:)
तस्मिन् सभ्ये राधिकाद्या: क्रमेणाश्चर्यं नृत्यं सांगहारं व्यधुस्ता: ।।९१८।।

शृंगार के प्रकारों का वर्णन करते हैं– विप्रलंभ शृंगार चार प्रकार के हैं– पूर्वराग, मान, प्रेमवैचित्त्य, प्रवास। विप्रलम्भ के चार प्रकार होने से संभोग शृंगार भी चार प्रकार के हैं– संक्षिप्त, संकीर्ण, सम्पन्न, समृद्धिमान्। यद्यपि यह बहुत प्रकार का है, तथापि व्रजलीला स्वादन के लिए जितने पर्याप्त हैं, उतने ही संक्षेप में कहे गये हैं ।।९१३, ९१४, ९१५।।

विशेष जिज्ञासु श्रीविदग्धमाधव, उज्ज्वलनीलमणि इत्यादि में देखें।

अब महानिशा में कुंजरास का वर्णन करते हैं। श्रीगोविन्दलीलामृत में है– भगवान् चतुर स्त्रियों के साथ नाना ताल एवं अनेक प्रकारों से युक्त नर्तन सहित प्रबन्धगान आरंभ करते हैं ।।९१६।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीराधा के साथ श्रीकृष्ण जब नृत्य करते हैं, तब ललितादि सखियाँ गाती रहती हैं। चित्रा आदि अन्य सखियाँ ताल धारण करती हैं और वृन्दा आदि और सभ्य बनकर बैठती हैं ।।९१७।।

श्रीकृष्ण जब अकेले गाने लगते हैं, तब राधा वगैरह आश्चर्यकारक अति कठिन तालों में गाती हैं। कृष्ण जब सभ्य बनकर बैठते हैं, तब राधिका आदि सखियाँ अंगहारों के साथ आश्चर्यकारक नृत्य करती हैं ।।९१८।।

रंगे क्रमाच्छ्रेणिकया स्थितानामन्तः पटत्वं नटतां गतानाम्।
वीणादि वाद्यावलिधारिकाणां नानाप्रबन्धादिक गायिकानाम् ।।९१९।।
ततघनसुषिराद्ध्यानद्ध कण्ठस्वरौघे मृदुविविधगतत्वेऽप्येक्यमाप्तेऽंगनानाम्।
तदनुग पदतालैर्भ्रूकरांगाक्षिचालैर्ननृतुरिह सकृष्णास्ताः प्रविश्य क्रमेण ।।९२०।।

युग्मकम्—
ते नाना पद्यबन्धेन ससृजुर्गायनी जनाः।
सरिगमपधन्याख्यैः स्वरै रागान्नवान् नवान् ।।९२१।।
जातयः श्रुतयो याश्च मूर्च्छना गमकाश्च ये।
नोच्चरन्ति विना वीणां कण्ठे तास्ताँश्च ता जगुः ।।९२२।।
ता धिक् ता धिक् धिगि तिनि नादम्।
कुर्वन् रासे वरमुरजोऽयम्।
लास्यैरासामतिशयतुष्टो।
निन्दत्यन्याः सुरवनिताः किम् ।।९२३।।
इत्यादि ज्ञेयं संक्षेपेण नाट्यम्।

नर्तन रंग में क्रम से पंक्ति बनाकर खड़ी नर्तन करते-क... ...ो बीच का पर्दा बन गयी हों, वीणादि चारों प्रकार के वाद्य धारण करनेवाली, प्रबन्धादि गायन करनेवाली और तंतुवाद्य, घनवाद्य, सुषिरवाद्य, चर्मवाद्य और कण्ठ स्वर, मृदु, विविध गति होते हुए भी सभी अंगनाओं का मानो एक ही स्वर निकल रहा हो, ऐसा प्रतीत होता था। और उस स्वर के अनुसार पदविक्षेप से भी ताल दिया जाता था तथा उसी के अनुगामी भ्रुकुटि, हाथ, नेत्र का भी अभिनय होता था। इसी प्रकार कृष्ण के साथ क्रम से प्रवेश कर उन्होंने नर्तन किया ।।९१९-९२०।।

वे गाने वाली सब गोपियाँ अनेक प्रकार के पद्यबन्धों, 'सरिगमपधनि' स्वरों के विन्यास से नवीन-नवीन राग गाती थीं। जाति, श्रुति, मूर्च्छना, गमक आदि का प्रदर्शन वीणा के बिना नहीं, बल्कि वीणा के अनुसार उन प्रकारों को कण्ठ से गाती थीं ।।९२१-९२२।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गोकुल की स्त्रियाँ जब रासक्रीड़ा करती थीं, तब वहाँ का श्रेष्ठ मुरज (चर्मवाद्य) 'ता धिक् ता धिक् धिगि तिनि' करता था। उसे सुनकर ऐसा लगता था मानो यह मुरज गोपिकाओं के लास्य से अत्यन्त संतुष्ट होकर स्वर्ग की इतर देवस्त्रियों की निन्दा कर रहा है। 'ताः=' स्वर्ग की उन स्त्रियों को; 'धिक्'= धिक्कार है। इनके सामने वे कुछ भी नहीं ॥१२३॥

यह संक्षेप में नाट्य।

अथ वसन्तदिवारासः

संगीतमाधवे—

तत्तद्विचित्ररतिकेलिभिरुल्लसन्ती स्मित्वा कदाचिदिति कान्तमुवाच राधा।
आकृष्य वेणुविरुतैर्व्रजभू किशोरीर्मध्ये सखीर्विरचय प्रियरासगोष्ठीम् ॥१२४॥
अथ गायति माधवे भुजं दयितांसे विनिधाय वेणुना।
परमाद्भुतदर्शनोच्छलत्कुतुकेन प्रियमाह राधिका ॥१२५॥

ललितरागेण गीयते—

न वहति सरिदपि सहजवेन, स्थगति शशी दिवि निजविभवेन।
प्रियगानरसे तव वेणुना ॥ध्रु.॥
द्रवमय वपुरिह धृतमुपलेन जनयति विस्मयमति कठिनेन।
सकल भुवनमिदममृतमयेन भवति भ(भा)वितमिव मधुरतरेण (रसेन)॥
तव पद सरसिजकृतभवनेन, चलति गृहं नहि युवति जनेन।
धृत तृण कवल मुकुलनयनेन, लसति वनं तव सुरभिगणेन।
विसृजति फलकमतुल रसेन, प्रमदखगावलिरलमलसेन।
स्थिरचरमिह भवति च कलनेन, परमसुखामृतहृदि मिलनेन।

अब वसन्त का दिन में किये हुए रास का 'संगीत माधव' के अनुसार वर्णन करते हैं- राधा उन आश्चर्यकारक रतिक्रीड़ा विलासों से आनंद में उल्लसित होकर, हँस कर अपने कान्त श्रीकृष्ण को कह रही है- अपनी मुरली की ध्वनि से गोकुलवासी युवतियों को आकृष्ट कर उन सखियों के मध्यभाग में रासक्रीड़ा की रचना करो॥१२४॥

बाद में जब माधव गाने लगे, तब कौतुक से अपने प्रियतम के स्कन्ध पर हाथ रखकर परमाश्चर्यकारक वेणु-रव एवं गीत से उछलते हुए आनंद और कुतुहल से कहती है- ॥१२५॥

यह ललितराग में गाया जाता है- यमुना नदी भी तुम्हारे वेणु से निसृत अति प्रिय गान के रस में डूबकर स्थिर हो गयी है, बह नहीं रही है, आकाश में चन्द्र अपने वैभव के साथ चकित होकर स्थिर हो गया है। यह देखकर बड़ा आश्चर्य हो रहा है कि कठिन पत्थर ने भी पिघला हुआ द्रवमय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शरीर धारण कर लिया है। यह सम्पूर्ण जगत् अति मधुर मुरली-रव सुनकर अमृतरस में घोला हुआ-सा लग रहा है। सभी तरुणियाँ तुम्हारे चरणकमलों को मानो घर बनाकर वहीं रहना चाहती हैं, घर जाने की उनकी इच्छा नहीं है। गायों का समूह मुँह में घास का कवल लेकर भी तृण चबाना छोड़कर नेत्र मूँदकर खड़ी हैं, इससे पूरा वन शोभायमान है। पक्षीगण मुरली रव के रस से आनन्दमग्न होकर जड़ हो गये हैं और फलभक्षण का भी त्याग कर दिया है। इस मुरली-ध्वनि से चर-अचर सभी वस्तुएं मानो अमृतमय सरोवर में निमग्न होकर आनंद का अनुभव कर ही हैं।

परपदरतमुनिरालपनेन। भवति कृती तव पद नयनेन।
मुदित सरस्वती गीतमुखेन। विगतमहिम्नि हरे स्वसुखेन।
अन्योन्याबद्धहस्तैरधिकृतवलयैर्गोपबाला कदम्बे।
कालिन्दीये विराजत्सुविपुल पुलिने मन्दसद्गन्धवाहे।
एकैकस्याः स एकोऽप्यति चतुरतया कंठसंश्लेषि बाहुः।
मध्ये मुग्धः स राधारतिरभसपरस्तत्र रासे ननर्त्त ।।१२६।।
एका गोपी राधिकासख्यहीना।
भद्रा रुद्धा तत्क्षणोज्र्जृम्भितार्तिः।।
सिद्धा राधामाधवध्यानयोगात्।
रासे दिष्ट्या (दध्यौ) निर्गताथैवमूचे ।।१२७।।

वसन्तरागेण गीयते—
वादयते मणिवेणुमुदारम्।
विगलितमधुरव नवरससारम्।
नृत्यति हरिरिह मोहनरासे।
रसिकयुवतिततिचित्त (रचित) विलासे।
दर्शयते बहु हस्तकभेदम्।
चलति ललित गति चित्रमखेदम्।

समाधिशील मुनि मुरली के आलाप से समाधि छोड़कर तुम्हारे चरणकमल के दर्शन से आनंदित और धन्य हो रहे हैं। हे कृष्ण! आत्मानन्द का सुख भी तुच्छ समझ कर सरस्वती तुम्हारे गीत से आनंदित हो रही है।

यमुनाजी के विशाल बालुकामय प्रदेश में मन्द-मन्द सुगंधित वायु चल रही है, वहाँ गोकुल की स्त्रियाँ परस्पर हस्त ग्रथित कर गोलाकार खड़ी हैं, श्रीकृष्ण उनमें एक होते हुए भी नर्तन के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अति चातुर्य से और लाघव से प्रत्येक के कण्ठ में बाहु से आलिंगन देता हुआ नर्तन कर रहा है; बीच-बीच में राधा के साथ रति के आवेग में मग्न होकर वह सुंदर भगवान रास में नाच रहा है ।।९२६।।

राधा के साथ सख्य न रखनेवाली एक गोपी, जिसके मन में (राधा-कृष्ण के विलास को देखकर) मत्सर से पीड़ा उत्पन्न हो गयी है और जो राधा-माधव को मत्सर से भी ध्यान करते हुए सिद्ध हो गयी है, रास से निकलकर इस प्रकार बोली – ।।९२७।।

वसन्त राग में – श्रीहरि रत्नजड़ित मुरली बजाते हैं, इस कारण इस मोहनेवाली रास में मधुर ध्वनि से मानो नवरसों का सार ही बह रहा है। रसिक तरुणियाँ के समुह में, मन को आनंद देनेवाले रास में अनेक हस्तभेद दिखाते हुए, अनेक सुंदर गतियों से आश्चर्य निर्माण करते हुए सुंदर सहज लीला से चल रहे हैं।

मध्यविलम्बित द्रुत पदचालम्।
कलयति गीतपदोचिततालम्।
रत्नखचित पट वलयकटीरम्।
भ्रमयति नवघन श्याम शरीरम्।
सहनर्तक राधामुख बिम्बम्।
चुम्बति चारुरचित परिरम्भम्।
ललितार्पित ताम्बूल ख(क) पूरम्।
रसयति विहितप्रियामुखपूरम्।
गीतविचित्रकलागत पारम्।
किमपि प्रशंस तवरतमुदारम्।
मधुर सरस्वती गीतमुदारम्।
जनयति रसिकजन हरिरससारम्।

पदचालन में द्रुत, मध्य एवं विलंबित तीनों गतियाँ दिखा रहे हैं। गाने में गति के अनुकूल ही पद से भी ताल दिखा रहे हैं। रत्नखचित वस्त्र कटि में लपेटा हुआ है। नवीन मेघ की तरह नीलवर्ण का शरीर घुमा रहे हैं। साथ ही नर्तन करनेवाली राधा के मुख (अधरोष्ठ) का सुंदर आलिंगन के साथ चुंबन ले रहे हैं। ललिता द्वारा दिया गया कर्पूरादि द्रव्य सुगंधित ताम्बूल मुख में चर्बण कर अपनी प्रियतमा के मुख में देकर स्वयं आस्वाद ले रहे हैं। गाने की आश्चर्यजनक, विविध कलाओं की चरम सीमा देखकर उदार नर्तन विलास और रति की स्तुति कर रहे हैं अथवा सब स्तुति करो। सरस्वती का यह माधुर्यपूर्ण गीत विलासार्थ से भरा हुआ है, रसिक भक्तों के अंतःकरण में श्रीकृष्णरस का पूर्ण सारभूत आस्वाद का निर्माण कर रहा है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निशावसन्त रासः
मानुषं गीतं, कल्याण रागः।
ऋतुपति राति रसिक रसराज।
रसमय रास रभस रस माझ।
रसवती रमणी रतन धनि राई।
रासरसिक सहरस अवगाई।
रंगिणि गण सब रंगहि नटई।
रणरणि कंकणकिंकिणि वटई।
रहि रहि राग रचये रसवन्त।
रतिरतरागिणि रमण वसन्त।
वटति रवाव महति कपिलास।
राधारमण करु मुरलिविलास।
रसमय विद्यापति कविभाण।
भूपनारायण भूपतिजान।

निशावसन्त रास-
मानुष गीत, कल्याण राग-

वसन्तरात्रि में रसिकश्रेष्ठ कृष्ण·रास-रस के आनंद में विभोर हैं, रसवती रमणियों के बीच श्रेष्ठ रत्न स्वरूपा श्रीराधा रासरसिक श्रीकृष्ण के साथ रस में अवगाहन अर्थात् स्नान कर रही हैं, रंगमयी अर्थात् आनन्दिता संगिनियों के साथ रसरंग में नृत्य कर रही हैं। (उनके हाथ के) कंकणादि रिणरिणी शब्द की सृष्टि कर रहे हैं। श्रीकृष्ण धीरे-धीरे अनुरागमयी रागिणियों में प्रियराग वसन्त की रचना कर रहे हैं। रबाब, महती, कपिलास आदि वाद्य बज रहे हैं, राधारमण अर्थात् श्रीकृष्ण मुरली वादन कर रहे हैं। रसमय कवि विद्यापति कहते हैं और नृपति रूपनारायण उसे जानते हैं।

बेलोयारी रागः
(बाजे ताद्रिगि द्रिगि धो दृमि दृमिया)
बाजत दृगि दृगि धो द्रिमि द्रिमिया।
नटति कलावति श्यामसंगे माति।
करे करताल प्रबन्ध ध्वनिया ।।ध्रु.।।
डग मग डम्फ दृमिकि दृमि मादल।
रुणु झुणु रुणु झुणु मंजिर रोल।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किंकिणि रणरणि वलया कलयामणि।
निधुवन रास तुमुल उत्तरोल।
वीणारबाब मुरज स्वरमण्डल।
स रि ग म प ध नि सा बहुविध भाव।
घेटिन्ता घेटिंता मृदंग गरजनि।
चंचल सब मण्डल एकु राव।
श्रमभरे गलित सलित कबरी।
युतमालती विथारल मोती।
समय वसन्त (रास) रसवर्णन।
विद्यापति क्षोभित होति।

बेलेयारी राग–

तादि्रगि द्रिगि धो दृमि दृमिया, दृगि दृगि धो द्रिमि द्रिमिया आदि ध्वनियों में वाद्य बज रहे है। कलावती (श्रीराधा) श्याम के साथ मत्त होकर नृत्य कर रही है। हाथ पर करताली देकर प्रबन्ध ध्वनि कर रही है ।।ध्रु.।। मादल डग मग डम्फ दृमिकि दृमि बोलों से बज रहा है। मंजीर रुणु-झुण रुणु झुणु बोल निकाल रहा है। मणिखचित स्वर्ण वलय से रिणिरिणि किंकिणी ध्वनि हो रही है। निधुवन में उत्ताल रास हो रहा है। वीणा, रबाब, मुरज, स्वरमण्डल आदि बज रहे हैं और सारिगमपधनि स्वरों के कई रूप व संगतियाँ प्रकट हो रही हैं। मृदंग घेटिन्ता-घेटिन्ता गर्जन कर रहे हैं। चंचल रास मण्डल एक ही रव, ध्वनि निकाल रहा है। श्रम से सुंदर कबरी शिथिल हो गयी हैं, मालती माला से मुक्ता स्खलित हो रहे हैं। वसन्त रास का यह अपूर्व वर्णन करते हुए विद्यापति का मन चंचल हो रहा है।

श्रीराग:

वृन्दावन रम्यस्थान कोटिचिन्तामणिधाम।
रतनमंदिर मनोहर।
आनन्दे कालिन्दी जले राजहंस केलिकरे।
कनक कमल उतपल।
तारमध्ये हेम-पुष्प अष्टदल वेष्टित।
अष्टसखी प्रधान नायिका।
तारमध्ये रत्नासन बसिलेन दुइजन
श्याम-गोविन्द राधिका ।।ध्रु.।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ओ रूप लावण्यराशि अमिया पड़िछे खसि।
हास परिहास सम्भासने।
नरोत्तमदास कय नित्यइ सुखमय
सदाइ सुमरु मोर मने।

श्रीराग-

सुंदर स्थान वृदावन कोटि-कोटि चिन्तामणियों का धाम है। वहाँ सुंदर रत्नमय मन्दिर शोभायमान है। यमुना के जल में राजहंस आनंद से केलि करते हैं, उसमें कई स्वर्णमय उत्पल, कमलदल हैं। उसमें अष्टदलमय स्वर्णपद्म के समान अष्टसखी वेष्टित प्रधान नायिका हैं। उसके बीच रत्नासन पर श्याम और राधिका दोनों बैठे हैं। और परस्पर हास-परिहास तथा सम्भाषण कर रहे हैं। उनके लावण्य रूप से अमृत झरने लगा। नरोत्तमदास सर्वदा ही उस सुखमय नित्यानन्द का स्मरण करते हैं।

अथ झूलना लीलावसन्तोत्सवश्च-

वृदावनं लौकिकवन्मदीयम्। तथापि लोकोत्तर लोकहारी।।
राज्ञो यथात्यन्त विलासिनःस्यात्। आरामरम्यत्वमति प्रसारि ।।९२८।। ।।१।।
षण्णामृतूनां पृथगेव षट् चेत्। पदानि तत्तत्स्वगुणैः स यत्र।
वृन्दावनेन्दुः प्रतिवासरं तत्। सर्वर्त्तुलीलानुभवं तनोति ।।९२९।। ।।२।।
तथापि सर्वोत्तर एव नित्यम्। वृन्दावनेऽस्मिन् प्रणयन्ति सेवाम्।
येषां प्रसूनैः कृतभूषणास्ताः। वृन्दावनेन्दुं प्रणयन्ति गोप्यः।।९३०।। ।।३।।

दोला पर लीलावसन्तोत्सव- यह वृंदावन सर्व साधारण लोगों की तरह ही लताकुंज पुष्प फलान्वित है, फिर भी अपूर्व लोकोत्तर लोगों के मन को हरण करनेवाला है। अति विलासशील राजा का उद्यान जैसा सब ओर से सुखद होता है, ऐसी लौकिक मनोहरता धारण करते हुए भी यह अलौकिक है ।।९२८।।

छः ऋतुओं का वैभव दिखानेवाले अलग-अलग छः स्थान हों और वे अपने-अपने गुणों से भरे हुए हों, तो वहाँ का जो अलग-अलग आनंद है, उस आनंद को वृंदावनचन्द्र भगवान कृष्ण ने प्रत्येक दिन में उन सबकी लीलाओं का आस्वाद एक ही स्थान वृंदावन में उत्पन्न किया ।।९२९।।

यहाँ वृंदावन में वे ऋतुएँ एक साथ सब ऋतुओं का लोकोत्तर आनंद सर्वदा दिखाते हुए सेवा कर रही हैं। भिन्न-भिन्न ऋतुओं के फूलों से हारादि आभूषण बनाकर गोपियाँ धारण करती हैं और वृंदावनचन्द्र श्रीकृष्ण को प्रणाम करती हैं ।।९३०।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वृन्दावनेन्दोः सकल प्रियाणाम्। वृन्दावनेऽस्मिन् विलसन्ति कुंजाः।
ब्रह्मानुभूतेरपि मोचयन्ति। येषां द्युतीनां कलयापि गुंजः ।।९३१।। ।।४।।
स कल्पवृक्षस्तदधो निकुंजम्। तन्मन्दिराण्यप्यति चित्रकाणि।
यावन्मुकुन्द प्रिययेपि सतानि। भवन्ति तावन्ति न ता विदन्ति ।।९३२।। ।।५।।
गोविन्दभूमीति पुराणगीतम्। यद्योगपीठाख्यमपीह तन्वे (तन्त्रे) ।
श्रीराधयाश्रीप्रियबन्धु (योग) धाम। निकुंजरासं निगदाम नाम ।।९३३।। ।।६।।

वृंदावनचन्द्र श्रीकृष्ण की सभी नायिकाओं के अलग-अलग कुंज इस वृंदावन में शोभायमान हैं, जिनकी जड़ी हुई एक गुंज भी ऐसी कान्तिमान् आनन्ददायिनी है कि जिसकी एक कला भी सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्मानुभव से समाधिशील मुनियों को आकृष्ट कर सकती है। (यह सगुणब्रह्मानन्द का अनुभव निर्गुण ब्रह्मानन्द से अधिक है) ।।९३१।।

वहाँ का वृक्ष कल्पवृक्ष है, उसके नीचे लतागृह है और अति विचित्र मन्दिर भी इतने हैं कि भगवान् के प्रिय उन मन्दिरों को वहाँ की गोपियाँ भी नहीं जानतीं ।।९३२।।

यह गोविन्दभूमि है, ऐसा ही पुराणों ने वर्णन किया है। यहाँ योगपीठ नाम से भी एक पीठ (आसन) है। वह श्रीराधाकृष्ण का ही धाम कहा जाता है। (नित्यरास की प्रवृत्ति होने के कारण) वह निकुंजरास नाम से ही जाना जाता है ।।९३३।।

यद्दक्षिणे राजति राजकेलि दोलस्थली याऽति विचित्र शिल्पा।
आनन्द वृन्दावन एव यस्याः। स्वरूपशोभातिशयेन यस्याः।।९३४।। ।।७।।
श्रीकविकर्णपूरगोस्वामिकृतानन्दवृन्दावनचम्पूनाम महाकाव्ये च
श्रीवृंदावन एव कापि वलते दोलोत्सवीय स्थली।
यत् प्रान्ते समारोपितेव (किलरोपिते इति युक्तम्) परितः कल्पद्रुमाणां ततिः ।
शाखाग्रैरितरेतरं समपरिष्वक्तेव लेखायिता।
काण्डानामृजुदीर्घवृत्त वपुषां मध्येषु शून्यान्तरा ।।९३५।।

किंच–
महा हरिन्मणि चतुः (चण्ड) प्राचीरतां गच्छताम्।
चंचच्चामरचीन चेल सकल प्रालम्बमुक्तास्रजम्।
नानारत्नफलप्रसून विहग श्रेणीजुषामन्तरे।
प्राशुः काचन कांचनेन रचिता वेदिश्चतुष्कोणिका ।।९३६।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जिसके दक्षिणभाग में 'राजकेलिदोलस्थली' (सर्वश्रेष्ठ दोलाक्रीड़ास्थल) है, उसमें आश्चर्यकारक शिल्पकृति है, जिसकी अतिशय स्वरूपशोभा से वृंदावन ही सर्वत्र आनंद से परिपूर्ण-सा लगता है ।।१३४।।

श्रीकवि कर्णपूर कृत 'आनंदवृंदावनचम्पू' नामक महाकाव्य में ऐसा वर्णन है।

श्रीवृंदावन में दोलोत्सव का स्थल ऐसा शोभायमान है कि उसका वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता। उसके आसपास कल्पवृक्षों की पंक्ति है। उनके काण्ड सरल, लम्बे और वर्तुलाकार हैं। दो-दो के बीच समान खाली जगह है और ऊपर शाखाओं का परस्पर आलिंगन है। यह शोभा ऐसी लग रही है जैसे रचनापूर्वक चित्र बनाया गया है ।।१३५।।

महातेजस्वी पाचू के पत्थरों से चारों ओर तटबन्दी की हुई है, हिलनेवाले चामरों की तरह चीन देश जैसा झीना वस्त्र हो; उसके ऊपर के भाग में यवनिका जैसे लटकाये हुए वस्त्र हैं, उनके ऊपर लगायी गयीं मोतियों की मालाएं प्रकाशमान हैं, जहाँ-तहाँ नाना रत्न हैं, अनेक फल-फूल शोभायमान हैं और आसमान में पक्षियों की पंक्तियाँ सुशोभित हैं। उसके मध्यभाग में सुवर्णनिर्मित ऊँची चतुष्कोण वेदी (आसन) रखी हुई है। वह भी शब्दातीत सौंदर्य से सुशोभित है ।।१३६।।

यत्कोणेषु चतुर्षु चारुविटपैरन्योन्यसंसर्गिण-।
श्चत्वारो हरिचन्दनाः प्रसरिणः सौंदर्यसारश्रियः।।
यैः शाखाभिरकारि कश्चन चतुर्द्वारश्चतुः सम्भवान्।
भास्वद्रत्न चतुश्छदिः प्रसृमरस्तुंगो मणेर्मण्डपः ।।१३७।।
यच्छाखाग्रविलम्बिनीभिरनतिस्थूलाभिरान्दोलिनी।
बद्धाकाश्चन रज्जुभिर्विजयते प्रेंखोलखट्वा हरेः।।
या प्राग्दक्षिणपश्चिमोत्तरगते तुल्ये समस्तांगुले।
सर्वाभिर्मम सम्भुखीति ककुभा लक्ष्मीभिरालोक्यते ।।१३८।।
द्वयोर्द्वयोः स्कन्धविलम्बिनीति।
बद्धा दृढं कांचन शृंखलाभिः।
समानरेखावदनुच्चनीचाः।
प्रेंखोलिकानां ततयश्चतस्रः ।।१३९।।

जिस सुवर्णासन के चारों ओर के चारों कोणों में सुंदर शाखाग्रों से परस्पर मिले हुए चार हरिचंदन वृक्ष हैं, वे विस्तृत हैं और सौंदर्य से परिपूर्ण सार की शोभा धारण किये हुए हैं। उनकी शाखाओं ने चार द्वार वाला ऊँचा मणिमय मण्डप निर्माण किया है, जिसके चारों ओर विस्तृत चमकनेवाले रत्नों से सन्न ऊपर का पटल प्रांत है ।।१३७।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जिसकी शाखा के अग्रभाग में मध्यम परिमाणवाली सुवर्ण रस्सियों से बँधी एवं आन्दोलित होनेवाला श्रीहरि का 'प्रेंखोलखट्वा' (झूला) है, जो पूर्वादि चारों दिशाओं में समान अंतर रखकर दोलता है। इससे वहाँ की सभी गोपियों और चारों दिशाओं के देखनेवाले सभी व्यक्तियों को ऐसा लगता है कि वह उनके सामने ही दोल रहा है ।।१३८।। (ककुभालक्ष्मीभिः=दिगंगनाएं)।

दो-दो वृक्षों की शाखाओं से लटकी हुईं और सुवर्णमय रस्सियों से मजबूत बँधी हुई दोलाओं की पंक्तियाँ चारों दिशाओं में चार हैं। सभी समान रेखा में, समान अंतर पर होने से जरा भी ऊँची-नीची नहीं लगती थीं ।।१३९।।

वृंदारण्यभुवः प्रणामविधिनादिक्षु भ्रुवां विश्लथाम्।
भुक्ताकंचुलिकाः स्थिरेण मरुता धार्य्यन्त एताः किमु ।
स्वस्वस्थानसमीपतः किमथवा तद्वन्दनार्थं मुदा।
पौर्वापर्यमपास्य सादरमधस्तारावलिर्लम्बते ।।१४०।।
तद्भूरेणुलिलिप्सयेव नभसः श्रीणां रसज्ञाकुलैः।
त्यंचच्चंचलचारुचीनसकलैरान्दोलवद्भिर्वृताः।
मन्दस्यन्दिमरुद्विधूननमृदुप्रेंखोलमुक्तामणि—।
प्रालम्बाचलकिंकिणीकुलकलस्वानैः श्रवःप्रेयसी ।।१४१।।
पर्यन्तेषु समानचामरचयैर्ज्योत्स्नातडागोदरात्।
उड्डीतैरिव हंसकैर्गगनजैः किंवा सिताम्भोरुहैः।
मालानामपि खण्डकैस्तत इतो नानाप्रसूनोज्ज्वलैः।
सश्रद्धं वनदेवतापरिषदा संचस्करे सा पुनः ।।१४२।।

वृन्दारण्य की पवित्र भूमि को वंदन करने के लिए दिगंगनाएं आयी हैं और मुक्तारत्न आदि से मण्डित कंचुकियाँ स्वस्थान से च्युत हो गयी हैं और वायु से स्थिर एवं समान रूप से रहकर बीच में ही मानो धारण की हुई हैं, ऐसी ये दोलाओं की पंक्तियाँ विराजमान हैं, अथवा नक्षत्रमालाएं मानो भगवान् को प्रणाम करने की इच्छा से अपना-अपना स्थान छोड़कर, अपने निश्चित स्थान के आगे पीछे का अंतर छोड़कर आदर के साथ नीचे झुककर खड़ी हैं ।।१४०।।

आकाश की सभी दिव्यांगनाएं वृंदावन की भूमि की धूलि प्राप्ति की इच्छा और वहाँ का आनंद जानने की इच्छा से व्याकुल होकर आयी हैं। वे चंचलता से हिलनेवाले सुंदर चीनदेशीय जैसे वस्त्रों से अलंकृत हैं। मंद-मंद बहनेवाली वायु से धीरे-धीरे हिलनेवाले रत्नमौक्तिकों के शब्दों और लम्बायमान हिलनेवाली क्षुद्र घण्टिकाओं की ध्वनि से यह दोलास्थली आनंददायक हो गयी है ।।१४१।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उस वृंदावन की भूमि के चारों ओर समान रूप से उड़नेवाले हँस हैं। उन्हें देखकर ऐसा लगता है मानो वे चन्द्रिकारूपी तालाब के बीच ही में उड़ रहे हैं। ये हंस नहीं, बल्कि वायु से संचालित चामर ही समान रूप से हिल रहे हैं अथवा आकाशरूपी सरोवर के धवल वर्ण के कमल हैं और पंक्तिबद्ध घूमने से ये मालाओं के खण्ड के समान शोभा पा रहे हैं; मालूम होता है, वन देवताओं ने इस भूमि को विविध प्रकार के फूलों से सुशोभित मालाओं से अलंकृत किया है ।।९४२।।

धूपैरागुरवैर्महासुरभिभिःसंधूमलेखोल्लसत्।
कर्पूरस्य सुरेणुभिर्दिगबला लोमावली सन्निभैः।
च्योतद्भिर्मकरन्दबिन्दुनिकरैः कल्पद्रुमोत्थैर्मुहुः।
सौरभ्यातिशयं विशिष्य गमितैः साधूपितासीत् स्थली ।।९४३।।

पर्यंकस्थैः प्रियपरिजनैश्चारु दोलायमानौ
वृंदाद्याभिर्जयजयजयेत्युच्यमानौ समन्तात्।
लीलालोलं स्वयमपि मुदा केलिधूलीः किरन्तौ।
राधाकृष्णौ युवतिनिकरे रेजतुः कीर्यमाणौ ।।९४४।।

श्रीगोविन्दलीलामृते—

हिन्दोलिकायां सहसालिवृन्दैः।
आन्दोलितायां बलवच्चलन्त्याम्।
उद्वेल्लितांगी चकिताक्षिपद्मा।
सालिंग्य कान्तं ललना ललम्बे ।।९४५।।

यह रासस्थल अगरुचन्दन के महासुगंधित धूपों से उत्पन्न होनेवाले धूओं की मालाओं से सुशोभित था। धूमलेखाएं सर्वत्र व्याप्त होने से ऐसा लगता था मानो यह दिशारूपी अंगनाओं की रोमावली ही है। कल्पवृक्षों के ऊपर से बार-बार मधुबिन्दुओं की वर्षा हो रही थी। उससे ऐसा लगता था जैसे उससे यह भूमि अति सुगंधित बनायी गयी है ।।९४३।।

आसपास में पलंगों (दोलाओं) पर बैठे प्रियजनों से राधाकृष्ण दोला पर झुलाये जाते थे। वृंदा आदि सखियाँ चारों ओर से ऊँचे शब्दों में उनके नाम की जयजयकार कर रही हैं और उस लीला में मग्न होकर क्रीड़ा के समय परस्पर फेंका जानेवाला पटवास (गुलाल आदि सुगंधित धूलि) राधाकृष्ण आनन्द से अपने परिवार पर फेंक रहे हैं। वह संपूर्ण तरुणीगण उन पर भी सुगंधित द्रव्य फेंक रहे हैं। गोकुल की ऐसी तरुणियों के बीच राधाकृष्ण विराजमान हुए ।।९४४।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीगोविन्दलीलामृत में है– हिन्दोलिका (झूला) को जब सखियों के समूह ने अचानक जोर से हिलाया, तब वह झूला जोर से ऊँचा हो गया, उससे नितम्बिनी राधा शरीर हिलने से कुछ डर गयीं और आश्चर्यचकित होकर उसने अपने प्रियतम कान्त श्रीकृष्ण का जोर से आलिंगन कर उसका आश्रय लिया। उस समय राधा के नेत्रकमल सुंदर दिखायी दे रहे थे। ॥१४५॥

तयोः स्रस्यत् केशं मिथ इव चलत् कुन्तलयुगे।
तथाचंचत् कांचीस्तबक पटलं तत्समुदये।
परिस्नायन् माल्यद्वयमपि चलत्कंकणरवैः।
दृढां (दृढं) गोलान्दोले (दोलोन्दोले) सति सपदि सन्दानितमभूत् ।।१४६।।

गीतावल्यां च– आशावरी रागः

निपतति परितो बन्धनपाली।
तं दोलयति मुदा सुहृदालिः।
विलसति दोलोपरि वनमाली।
तरल सरोरुह शिरसि यथालिः।।ध्रु.।।
जनयति गोपीजनः करतालीम्।
काऽपि पुरो नृत्यति पशुपाली।
अयमारण्यज मण्डनशाली।
जयति सनातन रस परिपाली।।

जोर से झुलने से उन दोनों के केशकलाप इतस्ततः विखरने लग गये और कमर की कांची के गुच्छ जोर से हिल गये। हिलनेवाले कंकणों से शब्द होने लगा। दोनों की परिधान की हुईं मालाएं गोल आंदोलन में परस्पर को एकदम दृढ बाँधने के काम में आयीं ॥१४६॥

गीतावली में इस प्रकार वर्णन है– आशावरी राग में – दोला पर वनमाला धारण किये हुए श्रीकृष्ण विराजमान हैं। दोला इधर से उधर झूल रहा है। सखियाँ उसे आनंद से झुला रही हैं। उस समय नीलवर्ण भगवान् इस प्रकार सुशोभित थे, जिस प्रकार हिलनेवाले कमल के बीच नीलवर्ण भ्रमर शोभायमान होता है। सभी तरुणियाँ हिलनेवाले कमल की पत्तियों (पंखुड़ियों) की तरह शोभायमान थीं। गोपिकाओं का समूह करताली बजा रहा है, कोई गोपी अकेले ही सामने नाच रही है। श्रीकृष्ण ने वन में उत्पन्न होनेवाली वस्तुओं के भूषण बनाकर धारण किये हुए हैं, उनसे ही वह शोभायमान है। सनातन (कवि का नाम और भगवान का विशेषण) भगवान् सच्चिदानन्द रसमय हैं, वह सर्वदा जयशाली है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अथ वसन्तोत्सवः

वसन्तरागः

मधुरिपुरद्य वसन्ते-
खेलति गोकुलयुवतिभिरुज्ज्वलपुष्पसुगंधदिगन्ते ।।ध्रु.।।
प्रेमकरम्बित राधा चुंवित मुखविधुरुत्सवशाली।
धृतचन्द्रावलिचारुकरांगुलिरिह नवचम्पकमाली।
नवशशिरेखालिखित विशाखातनुरथ ललितासंगी।
श्यामलयाश्रित बाहुरुदंचित पद्मा विभ्रम रंगी।
भद्रालम्बित शैब्योदीरित रक्तरजोभरधारी।
पश्य सनातनमूर्तिरयं घनवृंदावनरुचिकारी।
विहरति सह राधिकया रंगी।
मधु मधुरे वृन्दावनरोधसि हरिरिह हर्ष तरंगी ।।ध्रु.।।

अब वसन्तोत्सव वर्णन- वसन्तराग-

आज वसन्त के समय में मधुदैत्य का नाश करनेवाले भगवान् ऐसे स्थल पर, जहाँ सुंदर फूलों से दस दिशाएं सुगंधित हैं, गोकुल की तरुण युवतियों के साथ खेल कर रहे हैं। प्रेम से परिपूर्ण रोमांचित राधा ने कृष्ण का चुंबन लिया, उससे कृष्ण का मुखचन्द्र आनंद से भरा हुआ-सा सुशोभित हुआ। भगवान् कृष्ण ने सुवर्ण चम्पकों की माला धारण की है। ये चम्पक नवविकसित हैं। चन्द्रावली ने श्रीकृष्णचन्द्र की की करांगुली पकड़ रखी है। विशाखा की शरीरयष्टि ऐसी सुशोभित है, जैसे नवीन चन्द्रलेखा से ही उसका शरीर बना हो। ललिता के साथ श्रीकृष्ण विराजमान हैं। पद्मा श्यामसुंदर श्रीकृष्ण की लय के अनुसार अपनी बाहुलताओं का अभिनय विलास के रंग में आकर दिखा रही है। भद्रा ने गुलाल आदि सुगंधित लाल द्रव्यों से भरा हुआ पात्र हाथ में लिया है। शैव्या उस सुगंधित, रंगित पटवास (चूर्ण) को फेंक रही है। ऐसे में श्रीकृष्ण सुशोभित हैं। सनातनमूर्ति भगवान् श्रीकृष्ण को देखो, वे घनदार वृंदावन को अधिक रंजक बना रहे हैं। आनंद की तरंगों में डूबे हुए, रंग में निमग्न श्रीहरि वसंत की शोभा से अति मनोहर वृंदावन में यमुना के तीर के पास राधिका के साथ विहार कर रहे हैं।

वसन्तराग एव-

विकिरति यन्त्रेरितमघवैरिणिराधा कुंकुमपंकम्।
दयितामयमपि सिंचति मृगमदरसराशिभिरविशंकम्।
क्षिपति मिथो युवमिथुनमिदं नवमरुणतरं पटवासम्।
जितमिति जितमिति मुहुरपि जल्पति कल्पयदतनुविलासम्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुबलो रणयति घनकरतालीं जितवांजितवानिति वनमाली।
ललिता वदति सनातन वल्लभमजयत् पश्यममालि:।
एवमहरहरहो रहो विलासाम्वुधेस्तस्य नित्यभूत: (रास विलास:)
प्रकटाप्रकट तयैव समुज्जृम्भते स्म।
न तस्यास्ते शक्तिर्नहि भवितुमीदृक् प्रभवतो।
न सिद्धादेर्भेदान्न कमलदृशस्ताश्च विविधा:।
न वृन्दारण्यस्यार्हति न खलु तस्या: प्रकटता।
कथं तस्मिन्नित्यं न भवतु हरे: केलिललितम्।

वसन्तराग में ही– राधा इन्द्र को जीतनेवाले श्रीकृष्ण के ऊपर कुंकुमादि सुगंधित द्रव्य से पूरित, जलमिश्रित रंग यन्त्र से फेंक रही है। संपूर्ण स्थान गोकुल की गोपियों से भरा होने पर भी राधा निःशंक होकर कस्तूरी आदि द्रव्यों से मिश्रित रस फेंक रही है। यह दाम्पत्य परस्पर के ऊपर अति लाल रंग का पटवास (सुगंधित द्रव्यों से बनाया हुआ चूर्ण, जिसका रंग लाल होता है, एक-दूसरे पर यों ही, अथवा पानी मिलाकर फेंका जाता है) फेंक रहे हैं। राधा बड़े विलासपूर्ण भाव से बार-बार कह रही है– 'मैंने जीत लिया, मैंने जीत लिया'। सुबल करताली बजाकर कहता हैं कि वनमाला धारण करनेवाले श्रीकृष्ण ने जीत लिया (उसकी जय हो गयी) और ललिता कहती है कि सनातनवल्लभ (कवि के प्रिय) श्रीकृष्ण को मेरी सखी राधा ने जीत लिया। इस प्रकार रोज-रोज आश्चर्यकारक विलाससागर भगवान् श्रीकृष्ण की यह लीला (रास) नित्य ही चलती है, कभी प्रकट रूप में और कभी अप्रकट रूप में। ऐसा नहीं है कि इस प्रकार अनन्त रूप से निर्माण करने की शक्ति उसके पास नहीं है, ऐसा नहीं है कि सिद्धियों के अनेक प्रकार नहीं हैं, नाना प्रकार की कमलनेत्रा युवतियों का वे निर्माण कर सकते हैं। ऐसा नहीं है कि वृंदारण्य में प्रकट होने की योग्यता उसमें नहीं है, तब फिर श्रीहरि का क्रीड़ा-विहार वहाँ नित्य क्यों नहीं हो सकता!

एवं वसन्तादिष्वपि होलिकोत्सवदानादि हिन्दोलादिलीलायुक्तमन्तर्गत रात्रिन्दिवानन्तलीलं यदेव वर्षं याति तद्देववर्षं पुन: पुनरायाति। ते कृष्णस्य तदेव कैशोरमादिममन्तिमं वा स्थिरमेव तन्मात्रादीनामपि क्वचिद् द्वैवार्षिक: क्वचित् त्रैवार्षिक: पंचवार्षिकाष्टवार्षिक एव कृष्ण इति योगमाययैव प्रत्यायनमिति।

अथ प्रपंचागोचर लीलास्पदस्य वृंदावन प्रकाशस्य नित्यत्वे प्रमाणानि दर्श्यन्ते यथा–

रुद्रयामले रुद्रगौरीसंवादे–

वीथ्यां वीथ्यां निवासोऽधरमधुसुवचस्तत्र सन्तानकानामेके राकेन्दुकोट्या उपविशद्करास्तेषु चैकैकमन्ते (च एके कमन्ते)।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वामे रात्रेर्विरामे समुदिततपन भान्ति (द्योति) सिन्धूपमेयाः।
रत्नांगानां सुवर्णाचितमुकुररुचस्तेभ्य एके द्रुमेन्द्राः ।।९४७।।
यत् कुसुमं यदा मृग्यं यत् फलं च वरानने।
तत्तदेव प्रसूयन्ते वृंदावन सुरद्रुमाः ।।९४८।।

इस प्रकार वसन्तादि ऋतुओं में होलिकादि उत्सव लीला, हिन्दोल लीलादि से पूर्ण विहार चलता रहता है, वह दिन-रात को भी समाविष्ट कर लेता है। अनंत लीला से परिपूर्ण यह जो वर्ष बीतता है, वही देववर्ष है। वह बार-बार आता है। इन लीलाओं के समय श्रीकृष्ण का जो कैशोर, आदि (बाल्य), अंतिम इत्यादि वय है, वह उसी रूप में उस-उस लीला में स्थिर रहता है। उनकी माता यशोदा आदि को भी उसी वय- कहीं दो वर्ष की, कहीं तीन वर्ष की, कहीं पाँच वर्ष की, कहीं आठ वर्ष की प्रतीति होती है। इसका कारण योगमाया है।

प्रपंच की तरह उन-उन लीलाओं का जो स्थान वृंदावन है, वहाँ लीलाओं का प्रकाश नित्य दिखायी देता है, प्रमाण परिलक्षित होते हैं।

जैसे रुद्रयामल में -रुद्र-गौरी संवाद में- मार्ग-मार्ग पर सन्तान इत्यादि नाम के ऐसे कल्पवृक्ष शोभायमान हैं, जो रात्रि में कोटिचंद्र किरणों (पूर्णिमा के कोटिचंद्र) का उज्ज्वल प्रकाश देते हैं। रात्रि समाप्त होने पर ये कान्तिवाले श्रेष्ठ वृक्ष ऐसे लगते हैं जैसे सिंधू की तरह फैले हुए हों, सूर्य की कांति से उज्ज्वल, रत्नमय अंगवाले हों, जिनमें सुवर्ण में बिठाये हुए रत्नों के दर्पण लगे हों। वृंदावन के कल्पवृक्ष जिस समय जिस फल-फूल की इच्छा करें, उस समय वैसे ही फल-फूल देते हैं ।।९४७-९४८।।

अर्थश्च-

हे अधरमधुवचः- अधरमधुतुल्यानि सुवचांसि यस्यास्तथाभूते गौरि। तत्र श्रीवृंदावने रत्नांगानां सन्तानकानां मध्ये एके द्रुमेन्द्राः राकेन्दुकोट्या उपविशद कराः। हे वामे तेषु सुसन्तानकेषु एके रात्रेर्विरामे समुदिततपना भान्ति (द्योति), सिंधूपमेयाः कमन्ते विराजन्ते तेभ्यस्तानप्यतिक्रम्य एके, कमन्ते। कथंभूताः-
सुवर्णाचितमुकुररुचः इव। तत्र च यदा यत् कुसुमं मृग्यं भवति फलं वा, तत्तदेव वृंदावनेषु सुरद्रुमा एव प्रसूयन्ते।

एवं नारदपंचरात्रे च श्रुतिविद्यासंवादे-

अहो वृंदावनं तत्र केलिवृंदावनानि च।
वृक्षाः कल्पद्रुमाश्चैव चिन्तामणिमयीः स्थली ।।९४९।।
क्रीड़ाविहंगलक्षं च सुरभीनामनेकशः।
नानाचित्र विचित्र श्रीरासमण्डलभूमयः ।।९५०।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

केलिकुंजनिकुंजानि नानासौख्य स्थलानि च।
प्राचीरछत्र रत्नानि फणाः शेषस्य भान्त्य हो ।।९५१।।
यच्छिरोरत्नवृंदानामतुल्यद्युति वैभवम्।
ब्रह्मैव राजते तत्र रूपं को वक्तुमर्हति। इति ।।९५२।।
एवं च प्रपंचाप्रपंचयोर्द्वयोरपि लीलयोः सविशेषयोरेव नित्यत्वम् व्यवस्थापितम्।

इति श्रीकृष्णरस संगीत संग्रह इत्यादि तत्करणफलभूत
तदुदाहरण रूप व्रजलीलारसादि दिक् संदर्शनतः
नित्यत्वस्थापनं नाम षष्ठं प्रकरणम्।।

अर्थ- अधरमधुवचः= यह शंकर-पार्वती को संबोधन है। जिसके वचन अधरामृत के समान ही मधुर लगते हैं। वहाँ वृंदावन में रत्नमय सन्तानवृक्ष हैं। उनके बीच कुछ वृक्ष पूर्णिमा के कोटिचंद्रों की धवल किरणों की तरह प्रकाशमान हैं। हे वामे! हे सुंदरी! उनमें कुछ वृक्ष रात्रि समाप्त होने पर सूर्योदय की किरणों की तरह चमकते हैं और सागर सम विशाल रूप में शोभायमान हैं। कुछ उनसे भी बढकर हैं। सुवर्ण की चौखट में बिठाये हुए दर्पण की कान्ति की तरह चमकते हैं।

इसी प्रकार का वर्णन नारद पंचरात्र में श्रुति-विद्या संवाद में है- वृंदावन अतीव आश्चर्यजनक है। उसमें क्रीड़ाविहार के बहुत से वन बने हुए हैं। सब वृक्ष कल्पवृक्ष ही हैं। वहाँ की नैसर्गिक भूमि चिन्तामणियों से भरी हुई है ।।९४९।।

खेलनेवाले लाखों पक्षी हैं। अनेक कामधेनु वहाँ विराजमान हैं। रासमण्डल की चित्र-विचित्र रंगों की भूमियाँ बनी हुई हैं ।।९५०।।

क्रीड़ा के लिए सुंदर लतागृह बने हुए हैं और ऐसे स्थल भी बने हुए हैं, जहाँ नाना सुखों का अनुभव हो। तटों पर छत्र हैं, उन पर बिठाये हुए रत्न शेष-फणाओं के रत्नों की भाँति शोभायमान हैं ।।९५१।।

शेष के सिर के रत्न समूह की कान्ति का वैभव ही अनुपम है, फिर वहाँ का क्या वर्णन करना! वहाँ साक्षात् परब्रह्म ही विराजमान हैं। उनके रूप का वर्णन कौन कर सकता है ।।९५२।।

इसी प्रकार प्रपंचलीला और अप्रापंचिक लीला दोनों विशेष गुणधर्मों से युक्त होने पर भी नित्य (अविनाशी) है, यह सिद्ध हुआ।

इस प्रकार श्रीकृष्णरस संगीत संग्रह का, उसके करण, फल और
उदाहरणस्वरूप व्रजलीलारसादि का दिग्दर्शन करानेवाला और
उनका नित्यत्व कहनेवाला षष्ठ प्रकरण समाप्त हुआ।।

— इति शम् —

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

— सप्तमं प्रकरणम् —

वेदे रामायणे चैव पुराणे भारते तथा।
आदौ चान्ते च मध्ये च हरिः सर्वत्र गीयते ।।९५३।।

इति स्मरणात् अन्ते यथाक्रमं लीलागुणनामकीर्तनरूप—
मंगलमारब्धं श्रीगुरुं वन्दते । यथा—
श्रीराधिकामाधवयोरपारमाधुर्यलीलागुणरूपनाम्नां।
प्रतिक्षणास्वादन लोलुपस्य वन्दे गुरोः। श्रीचरणारविन्दम् ।।९५४।।
प्रवन्धगानस्योदाहरणत्वेन श्रीकृष्ण लीला सम्पच्छिरोमणि
रासविहारसंग्रहे लिख्यते।

वेद, रामायण, पुराण महाभारत इत्यादि में आरंभ में, मध्य में और अंत में सर्वत्र श्रीहरि का गान किया जाता है ।।९५३।।

इस स्मृति के अनुसार अंत में क्रम से लीला, गुण, नाम कीर्तन रूप मंगल कहने के लिए पहले श्रीगुरु का वंदन करते हैं।

यथा-श्रीराधा माधव के अनंत लीला गुण रूप नाम इत्यादि का माधुर्य अपार है, ऐसे वर्णन का प्रत्येक क्षण आस्वाद लेने के उत्सुक गुरु के चरणकमल को मैं वंदन करता हूँ ।।९५४।।

प्रबंधगान के उदाहरणस्वरूप श्रीकृष्णलीला का सर्वश्रेष्ठ रास विहार संग्रह लिखते हैं।

अथ रासः

रासोल्लासतन्त्रे —
एकैकगोपिकापार्श्वे हरेरेकैक विग्रहः।
सुवर्णगुटिका युग्मे मध्ये मरकतो यथा।।९५५।।
हेमकल्पलता गोपिर्बाहुभिः कण्ठमालया।
तमालश्यामलः कृष्णो घूर्णते रास लीलया।।९५६।।
किंकिणी नूपुरादीनां भूषणानां च शिंजते।
माधवो राधया सार्धं गोपीभिःसह मोदते ।।९५७।।
राधाकृष्णेति संगीतं गोप्यो गायन्ति सुस्वरम्।
राधाकृष्णो नरीनर्त्ति हस्तकानुपदक्रमैः।।९५८।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उज्ज्वल नीलमणौ च –
हरिर्नवघनाकृतिः प्रतिवधूद्वयं मध्यतः।
पदं सविलसद्भुजो, भ्रमति चित्रमेकोऽप्यसौ।।
वधूश्च तड़िदुज्ज्वला प्रतिहरिद्वयं मध्यतः।
सखी धृतकराम्बुजा नटति पश्य रासोत्सवे।।९५९।।

अब रास का वर्णन करते हैं – रासोल्लास तन्त्र से – एक-एक गोपी के पार्श्व में श्रीहरि का एक – एक शरीर है। यह शोभा ऐसी लग रही है मानो सोने की दो गुटिकाओं के बीच में मरकत मणि बिठायी गयी हो।।९५५।।

गोपियाँ सोने की कल्पलताओं की तरह हैं, वे अपने बाहुओं से कृष्ण के गले में मालाओं की तरह आलिंगन देती हैं। कृष्ण तमालवृक्ष की तरह श्याम वर्ण हैं। वह रासलीला में घूम रहा है ।।९५६।।

किंकिणी (क्षुद्र घण्टिका) और भूषणों के नूपुरों की मधुर ध्वनि से पूरित उस स्थल पर श्रीकृष्ण राधा और गोपियों के साथ विराजमान हैं।।९५७।।

गोपियाँ मधुर स्वर में राधाकृष्ण नाम का गान कर रही हैं और राधा सहित कृष्ण नृत्य कर रहें है। उसमें हस्तों के अभिनय के साथ पदनिक्षेप भी सुन्दर हो रहा है ।।९५८।।

उज्ज्वल नीलमणि में – श्रीकृष्ण नवीन मेघ की तरह नीलवर्ण हैं। वह अकेला होते हुए भी दो- दो गोपियों के बीच सुन्दर विलासयुक्त हस्ताभिनय और पदनिक्षेप दिखाता हुआ घूम रहा है। बिजली की तरह कान्तिशालिनी गोपवधू भी दो-दो कृष्ण के बीच सखी का करकमल हाथ में लेकर रासोत्सव में नृत्य कर रही है ।।९५९।।

गीतावल्यां च – धनाश्री –
कोमलशशिकररम्यवनान्तरनिर्मितगीत विलास।
तूर्ण समागतबल्लवयौवत वीक्षणकृतपरिहास।
जय जय भानुसुतातटरंगमहानटसुन्दर नन्दकुमार।
शरदंगीकृत दिव्य रसावृत मंगल रास विहार ।।ध्रु.।।
गोपीचुम्बितरागकरम्बितमानविलोकन लीन।
गुणगर्वोन्नित राधासंगत सौहृद सम्पदधीन।
तद्वचनामृतपानमदाहृत वलयीकृत परिवार।
सुरतरुणीगणमति विक्षोभण खेलनबलिगतहार।
अम्बुविगाहन नन्दित निजतनु(जन)मण्डित यमुनातीर।
सुखसंविद्घन पूर्णसनातन निर्मलनील शरीर।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अष्टादश छन्दः सु च –
परिस्फुरति सुन्दरं चरितमत्र लक्ष्मीपतेः।
तथाभुवननन्दिनस्तदवतार वृन्दस्य च।।
हरेरपि चमत्कृति प्रकर वर्द्धनः किं न मे ।
विभर्ति हृदि विस्मयं कमपि रास लीला रसः ।।९६०।।

गीतावली में इस प्रकार वर्णन है – धनाश्री राग में – हे सुन्दर नन्दकुमार! कोमल चन्द्र की किरणें फैल रही हैं वन का प्रदेश रमणीय भासता है। उसमें तुम गीत गाकर अनेक विलास प्रकट कर रहे हो। गीत सुनते ही आयीं तरुण गोपस्त्रियाँ तुम्हें देख रही हैं और तुम भी अनेक हासविलासादि विनोद करते हो। सूर्यनन्दिनी यमुना के तीर रूपी रंगमंच पर नर्तन करने वाले तुम महानट हो। शरद् ऋतु के प्रभाव से भूमि दिव्य तेज से चमक रही है। उस सुन्दर शोभा में मंगल रासक्रीड़ा करने वाले हे भगवन्! तुम्हारी जयजयकार है। तुम्हारा वह प्रसिद्ध वचनामृत पान करके उत्पन्न होने वाले मद से आकृष्ट पूरा परिवार वर्तुलाकार है, ऐसे तुम हो। देवों की तरुण स्त्रियों का समुदाय भी देखकर चकित हो गया, उनकी मति दंग रह गयी। खेलते समय उनके शरीर पर हारों का वलय निर्मित हो गया है। तुमने यमुना के पानी में अवगाहन किया और उससे आनंदित शरीर से यमुना का तीर सुभूषित किया है। ऐसे हे चिन्मयानन्द रूप, नित्यस्वरूप, परिपूर्ण, निर्मल और नीलवर्ण शरीर धारण करनेवाले श्रीकृष्ण! तुम्हारी जयजयकार है।

अष्टादश छन्द – यहाँ लक्ष्मीपति भगवान् का चरित्र शोभा दे रहा है । उसके भिन्न – भिन्न अवतार (मूर्तियाँ) शोभा दे रहे हैं। श्रीहरि के चमत्कार का पूर निर्माण करने वाला रासलीला रास मेरे मन में अनिर्वचनीय आनन्द की सृष्टि क्यों न करे ।।९६०।।

शारदविधुवीक्षणमधुवर्द्धितमदपूर।
इष्टभजन वल्लभजन चित्तकमलसूर।
इत्यादि ललितभृंगच्छन्दसा वर्णितस्तवान्ते।
संघृतनय नन्दतनय सुन्दरजयवीर।
यामुनतटमण्डलनट रासरचन धीर।
पापिनिमयि दुर्गतिजयिपादभजनलेश।
धेहि करुणदृष्टिमरुणलोचन निखिलेश।
रम्भोरुनिकुरम्बनिर्भरपरीरम्भेण लब्धद्युतेः।
विभ्राणस्य तड़ित् कदम्ब विलसत् कादम्बिनी विभ्रमम्।
क्रीड़ाडम्बरधूतजम्भमथनस्तम्भेरमोरुश्रियो।
रासारम्भरसार्थिनस्तव विभोवन्दे पदाम्भोरुहम्।।९६१।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्यत्र च तैरेव वर्णितौऽस्ति यथा –
शारदशशधरवीक्षण हृष्टः। परमविलासालिभिरभिमृष्टः।
बल्लवरमणी मण्डलभाव–प्रोल्लासककलमुरलीरावः।।९६२।।

शरद ऋतु के चन्द्रमा को देखने और मद्य से जिसने मद (आनन्द विशेष) का पूर निर्भित किया है, जिन्हें भजन ही अच्छा लगते हैं, ऐसे जो उसके प्रिय व्यक्ति हैं, उनके अन्तःकरण रूपी कमल को खिलाने वाले हे सूर्य! इस प्रकार ललितभृंग छन्द से स्तुति करने के बाद,

नीति धारण करने वाले, हे नन्द के पुत्र, तुम सुन्दर हो, तुम वीर हो, तुम्हारी जय है। यमुना तीर की रंगभूमि के तुम नट हो, रासक्रीडा में परम चतुर हो। जिसके चरणकमल के भजन का एक लेश भी दुर्गति से उद्धार करता है, ऐसे हे कृष्ण! पापरूप मेरे ऊपर दया से भरी हुई कृपादृष्टि करो। तुम्हारे नेत्र अरुण (लाल) रंग के हैं, तुम ही सबके स्वामी हो।

हे सर्व व्यापक कृष्ण! कदली स्तम्भ की तरह जिनके ऊरु हैं, ऐसी स्त्रियों को गाढ़ आलिंगन देकर जिनकी शोभा बढी हुई है; बिजली के समूह के बीच मेघमाला की तरह जो गोपियों के बीच में विराजमान है, खेल के मिष ही जिसने असुरों का मंथन किया है, जिसकी शोभा उन्मत्त हाथी की तरह है, जिसे रासक्रीड़ा के आरम्भ में ही सतत आनन्द मिलता है, ऐसे हे कृष्ण ! तुम्हारे चरणकमल को मैं वन्दन करता हूँ।।९६१।।

अन्यत्र उन्होंने ही वर्णन किया है – शरद् ऋतु के चन्द्र को देखकर जो आनन्दित है, परम विलासशील सखियों ने जिसे आलिंगन दिया है, मधुर मरली की ध्वनि से जिसने गोपस्त्री समूह के अन्तःकरण को उल्लसित किया है, ऐसे तुम हो ।।९६२।।

अथ सकलाभिर्मद विकलाभिर्निशि परिभूयःस्वजनान् भूयः।
अभिरुवतीभिर्नवयुवतीभिर्विहितोऽंगे.(द्दे) शः सुन्दर वेशः।।९६३।।
मिलितमृगाक्षीवांछितसाक्षी कृतपरिहासः स्फीतविलासः।
तदमलवाणीनिशितकृपाणी दलितनिकारः कलित विकारः।।९६४।।
प्रमदोत्तरलित बल्लवनारी मुखचुम्बन परिरम्भणकारी।
उन्नतमनसां सुदृशां मानतः कलितान्तर्दधानः।।९६५।।
अनुकृतचरितः पुलिने परितः तरुषु च पृष्टः क्वापि न दृष्टः।
युवति चमूभिस्त्वरितममूभिर्मुहुरनुगीतः कुतुकपरीतः ।।९६६।।
काकुभिराभिः प्रार्थितसंगः प्रकटितमूर्तिर्धृतरतिरंगः।
किमपि निगूढरुषा परिपृष्टः कलितोत्तरविधिरलमुपविष्टः।।९६७।।
करुणाशीलः खण्डितपीलः स्तबकितलीलः कुवलयनीलः।
धृतमृदुहासः प्रेमविलासः तततनुवासः कल्पितरासः ।।९६८।।
अथ परिकल्पित मण्डलबन्धः कुसुमशरासन विभ्रम कन्दः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मद से विकल हुई गोकुल की सब नव तरुण स्त्रियों ने अपने – अपने आप्त परिवार को पराभूत कर (फंसाकर) मंजुल शब्द करती हुईं सुन्दर वेशधारी भगवान् कृष्ण को अपने अंगों का स्वामी बनाया ।।९६३।।

एकत्र मृगनेत्रा स्त्रियों की इच्छा का साक्षी, हास्य विनोद करने वाला, अनेक विलासों को फैलाने वाला है, जिसने अपने निर्मलवाणी रूप खंग से सब दोष और अपमानादि नष्ट किये हैं और मन में प्रेमविकार उत्पन्न किया है।।९६४।।

काममद से चंचल गोकुल स्त्रियों के मुख का चुम्बन लेकर उनको आलिंगन देने वाले, ऊँचे भाव और मन की सुन्दर स्त्रियों के अभिमान को देखकर बीच ही में अन्तर्धान (गुप्त) होने वाले के विरह से उनका अनुकरण कर मन को रिझाने वाली स्त्रियों ने यमुना तीर पर खोजने पर भी न दिखायी देने वाले का जब पेड़ों को पुछने पर भी पता नहीं चलता, तब जल्दी में बार–बार उनका गुण गाना आरम्भ कर दिया, जिससे भगवान् के मन में कुतुहल जाग्रत हुआ।।९६५–९६६।।

फिर उन गोपियों ने काकुवक्रोक्ति(अलंकार का नाम) से मानो कृष्ण की संगति की इच्छा प्रदर्शित की। उसके बाद भगवान् प्रकट हुए और उन्होंने रतिरंग से भरे विलास प्रकट किये। गोपियों ने गुप्त रोष से कुछ विलक्षण प्रश्न किये। फिर भगवान् ने उत्तर दे कर समझाया, और पूर्ण समाधान होने तक वे वहाँ बैठ गये।।९६७।।

भगवान दयामय हैं, गर्व को तोड़नेवाले हैं, सुन्दर लीलाएं करने वाले हैं, नीलकमल की तरह नीलवर्ण हैं, कोमल हास्य करनेवाले है, प्रेम विलास में मग्न हैं, शरीर पर विशाल वस्त्र धारण किये हुए हैं, रास करने वाले हैं, मण्डलाकार रचना कर मदन के अनेक विलासों को एकरूप में प्रदर्शित करने वाले हैं।।९६८।।

युवति युगयुगसुभगस्कन्धन्यस्तलसद्भुजदण्डद्वन्द्वः।।९६९।।
अलिपरिगीते मारुतशीते वरसंगीते भुवनातीते।
भूषणतारध्वनिपरिसारक्रान्तवनान्ते शशिरुचिकान्ते।।९७०।।
मध्यगमध्यगमघुपविराजिस्फुट चम्पक तति विभ्रमभाजि।
रासे कृतरचिरन्तः स्थायी वेणुमुखाधरवल्लवदायी।।९७१।।
स्तम्भित राकापति रविकारानपि सुरदारान् मदयन् नादात्।
कुतुकाकृष्टश्चिरमभिवृष्टः सपदि विलूनैः सुनतरुसूनैः।।९७२।।
अथ कल्पीकृतरजनिविहारी स्वःस्थ सुरासुर विस्मयकारी।
निज निज निकट स्थिति विज्ञान प्रमुदित रमणी कृत सम्मानः।।९७३।।
निज दृक् भंगी क्षुभितकुरंगी नयनामण्डल गुरुकुचलंघी(संगी)
केलिविलोलः प्रचल निचोलः स्वेदजलांकुर चारुकपोलः ।।९७४।।
कुमुदयुतायां तरणिसुतायां सलिल विनोदः प्रबलित मोदः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दो-दो तरुणियों के सुन्दर स्कन्धों पर अपने अतिशोभायमान भुजदण्ड रखे हुए है ।।९६९।।

भँवरों का गुंजन चारों ओर है, ठण्डी हवा बह रही है, त्रिभुवन में अपूर्व संगीत चालू है। चन्द्रमा की किरणों की कोमल कान्ति सर्वत्र विराजमान है और आभूषणों की तारध्वनि वन प्रदेश के पार गयी है।।९७०।।

फूले हुए सुवर्ण चम्पकों की माला के बीच-बीच में भँवरे बैठने से जैसी शोभा दिखायी देती है, वैसे ही युवतियों के बीच भगवान् कृष्ण सुशोभित हैं। रास में जिनका मन लगा हुआ है वे रास के बीच में स्थित हैं। मुरली का मुख उन्होंने अपने अधरोष्ठ से सुशोभित किया है।।९७१।।

विलक्षण नर्तन और गीतनाद से जिसने पूर्णिमा के चन्द्र का चलना भी रोक दिया है, वह स्तब्ध खड़ा है; निर्विकार देवस्त्रियों को भी मधुर नाद से उन्मत्त कर रहा है, देव नये फूले हुए कल्पवृक्ष के फुलों की वर्षा कर रहे हें।।९७२।।

जिसने रात्रि को एक कल्प जितनी लम्बी बनायी है और उसमें वह रास – विहार कर रहा है, उसे देखकर स्वर्ग के देव – दैत्य भी आश्चर्यचकित हुए हैं। प्रत्येक स्त्री को ऐसा साक्षात्कार हो रहा है कि श्रीकृष्ण उसके पास है, इससे वे सुन्दर स्त्रियाँ आनन्दित हो कर उसका सत्कार कर रही हैं।।९७३।।

श्रीकृष्ण के दृष्टिविभ्रम (विलास) से उन्मत्त हुई हरिणनेत्रा गोपियों के मण्डलाकार स्तन युग्म को जो अपने हस्त से सुशोभित कर रहा है। रासक्रीड़ा में चंचलचित्त है; शरीर का उत्तरीय वस्त्र हिल रहा है, घर्म(पसीना) कणिकाओं से जिसके गाल सुन्दर दिखायी दे रहे हैं।।९७४।।

सूर्यकन्यका यमुना रात्रिविकासी कमलों से भरी है, उसके पानी में वह खेल रहा है, उससे आनन्द बढ रहा है।

युवतिनिकाय प्रेक्षितकायः शिथिलितमानः पुलककरालः।।९७५।।
अथ वनमाली वर विपिनाली कुंजनिकेतन वीक्षणशाली।
जयति विहारी निशिमणिहारी व्रजतरुणीगणमानसहारी।।९७६।।
नतजनबन्धो जयरससिन्धो वदनोल्लसित श्रमजलबिन्दो।
त्वमखिल देवावलिकृत सेवा सन्ततिरथमा वयमिह के वा।।९७७।।
जयजय कुण्डलयुगरुचिमण्डलवृतगण्डस्थल दमिताखण्डल।
धृतगोवर्धन गोकुलवर्द्धन देहि रतिं मे त्वयि मुरमर्दन। इति।।९७८।।

पद्यावल्यां च–

लक्ष्मी (लक्ष्मीं) मध्यगतेन रासवलये विस्तारयन् नात्मना।
कस्तूरीसुरभिर्विलासमुरली विन्यस्तवक्त्रेन्दुना।।
क्रीड़ा ताण्डवमण्डलेन मरितो दृष्टेन तुष्यद् दृशा।
त्वां हल्लीसक शंकु संकुलपदो पायाद् विहारी हरिः।।९७९।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तरुण गोपीगण उसके शरीर को देख रहे हैं, जिसने अभिमान शिथिल किया है; अंग पर रोमांच खड़े हो रहे हैं, उससे वह विलक्षण दिख रहा है।।१७५।।

वनमाला धारण करने वाला कृष्ण सुन्दर अरण्यों के लतागृह देख रहा है। ऐसे विहारशील भगवान् उस रात्रि में रत्न की तरह प्रेक्षणीय गोकुल-युवतियों के समूह का अन्तःकरण अपनी ओर आकृष्ट करने वाला,।।१७६।।

नम्रलोगों का कल्याणकारी बान्धव, रस का सागर, मुख पर परिश्रम से आये हुए जलबिन्दुओं से सुशोभित हे देव श्रीकृष्ण ! तुम्हारी जय है अथवा सर्वदेवों के संघ तुम्हारी सेवा करते हैं, ऐसी दशा में हम लोग कौन होते है, हम गिनती में भी नहीं।।१७७।।

हे इन्द्र का दमन करने वाले भगवान्, दोनों कुण्डलों के कान्तिमण्डल से जिसका कपोलभाग व्याप्त है, तुम्हारी जयजयकार है। गोवर्धन धारण करनेवाले हे भगवान्, गोकुल का उत्कर्ष करने वाले कृष्ण! मुर नामक असुर को मारने वाले मुरारी, मेरे मन में तुम्हारी ही अभिरुचि पैदा करो।।१७८।।

पद्यावली में – रासमण्डल में स्वयं मध्य में विराजमान होकर शोभा बढाने वाला, जिसने कस्तूरी से सुगन्धित मुक्चन्द्र में विलासपूर्वक मुरली धारण की है, ताण्डव नृत्य खेलने वाले असमन्तात् खड़े हुए मण्डल ने सन्तोषपूर्ण दृष्टि से जिसे देखा है, जिसके पदविक्षेप हल्लीसक नृत्य के शंकुओं की तरह हैं, ऐसे विहारशील हरि तुम्हारी रक्षा करें।।१७९।।

अलंकार कौस्तुभे च –

वृन्दावने चन्दनवातशीते। सचन्द्रिकायां निशिसुन्दरीभिः।
कलिन्दकन्यापुलिनेऽति रम्ये। स रासलास्योत्सव माततान।।१८०।।
काचिद्वीणां मुरजमपरा कापि वंशीं दधाना।
काचित्तालं करकिसलये तालधारित्वमाप्ता।।
चक्रे संगीतकविरचनां रासभासाद्य काचित्।
रागं नानास्वरपरिमला मोदमाविश्चकार ।।१८१।।
अथास्य रासोत्सवस्य बीजरूपाणि श्रीभागवतपद्यानि कतिचिल्लिख्यन्त्ते।
रासोत्सवः सम्प्रवृत्तो गोपीमण्डलमण्डितः
योगेश्वरेण कृष्णेन तासां मध्ये द्वयोर्द्वयोः ।।१८२।।
प्रविष्टेन गृहीतानां कण्ठे स्वनिकटं स्त्रियः।
यं मन्येरन् नभस्तावद्विमानशत संकुलम् ।।१८३।।

कौस्तुभ में इस प्रकार है – चन्दन के तरुओं पर से आया हुआ अतिशीतल सुगन्धित पवन जहाँ बह रहा है, ऐसे वृन्दावन में, चन्द्रकिरणों से प्रकाशमय रात्रि में, कलिन्द पर्वत से निकली

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हुई यमुना के तीर पर, अति रमणीय स्थान पर, सुन्दर स्त्रियों के साथ उसने नृत्य का उत्सव आरम्भ किया ।।१८०।।

कोई वीणा, कोई मृदंग, कोई मुरली, कोई ताल, इस प्रकार चतुर्विध वाद्य अपने करपल्लवों में धारण कर स्त्रियाँ तैयार होने पर किसी ने रास में आकर ऐसी संगीत-रचना प्रदर्शित करनी शुरू की, जिसमें विविध स्वरों से समन्वित राग का आनन्द है।।१८१।।

इस रास के मूल प्रमाणभूत भागवत के कुछ पद्य लिखते हैं। –

योगेश्वर भगवान कृष्ण ने गोपीमण्डल के बीच रासोत्सव आरम्भ किया और दो–दो के बीच में स्वयं प्रविष्ट होकर स्त्रियों को कण्ठ में ग्रहण कर अपने पास लिया। प्रत्येक स्त्री ऐसा अनुभव करने लगी कि कृष्ण उसके पास है। इतने में आकाश सैकड़ों विमानों से भर गया ।।१८२-१८३।।

दिवौकसां सदाराणारामौत्सुक्यापहृतात्मनाम्।
ततो दुन्दुभयो नेदुनिपेतुः पुष्पवृष्टयः।।१८४।।
जगुर्गन्धर्वपतयः सस्त्रीकास्तद्यशोऽमलम्।
वलयानां नूपुराणां किंकिणीनां च योषिताम्।।१८५।।
स प्रियाणामभूच्छब्दस्तुमुलो रासमण्डले।
तत्रातिशुशुभे ताभिर्भगवान् देवकी सुतः।।१८६।।
मध्ये मणीनां हैमानां महामरकतो यथा।
पादन्यासैर्भुजविधुतिभिः सस्मितैर्भ्रूविलासैः।।१८७।।
भज्यन्मध्यैश्चलकुचपटैः कुण्डलैर्गण्डलोलैः।
स्विद्यन्मुख्यः कबररशनाग्रन्थयः कृष्णवध्वो।।१८८।।
गायन्त्यस्तं तड़ित इव ता मेघचक्रे विरेजुः।
उच्चैर्जगुर्नृत्यमाना रक्तकण्ठ्यो रतिप्रियाः।।१८९।।
कृष्णाभिमर्शमुदिता यद्गीतेनेदमावृतम्।

उन विमानों में देव अपनी–अपनी स्त्रियों के साथ अति उत्सुकता से देखने के लिए आये थे। उनमें दुन्दुभियाँ बजने लगीं और फूलों की वृष्टि होने लगी।।१८४।।

गन्धर्वों के मुख्य स्वामी अपनी–अपनी स्त्रियों के साथ भगवान् का निर्मल यश गाने लगे। वहाँ रासमण्डल में स्त्रियों के कंकणों, नुपूरों और इतर आभूषणों का शब्द होने लगा, इन सबके मिल जाने पर बड़ा व्यापक शब्द हुआ। देवकीनन्दन भगवान् उन गोपियों के साथ अति शोभायमान हुए।।१८५–१८६।।

सुवर्ण की मणियों के बीच जिस प्रकार महामरकतमणि(पाचमणि) सुशोभित होती है, उसी प्रकार श्रीकृष्ण सुशोभित हुए।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नर्तन के समय चरण रखने के अभिनय, हस्तों के फेंकने, हास्ययुक्त भ्रुकुटी के अभिनय, कटिप्रदेश जैसे टूट रहा हो इस तरह के अभिनय से उन गोपिकाओं के स्तन के वस्त्र हिल रहे हैं, गालों के कुण्डल चंचलता दिखा रहे हैं, मुख पर पसीना आ गया है, वेणी और कांची की गांठ चलित हुई है। इस प्रकार मेघमण्डल में बिजली की तरह वे सुशोभित हुईं और गाते – गाते श्रीकृष्ण के आसमन्तात् रहीं। रति प्रय वे गोपिकाएं मधुर कण्ठ से और ऊँचे स्वर में गीत गाने लगीं और नाचती हुई श्रीकृष्ण के स्पर्श से आनन्दित हुईं। सभी गोपियों ने उस स्थल को मानो गाने से आवृत कर दिया, भर दिया।।९८७,९८८,९८९।।

क्वचित्(काचित्) समं मुकुन्देन स्वरजातीरमिश्रिताः।।९९०।।
उन्निन्ये पूजितास्तेन(पूजिता तेन) प्रीयता साधु साध्विति।
तदेव ध्रुवमुन्निन्ये तस्यै मानं च बह्वदात्।।९९१।।
काचिद्रासपरिश्रान्ता पार्श्वस्थस्य गदाभृतः।
जग्राह बाहुना स्कन्धं श्लथद्वलय मल्लिका।।९९२।।
तत्रैका संगतं बाहुं कृष्णस्योत्पल सौरभम्।
चन्दनालिप्तमाघ्राय हृष्टरोमा चुचुम्ब ह।।९९३।।
कस्याश्चिन्नाट्यविक्षिप्त कुण्डलत्विषमण्डितम्।
गण्डं गण्डे संदधत्याः अदात्ताम्बूल चर्वितम्।।९९४।।
नृत्यन्ती गायती काचित् कूजन्नूपुरमेखला।
पार्श्वस्थाच्युत हस्ताब्जं श्रान्ताधात् स्तनयोः शिवम्।।९९५।।
गोप्यो लब्ध्वाच्युतं कान्तं श्रिय एकान्तवल्लभम्।
गृहीतकण्ठ्यस्तद्दोर्भ्यां गायन्त्यस्तं विजन्हिरे।।९९६।।

कोई गोपी श्रीकृष्ण के साथ अमिश्रित शुद्ध स्वरजातियाँ गाने लगी, कृष्ण प्रसन्न होकर उसका सत्कार कर उसे साधुवाद देता था। कृष्ण भी उसी को पुनः गाकर उसका बड़ा सम्मान करता था।।९९० – ९९१।।

कोई गोपी रासक्रीड़ा करते-करते थक गयी है और पास में खड़े भगवान् कृष्ण का स्कन्ध अपने हाथ में पकड़ लिया, उसके हाथ से कंकण और केशों से पुष्प गिर गए।।९९२।।

किसी गोपी ने कृष्ण के कमल की तरह सुगन्धित बाहु का, जो उसके हाथ में था और जिस पर चन्दन का लेप था, चुम्बन लिया और रोमांचित हुई तथा उसका अवघ्राण किया।।९९३।।

किसी गोपी का कुण्डल नर्तन के समय क्षिप्त-सा हो रहा था और उसकी कान्ति उसके गालों पर पड़ रही थी। वह प्रेम से अपना गाल श्रीकृष्ण के गाल पर रखती थी, उस समय श्रीकृष्ण ने अपना चर्बण किया हुआ ताम्बूल उसके मुख में दे दिया।।९९४।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नाचते–गाते समय जिसके नूपुर और मेखला की झंकार सुनायी दे रही थी, ऐसी गोपी ने अपने पास में खड़े श्रीकृष्ण के करकमल को पकड़कर अपने स्तन पर रखा, क्योंकि वह परिश्रम से क्लान्त थी और, वह हाथ अत्यन्त कल्याणरूप था॥१९५॥

लक्ष्मी एकान्त में विलास करने वाले श्रीकृष्ण के मिलने से अत्यन्त आनन्दित हुईं। उनके हाथ से लक्ष्मी का कण्ठ धारण किया हुआ था। वह उसी का गान कर उसके साथ विहार करने लगीं॥१९६॥

कर्णोत्पलालक विटंककपोलघर्मवक्त्रश्रियो वलय नूपुरघोषवाद्यैः।
गोप्यः समं भगवता ननृतुः स्वकेशस्रस्तस्रजो भ्रमरगायक रासगोष्ठ्याम्।।१९७।।
(इतः परे पंच श्लोका न गृहीताः, ततः)
गोप्य स्फुरत्पुरटकुण्डलकुन्तलत्विड्गण्डश्रियासुधित हासनिरीक्षणेन।
मानं दधत्य ऋषभस्य जगुः कृतानि पुण्यानितत्कररुह स्पर्श प्रमोदाः। इति।।१९८।।

श्रीगोविन्दलीलामृते च–
गीतं वाद्यं च नृत्यं विधिशिवरचितं यच्च वैकुण्ठ लोके।
यल्लक्ष्मीकान्त लक्ष्मीचयन रचितां(तुं) स्वेन यद्यत् प्रणीतम्।
अन्यागम्यं सदाभिर्व्रजवरललना नर्तकीभिश्च सृष्टम्।।
रासे कृष्णस्तदेतन्मुहुरिह कुतुकी सर्वमाभिर्व्यतानीत्।।१९९।।

जिनके कान में कमल हैं, जो भूषण धारण किये हुए है, जिनके गण्डस्थल पर पसीने के बिन्दु हैं, केशों से जिनकी मालाएं गिर रही हैं, ऐसी विलक्षण शोभा वाली और मुखश्रीवाली गोपियां कंकण एवं नूपुरों की झंकार तथा वाद्यों की ध्वनि के साथ रासगोष्ठी में श्रीकृष्ण के साथ नाचती थीं॥१९७॥

गोपियाँ चमकते हए कर्णभूषण कुण्डलादि, केशों की कान्ति और गालों के तेज से सुशोभित भगवान् श्रीकृष्ण को तृप्तिपूर्वक हास्य करती हुई देखती हैं और अपने में मानबुद्धि कर उनके स्पर्श(नखों के स्पर्श) से प्रमुदित होकर उनके पुण्यकारक चरित्र गाती हैं॥१९८॥

गोविन्दलीलामृत में है – जिस गीत, वाद्य और नृत्य की ब्रह्मदेव और शंकर ने सृष्टि की, वह वैकुण्ठ लोक में प्रसिद्ध था। भगवान् लक्ष्मीपति ने लक्ष्मी के मनोरंजन के लिए जो रचना की, वह अन्यों के लिए जानना अशक्य है। यहाँ गोकुल की श्रेष्ठ स्त्रियों ने जिसकी सृष्टि की, उसका प्रकट प्रदर्शन यहाँ रास में गायन–वादन–नर्तन का कुतुहल से कृष्ण ने गोपियों से कराया॥१९९॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीरासोल्लासतन्त्रागमे –

श्रीरूपगोस्वामिमते पूर्वपूर्वलीलाक्रमः श्रेष्ठः।
अन्येषां मते उत्तरोत्तरः।
विदग्धानां मिथो लीलाविलासेन यथासुखम्।
न तथा संप्रयोगेण स्यादेवं रसिका विदुः।।१०००।।
रासावतार विस्तारं वंशीवादन सुन्दरम्।
रतिकाममदाक्रान्तं राधाकृष्णं भजाम्यहम्।।१००१।।
भ्रमन्तं रासचक्रेण नृत्यन्तं तालशिंजतैः।
गोपीभिः सह गायन्तं राधाकृष्णं भजाम्यहम्।।१००२।।
रासमण्डलमध्यस्थं प्रफुल्लवदनाम्बुजम्।
अन्योन्य हृदयासक्तं राधाकृष्णं भजाम्यहम्।।१००३।।
विद्युद्गौरीघनश्यामं प्रेमालिंगन तत्परम्।
परस्परोरुमध्यांगं राधाकृष्णं भजाम्यहम्।।१००४।।
राधिकारूपिणं कृष्णं राधां माधवरूपिणीम्।
रास जोगानरागेण(जयानुरागेण) राधाकृष्णं भजाम्यहम्।।१००५।।

श्रीरूपगोस्वामी के मत से रासोल्लास तंत्र में जो वर्णन है, उसमें पूर्व–पूर्व लीलाक्रम श्रेष्ठ है। अन्य आचार्य ऐसा मानते हैं कि उत्तरोत्तर लीलाक्रम श्रेष्ठ हैं।

रसिकों का कहना है कि विद्वानों को आपस में लीला विलास से जैसा आनन्द आता है, वैसा प्रत्यक्ष संप्रयोग से नहीं आता।।१०००।।

रासलीला का विस्तार करने वाले, मुरली बजाने से अति मनोहर दिखने वाले, रति और काम के मद से आक्रान्त (मग्न) राधाकृष्ण का मैं भजन करता हूँ।।१००१।।

ताल और भूषणों की मधुर ध्वनियों के अनुसार रासमण्डल में गोपियों के साथ नर्तन और गायन करते हुए वर्तलाकार भ्रमण करने वाले राधाकृष्ण का मैं ध्यान - भजन करता हूँ।।१००२।।

रासमण्डल के मध्यभाग में विकसित कमल की तरह प्रसन्न मुखश्री धारण करने वाले और परस्पर हृदयासक्त, मन में संलग्न राधाकृष्ण की मैं सेवा करता हूँ।।१०००३।।

बिजली की तरह गौर (पीतारुण) वर्ण की राधा और मेघ की तरह नीलवर्ण कृष्ण परस्पर आलिंगन के लिए तत्पर हैं और एक–दूसरे के अंक पर शरीर रखा है, ऐसे राधाकृष्ण को मैं वन्दन, ध्यान, सेवा करता हूँ।।१००४।।

राधा का रूप कृष्ण ने धारण किया है और कृष्ण का रूप राधा ने, रासरंग में जिन्होंने उलटे रूप धारण किये है, ऐसे राधाकृष्ण की मैं भक्ति करता हूँ।।१००५।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पुष्पिते माधवीकुंजे तल्पशय्योपरिस्थितम्।
विपरीतरसासक्तं राधाकृष्णं भजाम्यहम्।।१००६।।
सुरतानन्द हिल्लोलं जगन्मोहन मोहनं।
पूर्णरास रसोद्बोधं राधाकृष्णं भजाम्यहम्।।१००७।।
रासक्रीड़ापरिक्रान्तं मधुपान परायणम्।
ताम्बूल मुखपूर्णेन्दुं राधाकृष्णं भजाम्यहम्।।१००८।।
रासोल्लास कलापूर्णं गोपीमण्डलभूषितम्।
श्रीराधिकाराधिकाख्यं कृष्णचन्द्रमुपास्महे।।१००९।।
श्रीराधाकृष्णदासोऽहं प्रार्थयेज्जन्म जन्मनि।
राधाकृष्ण सुधासिन्धु रासगंगांग संगमे।
अवगाह्य मनोहंसं विरहन्तं (मनोहंसो विहरेत)यथा सुखम्।।१०१०।।

अथो ज्ज्वललीलाक्रम:

ते तु संदर्शनं जल्प: स्पर्शनं वर्त्मरोधनम्।
रासवृन्दावनक्रीड़ा यमुनानादाम्बु(नद्यम्बु) केलय:।।१०११।।
नौ खेला लीलया चौर्यं घट्टकुंजातिलीनता।
मधुपानं वधूकेशधृति: कपटसुप्तता।।१०१२।।
द्यूतक्रीड़ा पटाकृष्टि: चुम्बाश्लेषौ नखापर्णम्।
बिम्बाधर सुधापान सम्प्रयोगादयो मता:।।१०१३।।

फूली हुई माधवलता के गृह में पुष्पशैया पर विराजमान और विपरीत रतिक्रीड़ा के मोह में आसक्त राधाकृष्ण की मैं भक्ति करता हूँ।।१००६।।

सुरतक्रीड़ा के आनंद में मग्न, जगत को मोहनेवाले मोहन और पूर्णरास में रस का बोध करानेवाले राधाकृष्ण का मैं भजन करता हूँ।।१००७।।

रासक्रीड़ा से परिश्रान्त होने के कारण मद्यपान में मग्न और पूर्णिमा के पूर्णचंद्र की तरह मुखश्री है एवं मुख में ताम्बूल है, ऐसे राधाकृष्ण की मैं सेवा करता हूँ।।१००८।।

रास की उत्साहपूर्ण कला से सुशोभित, गोपीमण्डल से शोभायमान, राधा से आराधित श्रीकृष्णचंद्र की मैं उपासना करता हूँ।।१००९।।

मेरी प्रार्थना है कि श्रीराधाकृष्ण लीलारूपी अमृत का सागर और रास रूपी गंगा का जहाँ संगम है, वहाँ मेरा मनोरूपी हंस सुख से विहार करे और स्नान करे, प्रत्येक जन्म में मुझे इसका लाभ मिले।।१०१०।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उज्ज्वललीलाक्रम इस प्रकार है- पहले आँख से देखना, फिर बोलना, फिर स्पर्श करना, फिर रास्ता रोककर खड़े रहना। वृंन्दावन में रासक्रीड़ा, यमुना नदी का पानी, उसकी ध्वनि, उससे खेलना, नौका में बैठकर खेल, लीला से चोरी, और यमुना के तीर पर लतागृह में लुकाछिपी, मदिरापान, स्त्री का केश पकड़ना, झूठी निद्रा का स्वांग करना, द्यूत खेलना, वस्त्र खींचना, चुम्बन, आलिंगन, विशिष्ट स्थानों पर नखक्षत करना, पकी हुई तुण्डी की तरह लाल अधरोष्ठ का पान और बाद में संभोग आदि ।।१०११-१०१२-१०१३।।

तत्र वृंदावनक्रीड़या उदाहरणम्। कुंजविहार्य्यष्टकम्—

अविरत रतिबन्धुस्मेरता बन्धुरश्रीरित्यादि सम्यग् लेख्यम्।
श्रीकृष्णलीला हृदयं पुनातु वो।
लीला च या प्रेम रसानुभाविनी।
रसश्च कान्ता परिशीलितोऽस्य
कांता च गोकुल यौवताग्रणीः ।।१०१४।।

यद्यपि गुणकीर्तनमपि (स्यापि, व्यापि) लीलांतर्गतं तथापि शंसनेन पद्यैकेनैकाक्षरादिभिः विविधचित्रकाव्येन तद्गुणवर्णनं यथा—
निन्नूल्नानो ननं नूनं नानूनोन्ना ननोऽनूनिः।
नानेनानां निनन्नेनं नानौनना न नो ननु ।।१०१५।।

किंच—धानश्री—
यदपि समाधिषु विधिरपिपश्यति न तव नखाग्र मरीचिम्।
इदमिच्छामि निशम्य तवाच्युत तदपि कृपाद्भुत वीचिम्।
देवभवन्तं वन्दे।
मन्मानसमधुकरमर्पय निजपदपंकज मकरंदे ।।ध्रु.।।

वृंदावन क्रीड़ा का उदाहरण कुंजविहार्य्यष्टक है। अविरत रतिलीला (षष्ठ प्रकरण के अष्टक का प्रथम श्लोक दृष्टव्य)

श्रीकृष्ण की लीला तुम लोगों का हृदय पवित्र करे। लीला वही है, जिस प्रेम रस का कारण होता है, उसका अनुभव मिलता है। रस वही है, जो सुंदर स्त्री के परिसर में उसकी आसक्ति से मिले। सुंदर कांता वही है जो गोकुल की स्त्रियों में सर्वश्रेष्ठ (राधा) है ।।१०१४।।

यद्यपि गुणकीर्तन भी लीलांतर्गत ही है, तथापि उसके प्रकार स्तुति, एकाक्षर पद्य इत्यादि हैं। विविध चित्रकाव्य भी गुणवर्णन के उदाहरण हैं, जैसे – 'निन्नूल्नानो ननं नूनं नानूनोन्ना न नोऽ नूनिः। नानेनानां निनन्नेनं नानौ न ना न नो ननु' ।।१०१५।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धनाश्री राग में – यद्यपि ब्रह्मदेव समाधि में भी तुम्हारे नख के अग्र की किरण को भी नहीं देख सकता, फिर भी मैं इच्छा करता हूँ कि यह सुनकर भी हे अच्युत! तुम्हारी अद्‌भुत कृपा की तरंग मेरे ऊपर आये। हे देव! तुम्हें प्रणाम है, मेरे मनोरूप भ्रमर को तुम्हारे चरण पंकज के मधुपान में लगा दो।

भक्तिरुदंचति यद्यपि माधव न त्वयि मम तिलमात्री।
परमेश्वरता तदपि तवाधिक दुर्घट घटनाविधात्री।
वयमविलोलतयाद्य सनातन कलिताद्‌भुतरसभारम् (तारम्)।
निवसतु नृत्यमिहामृतनिन्दिनि विन्दन् मधुरिम सारम्।
कृपैकसाध्यो भगवतो लाभो।
न शक्यःस त्वया द्रष्टुमस्माभिर्वा बृहस्पते।
यस्य प्रसादं कुरुते स वैतं द्रष्टुमर्हति ।।१०१६।।
इति नारायणीय श्रुतौ वस्वादि वचनात्।
तथापि ते देवेत्यादिकाच्छ्रीदशमे ब्रह्मवाक्यात्।
इति गुणकीर्तनम्।

अथ नाम

श्रीगोपालभट्टानाम्—
भाण्डीरे शशिखण्डमण्डनवर श्रीखण्डलिप्तांग हे।
वृंदारण्य पुरंदर स्फुरदमन्देन्दीवर श्यामल।
कालिन्दीप्रिय नन्दनन्दन परानन्दार विन्देक्षण।
श्रीगोविंद मुकुंदसुंदर तनो मां दीनमानंदय ।।१०१७।।
श्रीकृष्ण गोविंद हरे मुरारे गोपालगोपीनयनाब्जभानो।
नंदात्मजानन्दनिधे यशोदासूनो मतिः स्वात्तव पादयोर्मे ।।१०१८।।

हे माधव! यद्यपि मेरी भक्ति तुम्हारे लिए तिल मात्र ही है, ऐसा भी नहीं कहा जा सकता, उसमें भी तुम्हारी ईश्वरता ही दुर्घट कार्य करानेवाली है, कारण है। हम चांचल्य छोड़कर , हे नित्यरूप ईश्वर, तुम्हारे ही अद्‌भुत रस का भर धारण करते हैं। अमृत की तरह आनंद देनेवाले तुम्हारे नर्तन की मधुरिमा का तत्त्व मुझमें रहे।

भगवान् का लाभ उसकी कृपा से होता है। नारायणीय श्रुति में वस्वादिकों का बृहस्पति के प्रति कथन है– यह भगवान् तुमसे या हम लोगों से भी नहीं देखा जा सकता, भगवान जिस पर कृपा करें, वही उसे देख सकता है ।।१०१६।। इसी प्रकार 'ते देव' इत्यादि से आरंभ कर दशम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्कन्ध में ब्रह्मा का वाक्य है। यह गुणकीर्तन हुआ।

अब नाम- श्रीगोपाल भट्ट का -

भाण्डीर वन में चंद्रकला के ही मानो भूषण धारण करनेवाले, शरीर पर चंदन का लेप लगानेवाले, वृंदावन के इन्द्र, चमकनेवाले नीलकमल की तरह नीलवर्ण, कालिन्दी (यमुना) प्रिय, हे नन्द के पुत्र, सर्वश्रेष्ठ आनंदरूप, कमलनेत्र, श्रीगोविंद मुकुंद सुंदरतनो! मैं दीन हूँ, मेरा उद्धार करो ।।१०१७।।

हे श्रीकृष्ण, गोविंद, हरे, मुरारे, गोपी-गोपिकाओं के नेत्रकमल के सूर्य, हे नन्दपुत्र, आनंदनिधे, यशोदापुत्र! मेरी बुद्धि तुम्हारे चरणों में रहे ।।१०१८।।

अथ श्रीहरिनामस्तुतिः

अघदमन यशोदानंदन नन्दसूनो।
कमलनयन गोपीचंद्र वृंदावनेन्द्र।
प्रणत तरुण (करुण) कृष्णावित्यनेकस्वरूपे।
त्वयि मम रतिरुच्चैर्वर्धतां नामधेय ।।१०१९।।
वाच्यं वाचकमित्युदेति भवतो नामस्वरूपद्वयम्।
पूर्वस्मात् परमेव हन्त करुणं तत्रापि जानीमहि।
यस्तस्मिन् विहितापराधनिवहः प्राणी समन्ताद्भवेत्।
दास्येनेदमुपास्य सोऽपि हि सदानंदाम्बुधौ मज्जति ।।१०२०।।
जय जय जय देव देव देव (वेदवत्)।
त्रिभुवन मंगल दिव्य नामधेय।
जय जय जय देव कृष्ण देव।
श्रवणमनुनय नामृतावतार ।।१०२१।।

श्रीहरिनामस्तुति – हे नामधेय, हे नाम, तुम अघदमन, यशोदानंदन, नन्दसूनो, कमलनयन, गोपीचन्द्र, वृंदावनेन्द्र, प्रणतकरुण, कृष्ण इत्यादि अनेक नाम बनकर भगवान् के प्रिय होते हो, इसलिए तुम्हारे में मेरी रुचि अतिशय बढ जाय ।।१०१९।।

हे नाम, वाच्य और वाचक ऐसे तुम्हारे दो रूप हैं; अर्थात् वाच्य = अर्थ वाचक शब्द दोनों नाम ही के रूप हैं। उसमें जो पूर्व अर्थरूप (भगवान्), उससे पर जो शब्दरूप है, वही अति करुणामय है, ऐसा हम लोग समझते हैं (पूर्व = वाच्य अर्थरूप, पर = वाचक शब्दरूप, दोनों नाम ही के रूप हैं)। जिस प्राणी ने पूर्वशब्द स्वरूप जो भगवान् हैं, उसके अनंत अपराध किये हैं, वह उसके दूसरे रूप का = वाचक शब्द स्वरूप जो नाम है, उसका दास्य=अनुष्ठान, जपादि करके, उसकी उपासना से, पूर्वरूप जो वाच्य, सच्चिदानंद स्वरूप भगवान् हैं, उसकी उसे प्राप्ति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होती है और वह आनंद में मग्न होता है ।।१०२०।।

हे देवों के देव, तीनों भुवन में जिसका नाम मंगलस्वरूप माना जाता है, हे कृष्णदेव, तुम कानों के लिए अमृतस्वरूप होते हो और गुणामृत श्रवण के बाद नेत्रों के लिए अमृत स्वरूप होते हो (तुम्हारे दर्शन होते हैं), तुम्हारी जयजयकार हो ।।१०२१।।

गुंजरी रागेणादितालेन—
केशव कमलदलेक्षण कामदकान्तमुरान्तक कलितसुवेश।
नन्दतनुज जनरंजन भवभयभंजन कंजचरणकमलेश।
जयजय गोपवधूवदनाम्बुज मत्तमधुपमकरध्वज भूप।
पीतांबर वरनागर रसमय मंजुलभुज दलितांजनरूप ।।ध्रु.।।
परमानंदकन्द मधुराधर मुरलीवाद्य धुरंधर धार।
नरहरिमव मधुसूदन माधव गोवर्द्धनधर गोकुलवीर।
इयमुद्ग्राहध्रुवाभोग रूपेण पदत्रयवती गीतिः।
मनसिज फणिजुष्टे लब्धपातोऽस्मि दुष्टे।
तिमिर गहनरूपे हन्त संसार कूपे।
अजित निखिल रक्षा हेतुमुद्धार दक्षा।
मुपनय मम हस्ते भक्ति रज्जुं नमस्ते ।।१०२२।।
समस्त पुरुषार्थतः पृथुतयाद्य भक्तिं विदन्।
वदन्नपि न यदभजेत् त्वदकृपैव हेतुर्विभो।
प्रसीद यमुनातटे लुठितमूर्तिरभ्यर्थये।
कृपा कृपणनाथ हे कुरु मुकुंद वन्देमहि ।।१०२३।।

गुंजरी राग, आदि ताल में– हे कमल के पत्ते के समान नेत्रवाले केशव! तुम कामदेव को जीतनेवाले सुंदर हो। मुर को मारनेवाले, तुम्हारी वेशभूषा अति सुंदर है। हे नंदकुमार! लोगों को मोहनेवाले, संसार की भीति को तोड़नेवाले, कमलसदृश तुम्हारे चरण हैं। तुम लक्ष्मीपति हो। गोपस्त्रियों के मुखरूपी कमल पर उन्मत्त होकर मधुपान करनेवाले तुम भ्रमर हो। मदन पर तुम्हारी सत्ता है। पीला वस्त्र पहननेवाले, श्रेष्ठ नागरिक, रसरूप, सुंदर बाहु धारण करनेवाले, मर्दन किये हुए कज्जल की तरह स्निग्ध नीलवर्ण हो, तुम परमानंद का उद्गम स्थान हो, अपने मधुर अधरोष्ठ से मुरली बजाने में अद्वितीय हो, ब्रह्माण्ड को अपने में धारण करनेवाले हो। हे मधुदैत्यनाशक, लक्ष्मीपते, गोवर्द्धन पर्वत धारण करनेवाले, गोकुल के वीर! तुम नरहरि कवि की रक्षा करो।

यह उद्ग्राह, ध्रुव, आभोग इन तीन पदों से बनी गीति है।

हे भगवन्! मैं अति भयंकर संसार कूप में गिरा हूँ। उसमें काम (मदन) रूपी सर्प हैं और वह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अज्ञान रूपी अंधकार से भरा हुआ है। हे अजित भगवन्! सबके रक्षण का साधन, ऊपर निकालने में समर्थ, तत्पर तुम्हारी भक्तिरूपी रस्सी मेरे लिए कुए में छोड़ दो, तुम्हें प्रणाम है ।।१०२२।।

हे व्यापक परमेश्वर! सभी पुरुषार्थ देने में समर्थ और सब मार्गों में सरल भक्ति ही है, यह जानते हुए और कहते हुए भी मैं तुम्हारी भक्ति नहीं करता, इसका कारण तुम्हारी अवकृपा ही है। हे दीननाथ, मुकुंद! मैं यमुना के तीर पर मिट्टी में लोटता हुआ प्रार्थना करता हूँ, कृपा करो, मैं वंदन करता हूँ ।।१०२३।।

श्रीरासलीलायां गुणवर्णनं तु समाहर्तुं स्वाभिप्रायं
व्यनक्तिरसासारु सुसारोरुरसुरारिः ससारसः।
संसारासिरसौ रासे सुरिरिंसुः ससारसः ।।१०२४।।
द्वयक्षरं चित्रकाव्यं सर्वतोभद्रः।
रासावहा ह्यवसारा सालसा ससलालसा।
वलारमा मारलाव हा समाददमासहा ।।१०२५।।
मुरलीमधुर श्रुतिरागपरम्। स्वरसप्तसमन्वित गानपरम्।
नवनायक वेश किशोरवयाः। व्रजराजसुतः सहराधिकया ।।१०२६।।
इतरेतरबद्धकरभ्रमणम्। कुरुते कुसुमायुध केलिरणम्।
अधिकाधिक माधवराधिकयोः। कृतरास परस्पर मण्डलयोः ।।१०२७।।

मणिकंकण शिंजित तालधनम्। वहते सनकादिमुनिर्मननम्।
केलिकदम्बतले वनमाली। नृत्यति चंचल चन्द्रमौलिः ।।१०२८।।
राधिकया सह रासविलासी। गोपवधूप्रिय गोकुलवासी।
क्रीड़ति राधिकया सह कृष्णः। श्रीमुखचंद्रसुधारस तृष्णः ।।१०२९।।

रासलीला में गुणवर्णन दिखलाने के लिए अपना अभिप्राय प्रकट करते हैं (चित्रकाव्य)- रसासारु सुसारोरुरसुरारिः ससारसः। संसारासिरसौ रासे सुरिरिंसुः ससारसः ।।१०२४।।

द्वयक्षर चित्रकाव्य सर्वतोभद्र- रासावहा हावसारा सालसा ससलालसा। वलारमा मारलाव हा समाददमासहा ।।१०२५।।

मुरली की मधुर ध्वनि से श्रुतिसंपन्न सप्तस्वर समन्वित अनेक राग प्रकट हो रहे हैं, पूर्ण गान हो रहा है। नवीन नायक वेश और किशोर वय नंदराज- पुत्र राधिका के साथ रास खेल रहा है ।।१०२६।।

परस्पर हाथ पकड़ कर घूम रहे हैं, मानो मदनलीला का युद्ध हो रहा है। रास में परस्पर मिलकर मानो मण्डल बनाते हुए राधा-माधव मदनरण में अधिकाधिक मग्न हैं ।।१०२७।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रत्नखचित कंकणों की ध्वनि हो रही है, और ताल बज रहे हैं। सनकादिक मुनि उसका ध्यान करते हैं। क्रीड़ा कदम्ब वृक्ष के नीचे वनमाला धारण कर, मयूरपिच्छ का मुकुट धारण कर वह चंचलता से नाच रहा है ।।१०२८।।

राधा के साथ रासविलास में मग्न, गोकुल की स्त्रियों का प्रियतम, गोकुलवासी कृष्ण राधा के साथ खेल रहा है और उसके मुखचन्द्र के अमृतरस की इच्छा कर रहा है ।।१०२९।।

नर्तनखंजनलोचन लोल:। कुण्डलमण्डित चारुकपोल:।
रासरासेश्वरी राजति राधा। चन्दनचर्चित पंकजगन्धा।
माधवसंगा वर्धितरंगा। पूर्ण मनोरथ मन्मथ संगा ।।१०३०।।
श्रीराधिकामाधवयो: पदाम्बुजे निर्माय यत्काव्यमिदं मयार्पितम्।
तनैव तौ प्रीतहृदो च शान्तौ (कदापिमाम्) अत्युद्भुतां दर्शयतो रह कलाम् ।।१०३१।।
प्रभोकृष्ण चैतन्य गौरांग विश्वंभर श्रीशचीनन्दनप्रेमसिंधो।
हरे कृष्ण गोपाल गोविन्द नन्दात्मज प्रेष्ठगोपीजन प्राणबन्धो ।।१०३२।।
अनाराध्य राधापदाम्भोजरेणूननाश्रित्य वृंदाटवीं तत् पदांकाम्।
अनाभाष्य तद्भाव गंभीर चित्तां कुत: श्यामसिंधो रसस्यावगाह: ।।१०३३।।

इति कलियुगपावनावतार श्रीकृष्णचैतन्य देवोक्ते तत् प्रियजन श्रीरूपगोस्वामिकृतो-ज्ज्वलरसरागपद्धतिसंग्रह लिखन स्मृतैरपि कापिशक्तिर्मम भक्तिलेशाभाव महापराधि परमपामर क्षुद्रजन्तुन:, अतएव विज्ञप्तिरेषा।

नर्तन में जिसके नेत्र खंजरीट की तरह चंचल हो रहे हैं, सुंदर गाल कुण्डल से सुशोभित हैं। रास में रासेश्वरी राधा चंदन की ऊटी लगाई हुई, कमल की तरह सुगंध वाली शोभायमान है। माधव की संगति से जिसमें रस-रंग बढ गया है, मदनबाधा से पीड़ित वह अपने मनोरथ पूर्ण कर रही है ।।१०३०।।

श्रीराधामाधव के चरणकमल में मैंने यह काव्य निर्माण कर अर्पित किया है, उसीसे वे प्रसन्न अंत:करण से अति आश्चर्यकारक, एकांत में साक्षात्कार योग्य अपनी कला (स्वरूप विशेष) कभी दिखा देंगे ।।१०३१।।

हे कृष्ण चैतन्य प्रभो, गौरांग, विश्व का भरण-पोषण करनेवाले, शची के कुमार, प्रेमसिन्धु, हे कृष्ण, गोपाल, गोविंद, नंदपुत्र, प्रियतम गोपीजनों के प्राणरूप, राधा के चरणकमल की धूलि की आराधना और जहाँ उसके पदचिह्न अंकित हैं ऐसे वृंदावन का आश्रय लिये बिना, जिसमें उसकी लीलाओं की आश्चर्यकारक कथाएं हैं, उनका वर्णन किये बिना श्यामसिंधु भगवान् श्रीकृष्ण के रस में डूबने को कैसे मिलेगा ।।१०३२-३३।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कलियुग के अति पवित्र, अन्यों को पावन करनेवाले भगवदवतार श्रीकृष्णचैतन्यदेव का यह कथन है और उनके प्रियभक्त श्रीरूपगोस्वामिकृत उज्ज्वलरसराग पद्धति का संग्रह लिखने मात्र से मुझमें भी कुछ शक्ति संचरित हुई, अन्यथा मैं भक्ति का अंश भी नहीं जानता, इसी महापराध के कारण मैं परम पामर एक क्षुद्र जंतु हूँ (मुझमें क्या शक्ति होगी), इसलिए विद्वानों के चरणकमल में मेरी प्रार्थना है -।।

श्रीरूपेण प्रचुरकरुणाशालिना दर्शितं यत्।
मादृग्मुग्धप्रकृतिजनिता श्रेयसे रागवर्त्म।
तस्मिन् येषां रतिरतितरां वर्तते सारभाजाम्।
तेषां पादाम्बुजनतिमतिः कोटिशः स्याज्जनिर्मे ।।१०३४।।

प्रकृतमनुसरामः
श्रीकृष्णरससंगीते मन्मनो यन्न्यवेशयत्।
तद्रसाविष्ट चित्तस्तत्संगो स्ताज्जन्म जन्मनि ।।१०३५।।
गोविंदकान्त भक्तत्वान् नृपेन्द्राणां शिखामणिः।
श्रीयुक्तो जयसिंहाख्यो जयति क्षितिमण्डले ।।१०३६।।
यो मणिपुराख्य देशस्थाञ् जनान् सर्वानतोषयत् (सर्वांश्चाह्लायत्)।
भगवद्भजनेनैव भाग्यचन्द्राभिधः परः ।।१०३७।।
श्रीमान् गंभीरसिंहाख्यो नृपतिस्तस्य नंदनः।
असाध्यो विक्रमो यस्य दिङ्.मण्डल प्रकाशितः ।।१०३८।।
(जयसिंहभाग्यचन्द्रावेकरस्यैव नामनी)

श्रीरूपजी ने परम करुणा से प्रेरित होकर मेरे जैसे अज्ञान स्वभाव के और पापशील (अनेक अकल्याण करनेवाले) प्राणियों के लिए यह जो भक्तिमार्ग (प्रेममय मार्ग) दिखाया है, उस मार्ग में जिनकी गाढ़ रुचि है और उसके सारसर्वस्व को जो ग्रहण करते हैं, उनके चरणकमल में नम्र होने की बुद्धि जाग्रत हो, तो उसके लिए मेरा जन्म कोटि बार भी हो जाय ।।१०३४।।

अब प्रकृत विषय को चलाते हैं- श्रीकृष्णरस संगीत में मेरे मन को प्रेरणा देकर लगाया, श्रीकृष्ण रस से सर्वदा सुस्नात ऐसी उनकी संगति मुझे जन्म-जन्म में मिले ।।१०३५।।

नितान्त सुंदर भगवान् श्रीकृष्ण का परम भक्त होने से ही राजाओं में जो शिरोरत्न की तरह श्रेष्ठ हैं, वह वैभवसंपन्न 'जयसिंह' नाम के राजा भूमण्डल पर सर्वोत्कर्ष से विराजमान है, जिन्होंने मणिपुरवासी सभी प्रजाजनों को परम संतुष्ट किया है। भगवान् का सतत भजन करने से ही उनका दूसरा नाम 'भाग्यचंद्र' हो गया है। परमभाग्यवान् 'गंभीरसिंह' नामक उनका पुत्र है। वे दस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दिशाओं को प्रकाशित करनेवाले हैं, ऐसा विक्रम अन्यों के लिए संपादन करना कठिन है ।।१०३६-१०३७-१०३८।।

दानेन यशसा प्रेम्णा श्रीनाम्नः कीर्तनेन वै।
तस्य वाक्यावलम्बेन ह्यज्ञेनापि च केनचित् ।।१०३९।।

श्रीकृष्णरस संगीत संग्रहोऽयं विनिर्मितः।
विश्ववृन्दस्य हास्याय मुग्धस्यैव तु ह्लादकृत् ।।१०४०।।
पंचभिः कुलकम्।

किंच—
कुलिन्दोत्थो यथावह्निः स्वर्णनिर्मलकारकः।
तथैवायं मदुत्थोऽपि बुद्धिसंमार्जको भवेत् ।।१०४१।।
सोऽहं यस्य कृपामृतेन सुचिरात् पुष्टः सुदुःसाहसे।
यस्याज्ञामधुधारया च नितरां मातुः प्रवृत्तोऽत्र हि ।।१०४२।।
तस्य श्रीनृपराज सद्गुणनिधेर्गम्भीर सिंहाकृतेः।
कर्णानन्दभवाय हन्त भवतात् सैषा मदीया कृतिः ।।१०४३।।
अयोग्योऽपि प्रस्तुत लिखने तद्दत्तसच्छक्तिमवलम्ब्य (अवगम्य)
त्वं तस्य चातिकृपालुत्वं व्यंजयन् पुनस्तन्त्रेण गुरुकृष्णप्रार्थनाष्टकं लिखित्वा ग्रंथसमर्पणं कुर्याम्।

दान, कीर्ति, प्रेम, श्रीभगवन्नामसंकीर्तन इत्यादि में अद्वितीय उनकी (श्रीराजा गंभीरसिंह की) आज्ञा से एक तुच्छ व्यक्ति द्वारा, अज्ञानी होते हुए भी यह ग्रंथ लिखा गया। यह श्रीकृष्णरस संगीत संग्रह सबके लिए प्रायः हास्य का ही विषय बनेगा, लेकिन जो मुग्ध हैं, ज्ञान न होते हुए भी शुद्ध हृदय के हैं, उन्हें ही परमानंद देगा (ऊपर पाँच श्लोकों का एकत्र अर्थ पूर्ण होता है, अतः यह पाँच श्लोकों का 'कुलक' है) ।।१०३९-१०४०।।

कुलिन्द से निकली हुई अग्नि जिस प्रकार सोने को निर्मल, शुद्ध बनाती है, उसी प्रकार यह मेरे (अंतर) से निकली हुई ज्ञानाग्नि बुद्धि को निर्मल बना देगी ।।१०४१।।

मैं जिनके कृपारूपी अमृत से बहुत समय तक पुष्ट होता रहा, और जिनकी आज्ञा, मधुरस धारा से उत्साहित, प्रेरित होता रहा, उसी से मैं साहस कर इस कठिन काम में प्रवृत्त हुआ, उन्हीं राजश्रेष्ठ और अच्छे गुणों के समुदायरूप श्रीगंभीरसिंह नामक राजा के कानों को आनंद प्रदान करने के लिए यह मेरी कृति समर्थ हो जाय अथवा उन्हें समर्पित रहे ।।१०४२-१०४३।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस ग्रंथ के लिखने में असमर्थ होते हुए भी जिनकी दी हुई शक्ति के बल पर मैं समर्थ हुआ, उन्हीं श्रीगुरु और ईश्वर की अति दयालुता प्रकट करते हुए तंत्र से दोनों प्रार्थना का अष्टक लिखकर यह ग्रन्थ समर्पित करता हूँ।

जनोऽयमति कातरो हृदयदस्युना लुण्ठ्यते।
तवापि बत घोषणा (शोषणा) प्रवरकर्म कुर्वन्न हो।
निगृह्य तदिमं (तमिदं) कृपाप्रवर लोकसंघैः प्रभो।
तथा कुरु यथा भवद्भजन सद्मनि प्राणिमि ।।१०४४।।
लवार्धमपि मानसं करुणनैव भीति भजेत्।
कथं भवदुपासना भवतु मन्दभाग्यस्य मे।
तथा कुरु यथा भवच्चरणपद्म सद्वासना।
भवेदनिशमत्र हि स्वगणभाग्य सिन्धो प्रभो ।।१०४५।।
अमन्दगरलाधिकं विषय पुंजमत्याशया।
सुखं बत भविष्यतीत्यशिमत्र मन्मानसम्।
क्षणं तव पदाम्बुजं स्मरतिनैव पापाशयम्।
तथा कुरु जगद्गुरो चरणपद्म लुब्धं भवेत् ।।१०४६।।

यह तुम्हारा दास अति भयशील है, हृदय के चारों (मन के दोष काम-क्रोधादि) से लुटा जा रहा है और विशेष बात यह है कि तुम्हारे नामोच्चारण का सर्वश्रेष्ठ कर्म करते हुए भी ये चोर मुझे लूट रहे हैं। हे समर्थ प्रभो! सद्गुरो! ईश्वर! इन चोरों को तुम पकड़ कर रखो, और तुम्हारी कृपादृष्टि से मुझमें इस प्रकार परिवर्तन करो कि मैं ऐसा अनुभव करूँ कि तुम्हारे भजनरूप गृह में ही मेरा अपना जीवन सर्वस्व है ।।१०४४।।

हे दयामय! मेरा मन इन चोरों की भीति से आधा क्षण भी त्रस्त न रहे, अन्यथा मुझ जैसे भाग्यहीन से आपकी उपासना किस प्रकार हो सकती है। मेरे मन को इस प्रकार बना दो कि वह सर्वदा तुम्हारे चरणकमल में ही निवास करता रहे। हे प्रभो! समर्थ भगवन्! तुम अपने प्रिय भक्तगण के भाग्यरूप सागर हो ।।१०४५।।

इस विचार से कि अति तीक्ष्ण विष हलाहल जैसे अति भयंकर विषयों के समूह (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध) के सेवन से सुख होगा, मेरा मन सुख की तीव्र आशा संजोकर इन विषयों में मग्न रहा और इसीलिए यह मन तुम्हारे चरणकमल का स्मरण एक क्षण भी नहीं करता, इसी कारण वह विषय-चिंतन रूप पाप से भरा हुआ है। अतः हे जगत् के गुरो! पिता! तुम कुछ ऐसा करो कि मेरा मन तुम्हारे चरणकमल में लुब्ध हो जाय ।।१०४६।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अगण्य वरपापिनामतिगरिष्ठ पापात्मनः (नह)।
कुकर्मभवदोषतः शमनदण्डपात्रस्य मे।
त्वमेव करुणार्णवः शरणमत्र संसारिणः।
प्रकृष्टकरुण प्रभो वितर यादवेन्द्र प्रिय ।।१०४७।।
प्रसीद मयि पामरे कुजनमूढपापाशये।
समुद्धर भवार्णवात् करुण कर्णधार प्रभो।
सदैव पतितं निज प्रवरदोषसंघैरमुम्।
जनं प्रियजनार्दन श्रितपदाब्जनावं तव ।।१०४८।।
सुदृष्टमपि मां जनं सुखय भक्तिरंकं परम्।
स्वकर्मभवदोषतस्त्वरितमत्र दुर्वासनम्।
भवे भवदुपासना भवन भाग्यदानात् प्रभो।
वदान्यवर सद्गते व्रजविनोद भक्त प्रिय ।।१०४९।।

इस जगत् में बड़े-बड़े पाप करनेवाले जो अगणित लोग हैं, उनमें अत्यंत गरिष्ठ पापी मेरा मन है। इसी कारण कुकर्मों के दोषों से मैं भरा हुआ हूँ अतः यमदंड का पात्र हूँ। इसलिए हे परम करुणामय, समर्थ और सभी यादवों के प्रिय कृष्ण! मुझ जैसे संसार-सागर में पड़े हुए पापी को तुम ही करुणा सागर बनकर आश्रय प्रदान करो (शरण बन जाओ) ।।१०४७।।

हे मेरे प्रिय जनार्दन मुझ जैसे दुर्जन, मूर्ख और पाप से भरे हुए व्यक्ति पर प्रसन्न हो जाओ। हे दयानिधे, समर्थ प्रभो! तुम दयाशील कर्णधार बनकर संसार-सागर से मेरा उद्धार करो। मैं सदा पतित हूँ, बड़े-बड़े पापादि दोषों से भरा हुआ हूँ, हे भगवन्! संसार-सागर में तुम्हारी चरणकमल रूपी नौका का आश्रय लेकर बैठा हूँ, मेरा उद्धार करो ।।१०४८।।

तुम दाताओं में श्रेष्ठ हो, सद्गति देनेवाले हो, गोकुल के प्रिय भक्तों में जिसका मन लगा रहता है ऐसे हे भगवन्! तुम्हारी भक्ति करनेवाला मैं एक परमदीन, दास, रंक हूँ। अपने ही कर्मों से संसार में अनेक दोषों का पात्र बना हुआ हूँ, अनेक दुष्ट वासनाएं मुझ में भरी हुई हैं, अतः तुम जल्दी ही मेरी तरफ कृपा दृष्टि करो और संसार-सागर में तुम्हारे उपासनारूपी गृह में आश्रय देकर सुखी बनाओ ।।१०४९।।

प्रभो नहि तवोज्ज्वल प्रथितवर्त्मसीमामहम्।
कदाप्यगममुत्पथं प्रगतिशील पाटच्चरः।
न मत् सदृश मंतुकृत् कुमतिरस्ति देवावना (अवनौ)।
वमुं कुरु जनं कृपाप्रबलपाश संघावृतम् ।।१०५०।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दया तव सुविश्रुता पतितसंघ निस्तारिणी।
जड़ा चिदचिदन्वय प्रक्रूरमुग्धहृवच्छोधिनी।
अतः प्रपतिते मयि प्रवरदोषमूढे जने।
दयां कुरु प्रभो भवच्चरणपद्म भक्तिर्भवेत् ।।१०५१।।
इदं हृदयवर्तन ग्रथितमेव पद्याष्टकम्।
गुरोश्चरणमाधुरी स्मरण विक्रियो यः पठेत्।
स तस्य करुणार्णवः कृपणवत्सलो यः प्रभुः।
करोति करुणां वरां कलिकृतापराधस्य हि ।।१०५२।।

हे प्रभो श्रीकृष्ण! तुम्हारा जो भक्तिमार्ग प्रसिद्ध है, उसकी सीमा का उल्लंघन कर मैं कभी कुमार्ग पर नहीं गया। हे प्रगतिशील सर्वश्रेष्ठ चोर प्रभो! मेरे जैसा अपराध करनेवाला, दुष्टबुद्धि इस पृथिवी पर और कोई नहीं होगा। इसलिए तुम इस दास को अपने मजबूत कृपारूपी पाश में बाँध रखो ।।१०५०।।

तुम्हारी दया पापी लोगों का उद्धार करने में विख्यात है। चित् = चैतन्य = ज्ञान, अचित् = जड़ द्रव्य रूप पदार्थ मायिक-इनके परस्पर संबंध के शास्त्र की चर्चा से जिनका हृदय अज्ञान-त्रस्त हुआ है, ऐसे जड़ शास्त्रों, जड़ बुद्धि को शुद्ध करनेवाली तुम्हारी कृपा है। इसलिए मुझसे बड़े-बड़े दोषों से पूर्ण, मूर्ख, मोहग्रस्त, पापी पर कृपा करो ताकि तुम्हारे चरणकमल की भक्ति मेरे मन में उत्पन्न हो ।।१०५१।।

अंतःकरण की वृत्तियों से रचित यह पद्यरूप अष्टक है। श्रीगुरु के चरण-स्मरण की मधुरिमा का अनुभव कर जो भक्त इसका पाठ करता है, उस पर दयासागर, दीनवत्सल, भगवान् प्रभु, कलियुगीन दोषों के कारण होनेवाले अपराध क्षमा कर सर्वश्रेष्ठ कृपा करता है ।।१०५२।।

इति श्रीकृष्णरस संगीत संग्रहे श्रीगुरुकृष्णचैतन्यनामोच्चारणादेवोद्भूते, नामगुणलीला लावण्य गानविद्या किंचिज्ज्ञानसौष्ठवार्थकृते श्रीगोविन्दपदारविंदमधुपपरमचतुर भागवतेन, प्रभुणादिष्टे कृतसंग्रहांतिक लीलादिकीर्तनात्मक शंसनं नाम सप्तमं प्रकरणं संपूर्णम्।

।इति शम्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मकरस्थे रवौ मासे पंचम्यां सितपक्षके।
संवत्सरे नेत्रपंचशाके वाजिहिमांशुके (१७५२ शक)

आदौ तथान्ते मध्ये च लीलानामरसाश्रयः।
श्रीकृष्णरस संगीत संग्रहः संगतः शुभः।
श्रीहरिः शरणमस्तु नः।
।। इति संपूर्ण।।

इस प्रकार यह श्रीकृष्णरस संग्रह समाप्त हुआ। यह श्रीगुरु चैतन्यदेव के नामोच्चारण से ही उद्‌भूत, निर्मित है। इसमें नाम, गुण, लीला, सौन्दर्यादि की स्तुति, ज्ञानसौष्ठव आदि का वर्णन है। यह श्रीकृष्णचरणारविन्द के भ्रमर जैसा सेवक, परमचतुर भगवद्‌भक्त महाराजा की आज्ञा से संगृहीत किया गया है। लीला, गुण, नामसंकीर्तन, स्तुति इत्यादि होने से तन्नाम से ही प्रसिद्ध यह सातवां प्रकरण समाप्त हुआ।

यह शके १७५२ में माघ शुक्ल पंचमी (वसंत पंचमी), रविवार के दिन, जब मकर में सूर्य था, पूर्ण हुआ। आरंभ, मध्य और अंत में भगवान् की लीला, उनका नाम, तन्मूलक रस ही जिसके विषय हैं, ऐसा यह 'श्रीकृष्णरस संगीत संग्रह' मंगलरूप पूर्ण हुआ।

श्रीहरिः शरणम्।।

।। इति संपूर्णः।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

sc...
has a... sc...
importan... ...luabl...
dancing.

He believes that al...
accomplishments are d...
thusiastic co-operation ...
Jhaveri Sisters.

Important Awards R...
Singh:

1959 Nrityachary...
Manipur.

1961 Hanjaba, the...
Maharaja of...

1965 National Sa...
award given...
Indira Gandh...

1983 Honours b...
Samsad, Mi...

...Sharangdev...
...sad, Bo...

...hank...

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आ
भरतनि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi.